में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का उन्होंने बड़े गहरे उतर कर संधान किया है। इस अनुसंधान से अनेक तथ्य प्रकाश में आये हैं। तुलसी, सूर, नन्ददास, पुहकर आदि कवियों की रचनाओं में अनुस्यूत रीतिकाव्य या रीति तत्त्व सप्रमाण स्पष्ट हुआ है।

एक बात और ध्यातव्य है कि भक्तिकाल में कविवर सेनापति उत्पन्न हुए। उन्होंने कवित्त रत्नाकर जैसे रस-स्निग्ध काव्य का प्रणयन किया किंतु इस ग्रंथ की ओर विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट न हो सका। जो कुछ विवेचन इस ग्रंथ का हुआ वह रामभक्ति के प्रसंग में ही हुआ। वस्तुतः इस ग्रंथ की सम्यक् मीमांसा उसके काव्य गुण के आधार पर होनी चाहिए थी। सेनापति रससिद्ध कवि थे। काव्य-रीति की सम्पूर्ण परम्परा उन्हें हस्तामलक थी, किंतु वे रीति-ग्रंथ का प्रणयन करने में प्रवृत्त नहीं हुए। साहित्येतिहासों में उन्हें रामभक्त के रूप में स्मरण करके छोड़ दिया गया—उनके कृतित्व का सम्पूर्ण परीक्षण डा० शोभनाथ सिंह ने इस शोध-प्रबंध में किया है।

रीतिकाव्य-प्रणयन से पृथक् रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का ग्रहण और प्रयोग करने वाले तो भक्तिकालीन अनेक कवि हैं। सूरदास और नन्ददास तो इस पंक्ति में अग्रणी हैं। इन्होंने तो रीतिबद्ध ग्रंथों की रचना भी की है। वस्तुतः रीति-परम्परा शास्त्रज्ञान से सम्पुष्ट होकर विकसित होती है। जो शास्त्रज्ञान को त्याज्य समझता है वह कबीर की वाणी में रीतिमुक्त हो सकता है, किन्तु जो शास्त्र को भी साथ रखता है—नाना पुराण निगमागम सम्मत लिखता है उसके ग्रंथों से रीति की प्रवृत्तियाँ कैसे दूर रह सकती हैं। किन्तु उनका बोध तभी होगा जब कोई अन्वेषी अनुसन्धाता उनका स्वरूप-विवेचन कर उन्हें पाठक के लिए प्रत्यक्ष बना दे। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में डॉ० सिंह ने इसी दिशा में सराहनीय प्रयास किया है। हम जिन ग्रन्थों को शुद्ध भक्तिकाव्य कहते और मानते हैं उन में भी रीतिकाव्य की सामान्य और कभी-कभी विशिष्ट प्रवृत्तियाँ लक्षित की जा सकती हैं। उन्हें पढ़ कर यह मानना पड़ता है कि रीतिकाव्य पाण्डित्य-प्रदर्शन नहीं काव्य-रचना की सहज प्रक्रिया का उपादान है, जिस की अवहेलना सत्कवि या सुकवि नहीं करते।

भक्ति के क्षेत्र में भी कुछ ऐसी मान्यताएँ हैं, जो दर्शन और धर्म के साथ संश्लिष्ट हैं, काव्य या रीतिशास्त्र के साथ उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध लक्षित नहीं होता, किन्तु भक्ति में भक्त की जिन मनोदशाओं और भाव-विह्वल स्थितियों का चित्रण कवि करते हैं वे स्थितियाँ प्रायः वे ही होती हैं, जो रसशास्त्र में संयोग और विप्रलम्भ की कही जाती हैं। विप्रलम्भ में वियोगी का मन जिन विषण्ण मनोभूमियों में भ्रमित होता है, परमात्मा से वियुक्त जीवात्मा की मनोभूमियाँ भी प्रायः वैसी ही होती हैं, अतः प्राकृतिक परिवेश, षड्ऋतु-वर्णन, बारहमासी, नखशिख आदि की परम्परा भक्त कवियों को भी स्वीकार्य बनी रही। यद्यपि यह स्वीकृति भिन्न आलम्बन के साथ सम्पृक्त है किन्तु वर्णन-प्रक्रिया में प्रवृत्ति का भेद करना कठिन है। जो वर्णन-

सरणि भक्त कवियों की है, वैसी ही नायक-नायिका के आलम्बन मानने पर रीति कवियों ने अपनाई है। भेद आलम्बन पर केन्द्रित है, वर्णन-पद्धति पर नहीं। इसी समस्त वर्णन को हम रीतिकाव्य की प्रवृत्ति के अनुसन्धान में काम ला सकते हैं और उन वर्णनों को सामान्य फलक पर स्थित कर देते हैं, जो काव्यशास्त्र में रीति की प्रवृत्ति कही जाती है। सूरदास की साहित्य लहरी, नन्ददास की रसमंजरी, विरह-मंजरी आदि रचनाओं का अध्ययन करने पर रीतिकाव्य की परम्परा समग्रतः हमारे सामने आती है, किन्तु जायसी और तुलसी के वर्णन में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ अपने विविध रूपों में उजागर होती हैं। भक्ति का आलम्बन और उद्दीपन भले ही शृंगार से भिन्न हो किन्तु वर्णन के स्तर पर उसमें बहुत सूक्ष्म भेद कर पाना कठिन हो जाता है।

सेनापति ने शृंगार और भक्ति का वर्णन किया है और उनके दोनों वर्णन समानान्तर चलते हैं। पाठक को यह निर्णय लेना होगा कि वह सेनापति को रीति-मुक्त रीतिकवि कहे या रीतिवद्ध भक्तकवि। वस्तुतः सेनापति स्वतन्त्र रूप से रचना में लीन हुए थे, किन्तु उनकी मूल प्रवृत्ति रीतिवद्ध कवि की ही थी। उनके काव्य-सौष्ठव की इस प्रबन्ध में सोदाहरण समीक्षा प्रस्तुत की गयी है।

संक्षेप में, 'भक्तिकाल में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ और सेनापति' एक ऐसे विषय का अनुसंधान प्रस्तुत करने वाला शोध-प्रबंध है जिसे सर्वथा आग्रहमुक्त होकर ही लिखा जा सकता है। रीति की प्रवृत्तियों का अनुसंधान काव्यशास्त्र के आधार पर किया जाना चाहिए, अपने पूर्व-निर्णीत थीसिस की पुष्टि के लिए नहीं। मुझे प्रसन्नता है कि डा० शोभनाथ सिंह ने सर्वथा आग्रहमुक्त रहकर अनुसंधाता की तटस्थ वृत्ति से अपनी स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं, अतः वे पाठक को ग्राह्य भी प्रतीत होती हैं। शोध की वैज्ञानिक प्रक्रिया की दृष्टि से भी यह प्रबन्ध उत्कृष्ट है। मैं इस सफल शोधकृति के लिए डा० शोभनाथ सिंह को बधाई देता हूँ।

—विजयेन्द्र स्नातक

शुभाशंसा

'भक्तिकाल में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ और सेनापति' नामक ग्रन्थ डॉ० शोभनाथ सिंह के पी-एच० डी० के शोध-प्रबन्ध का यत्किंचित् परिष्कृत रूप है। दो दृष्टियों से ग्रन्थ की मौलिकता विशेषतः उल्लेखनीय है। पहली दृष्टि है भक्तिकाल में ही भविष्यत् रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों के प्रारूप की खोज और दूसरी दृष्टि है साहित्य के इतिहासकारों द्वारा उपेक्षित कविवर सेनापति की काव्य-कला का मूल्यांकन। पहली दृष्टि के समर्थन में विद्वान् लेखक ने जिन सामान्य और परम्परा-प्राप्त काव्य-प्रतिपत्तियों को लिया है उनमें शृंगार की व्यापकता, कामदशा, आलम्बन-आश्रय, प्राकृतिक उद्दीपन, ऋतुवर्णन, कविसमय एवं नखशिख आदि का विवेचन है। वस्तुतः भक्तिकाल में परारति या अलौकिक रति के फलस्वरूप जो कान्ता-भक्तिरस की सृष्टि हुई है उसमें वह शृंगार रस अपने पूर्ण आयाम के साथ समाविष्ट है जो रीतिकाव्य की प्रायः रीढ़ है। राधाकृष्ण के आलम्बन-आश्रय भी इसी मूल भेद के आधार पर क्रमशः अलौकिक और लौकिक भेद को प्रकट करने वाले हैं। भक्तिकाल के विप्रलम्भ पक्ष में भी अलौकिक प्रेम की तीव्रता, उस लौकिक प्रेम की तीव्रता को ही अन्तर्भुक्त किये हुए है जो रीतिकालीन शृंगार की विप्रलम्भित काम-दशा, नायिका-दशा आदि के आयामों में प्रकट होती है। इस तथ्य का कदाचित् सबसे प्रथम सोदाहरण और सप्रमाण विवेचन डा० सिंह ने अपने प्रस्तुत ग्रन्थ में किया है।

ऐसा लगता है कि सेनापति की गर्वोक्तियों से तत्कालीन विद्वद्समाज ही नहीं, अपितु परवर्ती साहित्यकार भी अप्रसन्न जैसे रहे हैं; फलतः उच्चकोटि के इतिहासकारों ने भी सेनापति को उसका देय नहीं दिया है। सेनापति के उचित मूल्यांकन का सन्नाटा निश्चय ही चिन्त्य रहा है जिसे दूर करने के लिए विद्वान् लेखक ने इस उपेक्षित कवि को अपना विवेच्य बनाकर उचित अर्हता प्रदान की है। मुझे आशा है कि डा० सिंह की यह उत्तम कृति जहाँ साहित्य के विद्यार्थियों का कल्याण करेगी वहीं साहित्य के मर्मज्ञों को पुष्कल सन्तोष प्रदान करके व्यापक आशंसा प्राप्त करेगी।

प्राक्कथन

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल स्वर्णयुग माना जाता है। उस युग में सगुण-निर्गुण भक्ति-सम्पृक्त कृतियों का निर्माण अधिक महत्त्व पाता रहा है परन्तु उक्त विषय से सम्बद्ध दृष्टिकोण की ही रचनाएँ उस युग में नहीं हुई हैं। साहित्य-शास्त्रीय विवेचन भी उस समय होता रहा है और उस विषय पर ग्रन्थ भी लिखे जाते रहे हैं। उक्त ग्रन्थों का निर्माण भी साहित्यशास्त्रीय परम्परा पर ही होता रहा है। साहित्यशास्त्र की परम्परागत काव्य-रचना-शैली के सभी उपकरणों का वहाँ उपयोग होता रहा है। यथास्थान ग्रन्थकारों ने साहित्यशास्त्र-विवेचना भी प्रस्तुत की है। उनके इन कार्यों पर सामूहिक प्रकाश अभी तक नहीं पड़ा था। हिन्दी के मान्य विद्वानों ने जगह-जगह अपनी कृतियों में उनका उल्लेख-मात्र किया है। उनकी सामूहिक परम्परा की ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। जिन लोगों ने इस विषय पर ध्यान भी दिया है उनकी दृष्टि अधिकतर सूर अथवा कृष्ण-काव्य की ही ओर रही है। इस विषय पर डॉ० रमाशंकर तिवारी का 'सूर का शृंगार-वर्णन' तथा श्री राजकुमारी मित्तल का 'हिन्दी के भक्तिकालीन कृष्ण-भक्ति साहित्य में रीति-काव्य परम्परा' नामक दो शोध-प्रबन्ध देखने को मिले हैं। इन प्रबन्धों के लेखकों का प्रयास कृष्ण-काव्य तक की ही सीमित रहा है और उनमें शृंगार-वर्णन के व्यापक स्वरूप दिखाए गए हैं। इनके अतिरिक्त सन् १९६१ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय से श्री मिथिलेश कान्त का 'हिन्दी भक्ति-काव्य में शृंगार रस' (संवत् १३०० से १७००) नामक डी० फिल्० की उपाधि के हेतु एक शोध-प्रबन्ध स्वीकृत हुआ है। इस प्रबन्ध की सीमा केवल शृंगार रस तक ही सीमित है। रीतिकाव्य के अन्य तत्त्वों को यहां भी छोड़ दिया गया है।

भक्तिकालीन रीतिकाव्य की परम्परा तथा प्रवृत्ति का व्यापक स्वरूप अभी तक सम्पूर्ण भक्तिकाल के सन्दर्भ में पृथक् रूप से स्वतन्त्र विवेच्य-ग्रन्थ की भांति विवेचित नहीं हुआ है। इसी कारण इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। समस्त भक्तिकाल को इस शोध-ग्रन्थ में विषय बनाया गया है और उसमें रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों को दिखाने का प्रयास हुआ है। रीतिकाल की साहित्यिक कृतियों में या सर्जनात्मक रचनाओं में जिन उपादानों और घटक उपकरणों का प्रयोग हुआ है—उनकी परम्परा—किसी-न-किसी रूप से—संस्कृत काव्यों के कालिदासोत्तरकाल से चलती आ

रही थी। अतः हिन्दी के स्वर्णयुग में उनका रीतिकालीन-साहित्य निर्माण के पूर्ववर्ती रूप में पाया जाना स्वाभाविक है।

भक्तिकालीन सन्त कवियों का विवेचन इस शोध-ग्रन्थ में स्थान नहीं पा सका है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उन कवियों ने साहित्यशास्त्र को नहीं अपनाया है। उनमें भी रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ वर्तमान थीं। संयोग-वियोग शृंगार के रूपकात्मक स्वरूप को उन्होंने भी उपस्थित किया है, जिसमें नायिकाभेद तथा दूतियों के भी मधुर चित्र मिलते हैं। इनके ककहरा तथा बारहमासी आदि के वर्णनों में शास्त्रीय क्रम का ध्यान रखा गया है। उलटवाँसियों के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर अलंकारों के भी अच्छे उदाहरण पाए जाते हैं। परन्तु इन कवियों से भी अधिक और स्पष्ट रीति-प्रवृत्तियों का स्वरूप प्रेमाख्यानक काव्यों में है। इसी कारण इन कवियों को छोड़कर प्रेमाख्यानक कथाकारों की रचनाओं पर कुछ व्यापक विचार किया गया है और उनमें रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों को दिखाया गया है। विषय की व्यापकता को देखते हुए पूरे शोध-प्रबन्ध में केवल कुछ कवियों की रचनाओं पर ही लिखा गया है। जिन कवियों पर लिखा गया है उनमें रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ अधिक उभरी हुई हैं और उनके द्वारा उस परम्परा के प्रायः सभी प्रमुख कवियों का संग्रहण हो जाता है। भक्तिकालीन प्रत्येक शाखा के प्रायः प्रमुख कवियों का ही यहाँ चयन किया गया है। सभी कवियों का विवेचन स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं हो सका है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कुल सात अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में भक्तिकल और रीतिकाव्य का सामान्य परिचय विषय की पृष्ठभूमि के रूप में दिया गया है। तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के विषय में अल्प चर्चा सामयिक वातावरण के परिचयार्थ की गई है। इस अध्याय में समसामयिक संस्कृत साहित्य के विषय में भी कुछ इंगित किया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत की रचनाओं में भी उस समय काव्यशास्त्र की विवेचना होती रही है और नायिकाभेद आदि पर उस समय स्वतन्त्र ग्रन्थ भी लिखे जाते रहे हैं। तदनन्तर भक्तिकाल और रीतिकाव्य का सामान्य परिचय तथा रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों की विवेचना विषय की पृष्ठभूमि के रूप में की गई है।

द्वितीय अध्याय में भक्तिकालीन प्रेमाख्यानक काव्यों में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का विवेचन हुआ है। इस अध्याय में सूफी कवि जायसी, उसमान और मंझन की रचनाओं पर सामूहिक विचार किया गया है, क्योंकि ये तीनों कवि एक ही प्रकार की रचना करने वाले थे। इन कवियों में शृंगार की व्यापकता पूर्ण रूप से वर्तमान थी और उसके शास्त्रीय मार्ग पर चलने का इन्होंने पूरा प्रयास किया है। इसी कारण नखशिख, बारहमासा आदि का भी परम्परागत वर्णन इन्होंने किया है। अपने सामयिक राजाओं की इन्होंने प्रशस्ति भी गाई है जो रीति कवियों की परम्परा के अनुकूल है। इस अध्याय में पुहकर कवि की रचनाओं पर अलग विवेचन प्रस्तुत है, क्योंकि ये सूफी कवि नहीं है और उनकी रचनाओं में किसी धर्म की ओर प्रेरित

करने का प्रयास नहीं पाया गया है। पुहकर की कृतियाँ शुद्ध साहित्यिक हैं। नायिकाभेद-सम्बन्धी 'रसबेलि' नाम की एक स्वतन्त्र रचना भी मिली है। इनके 'रसरतन' में शास्त्रीय पद्धति का अत्यधिक अनुकरण किया गया है। कुछ स्थलों पर तो रीति कवियों की भाँति लक्षण और उदाहरण भी प्रस्तुत किए गए हैं। शृंगार का कोई अंग इनकी रचना में स्थान पाने से वंचित नहीं है। सूफी कवियों की अपेक्षा रसरतन रीतिकाव्य के अधिक निकट है। इसी कारण इसकी विवेचना सूफी कवियों से अलग की गई है।

तृतीय अध्याय में भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का विश्लेषण है। इस अध्याय में विद्यापति, सूर तथा नन्ददास तीन प्रमुख कवियों का विवेचन है। यह अध्याय तीन खण्डों में विभक्त है। इन कृतिकारों का विशेष महत्त्व है इसलिए यह अध्याय बड़ा हो गया है। इन्हीं कवियों की रचनाएँ रीतिकाव्य को प्रेरणा प्रदान करती रही हैं। इस अध्याय के प्रथम खण्ड में विद्यापति की पदावली की विवेचना की गई है। विद्यापति के अन्य ग्रन्थों की समीक्षा यहाँ नहीं की गई है क्योंकि पदावली अकेले रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों को दिखाने के लिए पर्याप्त है। रीतिकाव्य का कोई ऐसा तत्त्व नहीं है जो इस ग्रन्थ में न प्रयुक्त हुआ हो। शृंगार, अलंकार, प्रशस्ति सभी का विस्तृत वर्णन यहाँ मिल जाएगा। इसी कारण कुछ विद्वान् पदावली को अब रीति-ग्रन्थ मानने लगे हैं। द्वितीय खण्ड में सूरदास की विवेचना की गई है। इनके सन्दर्भ में केवल सूरसागर पर विचार किया गया है। शेष उनके नाम की रचनाओं पर विवाद होने के कारण छोड़ दिया गया है। सूरसागर वस्तुतः साहित्य सागर है। रीतिकाव्य की अधिकांश प्रवृत्तियाँ इसमें वर्तमान हैं। भाव तथा कला दोनों क्षेत्रों में यह बेजोड़ रचना है। शृंगार-वर्णन के लिए इसने सर्वाधिक रीतिकाव्य को प्रभावित किया है। रीतिकाल में सूरसागर की उक्तियों को ही ग्रहण करके कविगण नया चमत्कार उपस्थित करते रहे हैं। तीसरे खण्ड में कविवर नन्ददास की रचनाओं की विवेचना की गई है। नन्ददास सूरदास की अपेक्षा अपने 'जड़ियापन' के कारण रीति कवियों की कलाकारिता के अधिक निकट हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण इन्होंने लक्षण-ग्रन्थों की भी रचना की है। नन्ददास ने भानुदत्त की 'रसमंजरी' का हिन्दी स्वरूप उपस्थित किया है। इसके अतिरिक्त 'अनेकार्थ मंजरी' और 'नाममाला' नामक दो और रचनाएँ इसी कवि की हैं जिनका उद्देश्य लक्षण-ग्रन्थों के समान ही है।

चतुर्थ अध्याय में गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों का अनुशीलन हुआ है। शृंगार के कुछ मनोहर चित्र इनमें भी मिलते हैं। कवि का पांडित्य अलंकारों के प्रदर्शन में दिखाई देता है। केवल इनके इस पक्ष को लेकर विभिन्न विद्वानों ने स्वतंत्र ग्रन्थ लिख डाले हैं। इससे इनकी अलंकारप्रियता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

पंचम अध्याय में भक्तिकालीन रीतिकवियों तथा उनकी रचनाओं की सूचना

दी गई है। इनके विषय में अधिक विस्तार से नहीं लिखा गया है, क्योंकि इनकी रचनाओं की सूचना मात्र से प्रस्तुत विषय का स्पष्टीकरण हो जाता है। इस अध्याय की सामग्री खोज रिपोर्टों तथा अन्य प्रामाणिक ग्रन्थों से संकलित की गई है। इस अध्याय के द्वारा यह सिद्ध हो जाता है कि रीति कवियों की परम्परा निरन्तर बनी रही है और रीतिकाल में आकर अधिक वेगवान् हो गई है।

छठे अध्याय में सेनापति का परिचय तथा इनके साहित्य में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों को दिखाया गया है। इनमें रीतिकाव्य की प्रायः सभी प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। शृंगार का व्यापक चित्रण इन्होंने किया है तथा उद्दीपन रूप में प्रकृति का बेजोड़ नमूना उपस्थित किया है। अलंकारों के क्षेत्र में शब्दालंकार की ओर इनका विशेष प्रेम दिखाई पड़ा है इसी कारण श्लेष का इन्होंने व्यापक वर्णन किया है। अपनी अलंकरण की प्रवृत्ति के कारण उन्होंने चित्रालंकारों की भी योजना उपस्थित की है। इस प्रकार रस तथा अलंकार दोनों क्षेत्रों में रीतिकाव्य का स्वरूप इन्होंने भी अपनाया है।

सप्तम अध्याय में सेनापति के भक्तिकाव्य की विवेचना की गई है। इस अध्याय में रामकथा का संक्षिप्त परिचय दिया गया है तथा रामभक्ति की भी चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त कृष्ण, शिव, गंगा आदि के प्रति भी इनकी भक्ति निरूपित हुई है। भक्ति के क्षेत्र में सेनापति वैष्णव भक्त के रूप में दिखाई देते हैं। किसी एक तत्त्व की ओर इनका विशेष झुकाव नहीं दिखाई देता है।

लेखक के निर्देशक डा० जगन्नाथप्रसाद शर्मा रहे हैं। उनके प्रोत्साहन ने ही इस कार्य को पूरा कराया है। उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना लेखक अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता है। पण्डित करुणापति त्रिपाठी औरंगाबाद-वाराणसी का सहयोग लेखक को निरन्तर मिलता रहा है। उनकी इस कृपा को वह भूल नहीं सकता। गुरुवर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र वाराणसी के प्रति आभार मात्र प्रकट करके लेखक उनके ऋण से उऋण होना नहीं चाहता है। इस विषय पर शोध-कार्य करने की प्रेरणा उन्हीं से प्राप्त हुई थी।

डा० कालूलाल श्रीमाली, भूतपूर्व शिक्षा मंत्री भारत सरकार के प्रति आभार प्रदर्शित करना लेखक अपना पुनीत कर्तव्य समझता है जिनकी वत्सलता ने लेखक को शोध-कार्य अवश्य करने के लिए प्रोत्साहित किया था, अन्यथा वह हिन्दी के राजनीतिज्ञों से डर कर पलायन करने वाला था।

डा० वेणीशंकर झा, भूतपूर्व कुलपति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रति केवल आभार प्रदर्शित करके लेखक उनके स्नेहिल भार से उन्मुक्त होना नहीं चाहेगा। उनकी साधारणधर्मा वृत्ति के परिणामस्वरूप ही वह अनुसंधान करने की अनुमति पा सका था।

स्नेहयुक्त न्यायप्रियता के प्रति लेखक श्रद्धावनत है जिससे वह साहित्यिक क्षेत्र में सुरक्षित रह सका।

डा० रामलाल सिंह, सदस्य लोक सेवा आयोग उत्तर प्रदेश के प्रति लेखक आभारी है जिनकी जयशंकरप्रसाद के शब्दों में मंत्रणा थी कि—

जिसको बढ़ने की रही झोंक।
उसको कोई कब सका रोक॥

डा० विजयेन्द्र स्नातक, अध्यक्ष हिन्दी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रति लेखक हार्दिक आभार प्रदर्शित करता है जिन्होंने अस्वस्थ होने पर भी इस प्रबन्ध की भूमिका लिखकर इसके महत्व को बढ़ाया है।

डा० शंकरदेव अवतरे, उपप्रधानाचार्य हस्तिनापुर कालेज, नई दिल्ली के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना अपने को ही धन्यवाद देना होगा। इनसे साहित्य के क्षेत्र में उचित प्रकाश पाने का लेखक सदैव अपने को अधिकारी समझता है।

अन्त में लेखक अपने उन सभी साथियों एवं शुभचिन्तकों के प्रति आभार प्रकट करता है जिनकी आत्मा उसकी सफलता को ही देखने के लिए विह्वल थी।

इस शोध-प्रबन्ध में अनेक पत्र-पत्रिकाओं तथा रचनाओं का उपयोग किया गया है जिनका यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है। लेखक इन कृतियों के रचयिताओं के प्रति आभारी है।

—शोभनाथसिंह

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

भक्तिकाल और रीतिकाव्य का सामान्य परिचय

भक्तिकाल के प्रेरणा-स्रोत

तत्कालीन परिस्थितियाँ—राजनीतिक :

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के आरम्भ होते-होते देश में हिन्दू-साम्राज्य प्रायः नष्ट हो चुका था। छोटे-छोटे जो हिन्दू राजे बचे हुए थे वे भी हतप्रभ हो चुके थे। इनकी वीरता का प्रकाशन सदैव के लिए समाप्त हो चुका था। आपसी फूट, स्वार्थपरता, अहंभाव, अपने सामने किसी को वीर और बड़ा न मानने का मिथ्या दम्भ, छोटी-छोटी बातों पर लड़ बैठने की आदत एवं राष्ट्रीय भावना के अभाव ने इनकी सामूहिक शक्ति को नष्ट कर दिया था। संपूर्ण देश खंड-खंड होकर अपना सर्वनाश करता जा रहा था। व्यक्तिगत स्वार्थों के मिथ्या स्वाभिमान के कारण विदेशी आक्रमण के समय भी ये संगठित नहीं हो सके थे। छोटे-छोटे सामंतों तक में उच्छृंखल प्रवृत्तियाँ अत्यन्त बढ़ गई थीं। फलतः उनसे जनता भी ऊब चुकी थी। देश के अन्दर राष्ट्रीय संगठन समाप्त हो चुका था और नए-नए मुसलमानी बादशाहों के नृशंस अत्याचार होते रहते थे। जनता मौन दृष्टि से अपना सर्वनाश देख रही थी।

चौदहवीं शती के अन्त तक भारत पर मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना हो गई थी जिसका शिकंजा कसता जा रहा था और शक्ति बढ़ती जा रही थी। विदेशी आक्रमण से भारत आक्रांत था, जनता आतंकित थी। विदेशी अब उनके भाग्य-विधायक बन गए थे। यह स्थिति अत्यन्त कारुणिक थी। कुछ को छोड़कर प्रायः सभी मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं पर घोर अत्याचार किया। 'सिकंदर लोदी ने तो हिन्दुओं पर अत्याचार करने का आन्दोलन-सा चला दिया था। ...बड़े-बड़े प्रतिबन्ध लगा दिए थे। बलपूर्वक मुसलमान बनाना तो साधारण बात थी। हिन्दुओं को जजिया कर देना पड़ता था। ...राज्य के ऊँचे पद मुसलमानों को ही मिलते थे। योग्यता की कोई पूछ नहीं थी। बादशाह की इच्छा सबसे बड़ा नियम था।'[1] इस प्रकार धार्मिक भेद के कारण पक्षपात एवं अत्याचार होते रहते थे। यह प्रवृत्ति प्रायः

---

१. डॉ० ईश्वरीप्रसाद, हिस्ट्री आव् मेडिवल इण्डिया, पृ० ४६८-७० ।

सभी भक्तिकालीन मुसलमान बादशाहों में कम या अधिक बराबर बनी रही। केवल सम्राट् अकबर इसका अपवाद था। उसके राज्यकाल में हिन्दुओं को अवश्य कुछ राहत मिली थी। हिन्दू राजाओं से उसने बेटी-रोटी का सम्बन्ध स्थापित किया था। धार्मिक सहिष्णुता के प्रदर्शनार्थ उसने ब्रज-क्षेत्र में गोवध बन्द कर दिया तथा गायों के चरागाहों को राज्य-कर से मुक्त कर दिया था। मोर आदि पक्षियों का वध भी शिकार खेलने में बन्द करवा दिया था।[१] अकबर की इस कुशल राजनीति का आगे उसके उत्तराधिकारियों ने अच्छी तरह पालन नहीं किया। कुछ इसी पद्धति पर चलने की जहाँगीर ने कोशिश की थी परन्तु सफलता उसके हाथ नहीं लगी। उसने भी बाद में हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त करवाया।

पराजित एवं त्रस्त हिन्दुओं ने घोर यातनाएँ सहकर भी मुसलमानों के सम्मुख पूर्ण आत्मसमर्पण कभी नहीं किया। समय-समय पर उनकी विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो उठती थी। इस कारण विदेशी बादशाहों को बराबर उनका भय भी बना रहता था। कुछ मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं से मेल करने का—इसी कारण प्रयास भी किया था लेकिन एक-दूसरे ने कभी किसी का विश्वास नहीं किया।

मुसलमान शासकों से ब्याही हिन्दू रानियों में भी कभी-कभी हिन्दुत्व की प्रखर भावना उद्दीप्त हो उठती थी। सर्वस्व समर्पित कर देने पर भी अपनी प्राचीन मर्यादित परम्परा के प्रति उनमें मोह बना रहता था। इस द्विविधात्मक स्थिति के दुःखद परिणाम भी इतिहास में दिखाई देते हैं। सन् १५८४ ई० में जयपुर के राजा भगवानदास की पुत्री मानबाई की शादी अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम के साथ बड़ी धूम-धाम से हुई। राजा भगवानदास ने अतुल धन-राशि तथा सौ हाथी दहेज रूप में दिये। सलीम अपनी इस प्रथम पत्नी को अत्यधिक प्यार करता था। अपनी मोहब्बत के कारण सलीम ने उसका नाम शाह बेगम रखा था। विवाह के बीस वर्ष बाद मानबाई के एक भाई माधोसिंह ने परिवार में उस पर कलंक लगाया। इस पर उसे इतनी आत्मग्लानि हुई कि उसने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली। उसकी मृत्यु से सलीम को मर्मान्तक पीड़ा हुई।[२] खुसरो जैसा पुत्र पैदा करने वाली रानी की यह स्थिति उसके हिन्दू-संस्कार के कारण हुई। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू-मुसलिम पूर्ण हार्दिक मेल किसी भी स्थिति में कभी नहीं हो पाया।

भक्तिकालीन प्रायः प्रत्येक मुसलमान बादशाह अपने उत्तराधिकारियों से आतंकित रहता था। बादशाह के जीवनकाल में ही उसके लड़के राजगद्दी पर बैठने के लिए विह्वल हो उठते थे। मुगल बादशाहों में तो उत्तराधिकारियों द्वारा राज्य-प्राप्ति करने की परम्परा बन गई थी। अकबर के प्रिय पुत्र सलीम ने भी सन् १६०३ ई० में अपने पिता के विरुद्ध क्रान्ति कर दी थी, लेकिन वह असफल रहा। अबुलफजल

की हत्या उसी ने ६ अगस्त सन् १६०२ ई० को करवाई थी जिससे अकबर विक्षिप्त हो उठा था।[1] इस प्रकार इन बादशाहों के परिवार में अनुशासन के संस्कार की कमी थी। जब राजाओं की ऐसी स्थिति थी तो प्रजा की क्या दशा रही होगी ?

भारतीय मुसलमान शासक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थे। राजा की इच्छा सबसे बड़ा कानून थी। शासन का मूलाधार स्वार्थपरक दंडनीति थी। इस प्रवृत्ति के कारण लोगों में आतंकजन्य राजभक्ति तो जगी परन्तु राष्ट्रभक्ति का सर्वथा अभाव हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि किसी भी व्यक्ति को शासक मान लेने में जनता को कोई हिचक नहीं रह गई थी, क्योंकि उसके जीवन में शासन-परिवर्तन से कोई अन्तर नहीं आता था। उसके कल्याण और विकास की कोई आशा नहीं रह गई थी। वह अपने जीवन की सुख-सम्पन्नता से हताश हो चुकी थी। इसी कारण आगे चलकर मुगलों की अवनति के समय उसने कोई सहयोग प्रदान नहीं किया यद्यपि शासक-वर्ग सहायता की याचना करता रह गया।

सामाजिक :

भक्तिकालीन समाज की अवस्था दयनीय थी। शासकीय कठोरता एवं आन्तरिक कमजोरियों के कारण वह जर्जर हो चुका था। सारा समाज राजभक्त एवं साधारण मनुष्य दो भागों में विभक्त था। राजभक्त लोग सुख-समृद्धियों से सम्पन्न विलासी प्रकृति के होते थे। साधारण जनता पर उनका आतंक छाया रहता था। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति बिना राजभक्त बने सम्मानित जीवन नहीं बिता सकता था। वह राज्य के कर्मचारियों द्वारा किसी भी क्षण अपमानित किया जा सकता था।

समाज की दो इकाइयाँ थीं, हिन्दू और मुसलमान। हिन्दुओं में भी जातियों-उपजातियों के अनेकानेक भेदोपभेद थे। इन भेदों के कारण हिन्दुओं में भी ऐक्य-भाव का अभाव था। स्थान, कार्य, वंश आदि के आधार पर बनी हुई ये जातियाँ आडम्बरों के जाल में फँसकर उलझ गई थीं। विधर्मियों के अत्याचार का खुलकर सामना करने में असमर्थ होने पर ये आपसी विवाह-शादी, खान-पान आदि के आन्तरिक नियम-बन्धनों को कठोर बनाकर अपनी सुरक्षा का रास्ता निकालती थीं। इन आन्तरिक बन्धनों के कारण ऊँच-नीच, छुआछूत आदि के संकीर्ण भेद-भाव इन्हीं में अत्यधिक बढ़ गए जिससे इनके आपसी मेल की सम्भावना समाप्त होती गई। उस समय अशिक्षित एवं पीड़ित जनता में भय, कलह तथा अंधविश्वास घर कर गया था। इनकी शिक्षा का राज्य की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं था। ब्राह्मणों की कुछ पाठशालाएँ धनी वणिकों की कृपा पर चला करती थीं। मुसलमानों की पाठशालाओं को राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। पक्षपातपूर्ण दृष्टि के कारण कोई व्यक्ति

---

१. डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल आव् द मुगल इम्पायर, पृ० ३३६-३८।

सभी भक्तिकालीन मुसलमान बादशाहों में कम या अधिक बराबर बनी रही। केवल सम्राट् अकबर इसका अपवाद था। उसके राज्यकाल में हिन्दुओं को अवश्य कुछ राहत मिली थी। हिन्दू राजाओं से उसने बेटी-रोटी का सम्बन्ध स्थापित किया था। धार्मिक सहिष्णुता के प्रदर्शनार्थ उसने व्रज-क्षेत्र में गोवध बन्द कर दिया तथा गायों के चरागाहों को राज्य-कर से मुक्त कर दिया था। मोर आदि पक्षियों का वध भी शिकार खेलने में बन्द करवा दिया था।[1] अकबर की इस कुशल राजनीति का आगे उसके उत्तराधिकारियों ने अच्छी तरह पालन नहीं किया। कुछ इसी पद्धति पर चलने की जहाँगीर ने कोशिश की थी परन्तु सफलता उसके हाथ नहीं लगी। उसने भी बाद में हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त करवाया।

पराजित एवं त्रस्त हिन्दुओं ने घोर यातनाएँ सहकर भी मुसलमानों के सम्मुख पूर्ण आत्मसमर्पण कभी नहीं किया। समय-समय पर उनकी विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हो उठती थी। इस कारण विदेशी बादशाहों को बराबर उनका भय भी बना रहता था। कुछ मुसलमान बादशाहों ने हिन्दुओं से मेल करने का—इसी कारण प्रयास भी किया था लेकिन एक-दूसरे ने कभी किसी का विश्वास नहीं किया।

मुसलमान शासकों से ब्याही हिन्दू रानियों में भी कभी-कभी हिन्दुत्व की प्रखर भावना उद्दीप्त हो उठती थी। सर्वस्व समर्पित कर देने पर भी अपनी प्राचीन मर्यादित परम्परा के प्रति उनमें मोह बना रहता था। इस द्विविधात्मक स्थिति के दुःखद परिणाम भी इतिहास में दिखाई देते हैं। सन् १५८४ ई० में जयपुर के राजा भगवानदास की पुत्री मानबाई की शादी अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम के साथ बड़ी धूम-धाम से हुई। राजा भगवानदास ने अतुल धन-राशि तथा सौ हाथी दहेज रूप में दिये। सलीम अपनी इस प्रथम पत्नी को अत्यधिक प्यार करता था। अपनी मोहब्बत के कारण सलीम ने उसका नाम शाह बेगम रखा था। विवाह के बीस वर्ष बाद मानबाई के एक भाई माधोसिंह ने परिवार में उस पर कलंक लगाया। इस पर उसे इतनी आत्मग्लानि हुई कि उसने अफीम खाकर आत्महत्या कर ली। उसकी मृत्यु से सलीम को मर्मान्तिक पीड़ा हुई।[2] खुसरो जैसा पुत्र पैदा करने वाली रानी की यह स्थिति उसके हिन्दू-संस्कार के कारण हुई। इससे स्पष्ट है कि हिन्दू-मुसलिम पूर्ण हार्दिक मेल किसी भी स्थिति में कभी नहीं हो पाया।

भक्तिकालीन प्रायः प्रत्येक मुसलमान बादशाह अपने उत्तराधिकारियों से आतंकित रहता था। बादशाह के जीवनकाल में ही उसके लड़के राजगद्दी पर बैठने के लिए विकल हो उठते थे। मुगल बादशाहों में तो उत्तराधिकारियों द्वारा राज्य-प्राप्ति करने की परम्परा बन गई थी। अकबर के प्रिय पुत्र सलीम ने भी सन् १६०३ ई० में अपने पिता के विरुद्ध क्रान्ति कर दी थी, लेकिन वह असफल रहा। अबुलफजल

की हत्या उसी ने ६ अगस्त सन् १६०२ ई० को करवाई थी जिससे अकबर विक्षिप्त हो उठा था।[1] इस प्रकार इन बादशाहों के परिवार में अनुशासन के संस्कार की कमी थी। जब राजाओं की ऐसी स्थिति थी तो प्रजा की क्या दशा रही होगी ?

भारतीय मुसलमान शासक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी थे। राजा की इच्छा सबसे बड़ा कानून थी। शासन का मूलाधार स्वार्थपरक दंडनीति थी। इस प्रवृत्ति के कारण लोगों में आतंकजन्य राजभक्ति तो जगी परन्तु राष्ट्रभक्ति का सर्वथा अभाव हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि किसी भी व्यक्ति को शासक मान लेने में जनता को कोई हिचक नहीं रह गई थी, क्योंकि उसके जीवन में शासन-परिवर्तन से कोई अन्तर नहीं आता था। उसके कल्याण और विकास की कोई आशा नहीं रह गई थी। वह अपने जीवन की सुख-सम्पन्नता से हताश हो चुकी थी। इसी कारण आगे चलकर मुगलों की अवनति के समय उसने कोई सहयोग प्रदान नहीं किया यद्यपि शासक-वर्ग सहायता की याचना करता रह गया।

सामाजिक :

भक्तिकालीन समाज की अवस्था दयनीय थी। शासकीय कठोरता एवं आन्तरिक कमजोरियों के कारण वह जर्जर हो चुका था। सारा समाज राजभक्त एवं साधारण मनुष्य दो भागों में विभक्त था। राजभक्त लोग सुख-समृद्धियों से सम्पन्न विलासी प्रकृति के होते थे। साधारण जनता पर उनका आतंक छाया रहता था। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति बिना राजभक्त बने सम्मानित जीवन नहीं बिता सकता था। वह राज्य के कर्मचारियों द्वारा किसी भी क्षण अपमानित किया जा सकता था।

समाज की दो इकाइयाँ थीं, हिन्दू और मुसलमान। हिन्दुओं में भी जातियों-उपजातियों के अनेकानेक भेदोपभेद थे। इन भेदों के कारण हिन्दुओं में भी ऐक्य-भाव का अभाव था। स्थान, कार्य, वंश आदि के आधार पर बनी हुई ये जातियाँ आडम्बरों के जाल में फँसकर उलझ गई थीं। विधर्मियों के अत्याचार का खुलकर सामना करने में असमर्थ होने पर ये आपसी विवाह-शादी, खान-पान आदि के आन्तरिक नियम-बन्धनों को कठोर बनाकर अपनी सुरक्षा का रास्ता निकालती थीं। इन आन्तरिक बन्धनों के कारण ऊँच-नीच, छुआछूत आदि के संकीर्ण भेद-भाव इन्हीं में अत्यधिक बढ़ गए जिससे इनके आपसी मेल की सम्भावना समाप्त होती गई। उस समय अशिक्षित एवं पीड़ित जनता में भय, कलह तथा अंधविश्वास घर कर गया था। इनकी शिक्षा का राज्य की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं था। ब्राह्मणों की कुछ पाठशालाएँ धनी वणिकों की कृपा पर चला करती थीं। मुसलमानों की पाठशालाओं को राज्य की ओर से सहायता मिलती थी। पक्षपातपूर्ण दृष्टि के कारण कोई व्यक्ति

---

१. डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी, राइज एण्ड फाल आव् द मुगल इम्पायर, पृ० ३३६-३८।

संतुष्ट न था। सत्य एवं न्याय का गला राज्य एवं समाज दोनों ओर से दबाया जाता था। गरीब जनता के लिए चारों तरफ भयंकर अन्धकार था। हिन्दुओं की तथा-कथित छोटी जातियों की स्थिति निकृष्टतम कोटि की थी।

आर्थिक :

आर्थिक दृष्टि से भारतीय समाज धनिक और गरीब दो भागों में बँटा हुआ था। धनिक वर्ग विलासी था और प्रायः शहरों में ही रहता था। 'धनिक और मध्यम वर्ग में राज्य के मुसलमान कर्मचारी थे जो शहरों में ही रहते थे। राजकीय प्रशासन भी शहरों तक ही सीमित रहता था। गाँवों को उपेक्षा एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता था और ग्रामीणों को कठोर दण्ड देकर भयभीत रखा जाता था। गाँव और शहर का केवल इतना ही सम्बन्ध था कि शहरों को गाँव वालों से धन तथा खाद्य-सामग्री प्राप्त करनी पड़ती थी। ग्रामीण जीवन नागरिकों के लिए अत्यन्त अनुपयुक्त समझा जाता था।'[1] कहने का तात्पर्य यह कि गाँव वाले शहर वालों के सुख के साधन-मात्र समझे जाते थे।

हिन्दू जनता की आर्थिक स्थिति दयनीय थी। 'उनका जीवन निर्धनता, हीनता तथा कठिनाइयों का था। उनकी आय उनके परिवार के लिए अपर्याप्त थी। ...राजकीय कर का अधिकांश भाग उन्ही पर रहता था।'[2] किसानों की खेती प्रकृति पर निर्भर करती थी। इसलिए प्रायः अकाल का सामना उन्हें करना पड़ता था। उन दिनों अकाल भी बार-बार पड़ते थे। केवल अकबर के शासनकाल में तीन बार अकाल पड़ा था। इन अकालों के समय ऐसा नर-संहार होता था कि देश का ग्रामीण-भाग जनहीन हो जाता था। ऐसे समयों में भुखमरी से मृत्यु होना साधारण बात थी। सन् १६५५-५६ ई० तथा १५९५-९८ ई० के अकालों का वर्णन करते हुए विद्वानों ने लिखा है कि 'मनुष्य, मनुष्य को खा जाते थे, क्षुधा-पीड़ितों का स्वरूप इतना भयानक होता था कि कोई उनकी ओर आसानी से देख भी नहीं सकता था। गलियां और सड़कें, मनुष्यों की लाशों से जाम हो गई थी। उनको हटाने का कोई साधन नहीं था। सारा दिल्ली नगर जनहीन एवं उजाड़ हो गया था। मैदानी भाग में एक भी किसान दिखाई नहीं देता था।'[3] इससे स्पष्ट है कि जन-साधारण की प्राण-रक्षा का अकाल के समय कोई साधन नहीं था।

धार्मिक :

भक्तिकालीन विकट परिस्थितियों के मूल में धार्मिक परिस्थितियाँ कार्य

करती थीं। मुसलमान बादशाह राज्य के साथ-साथ अपना धर्म-विस्तार भी करना चाहते थे। इसके लिए वे शक्ति का प्रयोग करते थे जिसके फलस्वरूप उनके धर्म के प्रति जनता में आस्था की जगह घृणा पैदा हो जाती थी। 'मूर्तियों का खंडन करना, विरोधी विश्वासों का हनन करना, हिन्दुओं को मुसलमान बनाना एक आदर्श मुसलमान का कर्त्तव्य समझा जाता था।'[1] अकबर को छोड़कर प्रायः सभी विधर्मी तत्कालीन बादशाहों ने हिन्दू मन्दिरों को ध्वस्त करवाया। देशवासियों का धार्मिक अस्तित्व डावाँडोल हो उठा था। उनको इस्लाम अथवा तलवार की धार में से एक को वरण करने के लिए बाध्य किया जाता था। उनकी सुरक्षा के लिए एक सरल साधन वहेलिए के कम्पास की भाँति इस्लाम प्रस्तुत किया जाता था। परन्तु इस्लाम के प्रचारकों ने अपने वीभत्स रक्तपात एवं नृशंस आचरण से भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल अपने को सिद्ध कर दिया था। इसलिए मृत्यु को पसन्द करना जनता को अभीष्ट था लेकिन मुसलमान बनना नहीं। अकबर के समन्वयवादी धर्म 'दीनइलाही' तथा सूफियों के मध्यम मार्ग की ओर भी वह इसी कारण आकृष्ट न हो सकी। इस्लाम के नाम से वह चिढ़ती थी। इस्लाम की अपेक्षा वह मृत्यु को अधिक पसन्द करती थी।

ईसा की दसवीं शताब्दी के बाद से पूरे देश में धार्मिक आन्दोलन चल पड़े थे। यह निर्गुण सगुणवादी भक्तों का भक्ति आन्दोलन था। निर्गुणवादी वज्रयानी सिद्ध तथा नाथपंथी योगी थे। ये योग-साधना, आत्मनिग्रह तथा श्वास-निरोध की प्रक्रिया द्वारा परमपद प्राप्त करने का रास्ता बताते थे। उनके चमत्कार तथा अटपटी बानियों से जनता आश्चर्यचकित थी। इनके कारण धर्म में भी भ्रम छाया हुआ था। सगुणवादियों के कई सम्प्रदाय तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर सामने आए। विशिष्टाद्वैतवादी आचार्य रामानुज की शिष्य-परम्परा में स्वामी रामानन्द ने भक्तियुग में रामोपासना का जोरदार प्रचार किया। मध्वाचार्य जी ने द्वैतवादी वैष्णव सिद्धान्त का निरूपण किया। निम्बार्काचार्य ने द्वैताद्वैत तथा वल्लभाचार्य ने शुद्धाद्वैत के पुष्टिमार्ग की स्थापना की। उनकी शिष्य-परम्परा और उनकी शाखा-प्रशाखा द्वारा सगुण कृष्णभक्ति की अनेक शाखाएँ चल पड़ीं। अनेक संत-महात्मा अपने-अपने सम्प्रदायों को लेकर प्रचार में लगे। इन महापुरुषों के आन्दोलन ने हताश जनता को कष्ट झेलने की शक्ति एवं साहस प्रदान किया।

पूर्ववर्ती तथा समसामयिक संस्कृत-साहित्य :

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य के प्रेरणास्रोत तत्कालीन परिस्थितियों के अतिरिक्त पूर्ववर्ती तथा समसामयिक संस्कृत वाङ्मय भी था। धर्म-सम्बन्धी वाङ्मय के अन्तर्गत उपर्युक्त सगुण वैष्णव महात्माओं की भाष्य कृतियाँ हैं। इनकी रचनाओं

---

१. डॉ० ईश्वरीप्रसाद, हिस्ट्री आव् मेडियल इण्डिया, पृ० ४६७।

में इनके सम्प्रदायगत सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है। इनमें प्रस्थानत्रयी अथवा केवल ब्रह्मसूत्र पर भाष्य किया गया है। रामानुज से लेकर वल्लभाचार्य तक सभी ने इसी भाष्य-पद्धति पर कार्य किया है। रामानुज का गीताभाष्य तथा श्रीभाष्य नाम की दो रचनाएँ है जिनमें ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर विशिष्टाद्वैत मत द्वारा तर्कयुक्त ढंग से सगुण भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। इनकी शिष्य-परम्परा में रामानन्द सर्वप्रसिद्ध रामभक्त महात्मा हुए। तेरहवीं शताब्दी में मध्वाचार्य ने पूर्णप्रज्ञाभास लिखकर द्वैतवादी वैष्णव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। निम्बार्काचार्य ने वेदान्त पारिजातसौरभ, दशश्लोकी, श्रीकृष्णस्तवराज, मंत्ररहस्यषोडशी तथा प्रपन्नकल्पवल्ली नामक रचनाएं प्रस्तुत कीं। इनका द्वैताद्वैतवादी सिद्धान्त था। पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य ने अणुभाष्य, पूर्वमीमांसाभाष्य, तत्त्वदीपनिबंध, सुबोधिनी तथा षोडश ग्रंथ आदि ग्रंथों की रचना की। इनके अतिरिक्त गौडीय वैष्णव सम्प्रदाय के संस्थापक श्री चैतन्यमहाप्रभु के पश्चात् रूपगोस्वामी ने संस्कृत में अनेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भक्ति-सम्बन्धी ग्रंथों की रचनाएँ कीं। ये ग्रंथ हैं—भक्तिरसामृतसिंधु, उज्ज्वलनील-मणि, भागवतसंदर्भ (षड् संदर्भ) तथा लघुभागवतामृत। इनमें प्रथम दो ग्रंथ काव्यात्मक ढंग से रसशास्त्र की परिपाटी पर लिखे गए हैं। इनमें भक्तिरस तथा उससे अन्य अंगों का सांगोपांग विशद् एवं सरस वर्णन हुआ है। इसमें नायिका-भेद की पद्धति को भी ग्रहण किया गया है। यहाँ तक कि सामान्य को छोड़कर प्रायः सभी प्रकार की नायिकाओं के स्वरूप को अपनाया गया है। इन रचनाओं के अतिरिक्त और भी छोटी-छोटी धार्मिक रचनाएँ संत-महात्माओं द्वारा उस समय संस्कृत में लिखी गई हैं जो उपर्युक्त ग्रंथों के सम्मुख महत्त्व पाने योग्य न थीं। भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य की प्रेरणाभूमि ये ही धार्मिक कृतियाँ थीं। हिन्दी में भक्तिकाव्य परम्परा को इन्हीं से आधार मिला। उस समय की साहित्यिक प्रेरणा देने वाली संस्कृत की शुद्ध साहित्यिक एवं काव्यशास्त्रीय रचनाएँ भी थीं जो उस काल के आस-पास लिखी गई थीं। यद्यपि उनकी परम्परा प्राचीन थी।

अपनी आलोचना में इन्होंने अकाट्य तर्क एवं सटीक प्रमाण भी उपस्थित किया है। इन शास्त्रीय ग्रंथों में साहित्यशास्त्र की कोई विवेचना छूटने नहीं पाई है। इनका योग हिन्दी साहित्य के निर्माण में सर्वाधिक रहा है।

संस्कृत में कुछ शृंगारिक रचनाएँ भी इस समय होती रही हैं। बारहवीं शती में हाल की 'गाथा सप्तशती' के आधार पर गोवर्धनाचार्य ने 'आर्यासप्तशती' की रचना की। यह ग्रंथ नायक-नायिकाओं की ललित क्रीड़ाओं एवं कामजन्य भाव-भंगिमाओं से अनुस्यूत है। इसके पश्चात् गीतगोविन्दकार जयदेव ने अपने गीतों के स्वर में शृंगार का लालित्य दर्शाया जिसकी सरलता एवं माधुर्य सर्वसमादृत है। रसगंगाधरकार पंडितराज जगन्नाथ का 'भामिनीविलास' भक्तिकाल के अन्तर्गत ही लिखा गया जो अपनी विलासी शृंगारिकता के लिए प्रसिद्ध है। इन शृंगारी रचनाओं के अतिरिक्त नायिका-भेद-सम्बन्धी स्वतन्त्र ग्रंथ भी संस्कृत में इस समय लिखे गए।[1] इनमें भानुदत्त की 'रसमंजरी' सर्वप्रसिद्ध है। इसी ग्रंथ को आधार बनाकर मध्यकालीन हिन्दी कवियों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। अनेक कवियों ने इसका पद्यबद्ध अनुवाद किया।

भक्तिकालीन वातावरण में कुछ संस्कृत के नाटक भी लिखे गए जिन्होंने भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य को प्रेरणा प्रदान की। इनमें ग्यारहवीं शताब्दी के कृष्ण-मिश्र का 'प्रबोधचंद्रोदय' तथा 'चंद्रालोक' के रचयिता जयदेव का 'प्रसन्नराघव' विशेष उल्लेखनीय है। प्रबोधचंद्रोदय रूपकात्मक नाटक है। इसमें विद्या, बुद्धि, मोह आदि अमूर्त भावों को पात्र बनाया गया है। इन्हीं पात्रों को गोस्वामी तुलसीदास ने राम-चरितमानस के अरण्यकाण्ड में पंचवटी-वर्णन के प्रसंग में आध्यात्मिक रूपक के अंतर्गत अपनाया है। प्रसन्नराघव के कई पद्यों को तो रामचरितमानस में अनुवाद करके रखा गया है।[2] इस प्रकार के भक्तिकालीन साहित्य में अधिकाधिक स्थल प्राप्त हैं जिनको यहाँ दिखाया नहीं जा सकता है। संस्कृत साहित्य की उपर्युक्त सभी विधाएँ मध्य-कालीन हिन्दी साहित्य को प्रभावित करती रही हैं।

भक्ति काव्य :

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होकर जो साहित्य प्रणीत हुआ उसे यहाँ भक्तिकाव्य कहा गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उसका स्थान वही है जो मानव-शरीर में हृदय का। उसके प्रेरक स्रोत थे तत्का-लीन धार्मिक सम्प्रदायगत परिस्थितियाँ एवं संस्कृत साहित्य। लौकिक जीवन के दुर्निवार संकटों से त्राण पाने के लिए इस काव्य में मानव-मात्र को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख किया गया है। भगवान् से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करके उसकी

---

१. पं० करुणापति त्रिपाठी, संस्कृत में नायिकाभेद और रसिकजीवनम्, उद्धृत नागरी प्रचारिणी पत्रिका, संवत् २०१६, अंक २।

२. तुलसी ग्रंथावली, भाग ३, पृ० ६३-६४।

शरण लेने का एक स्वर से आग्रह किया गया है। उसको स्वामी, राजा, पिता, पति, पत्नी, मित्र आदि निकटतम रूप में देखा गया तथा उसे प्राप्त करने का सरलतम मार्ग प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। इसीलिए नाम का माहात्म्य अधिक बताकर ईश्वर का नाम जपने को कहा गया। मोक्ष-प्राप्ति के अन्य साधनों को कठिन समझकर उन्हें छोड़ दिया गया। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से निराश मानव में आशा का संचार केवल भक्ति से ही हो सकता था।

भक्तिकाव्य में ईश्वर को सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, सर्वकर्ता, संहर्ता, अनादि, अनन्त एवं अविनाशी माना गया। उसको प्राप्त करने के लिए भक्ति के मार्ग अलग-अलग बताए गए। इसलिए साध्य के एक होते हुए भी साधनों की विभिन्नता के कारण भक्तिकाव्य में मुख्यतः दो धाराएँ प्रवाहित हुईं। एक को निर्गुणधारा और दूसरी को सगुणधारा कहा गया। इन दोनों प्रवृत्तियों के सिद्धान्तों में अनेक परस्पर-विरोधी तत्त्व भी वर्तमान हैं। फलस्वरूप एक-दूसरे के सिद्धान्तों का खंडन-मंडन भी इनमें है। इन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

निर्गुण प्रवृत्ति :

भक्तिकाव्य की निर्गुण प्रवृत्ति ईश्वर को त्रिगुणातीत मानकर चली। इसमें ब्रह्म को सर्वव्यापी मानकर एकेश्वरवाद की उपासना चलाई गई। धर्म की प्राचीन मान्यताओं का अर्थ अपने ढंग से लगाया गया। ब्रह्म-प्राप्ति का प्रधान साधन प्रेम को माना गया। प्रेम करने की पद्धतियां दो प्रकार की बताई गईं जिनके आधार पर ज्ञानमार्गी तथा प्रेममार्गी दो धाराएँ मानी गईं। ज्ञानमार्गियों को निर्गुणी तथा प्रेममार्गियों को सूफी संत कहा जाता है। इनकी अलग-अलग विशेषताएँ कुछ इस प्रकार हैं—

ज्ञानमार्गी धारा—निर्गुण प्रवृत्ति की ज्ञानमार्गी साहित्य-सर्जना अपने पूर्व-प्रचलित भारतीय धर्मों के सारभूत तत्त्वों से निर्मित हुई है। नाथों और सिद्धों से लेकर सूफियों और वैष्णवों तक के गुणों को इनमें ग्रहण किया गया है। इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है कि 'यह सामान्य भक्तिमार्ग एकेश्वरवाद का एक ऐसा अनिश्चित स्वरूप लेकर खड़ा हुआ जो कभी ब्रह्मवाद की ओर ढलता था और कभी पैगंबरी खुदावाद की ओर। यह निर्गुण पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।'[1] वस्तुतः यह प्रवृत्ति अनेक धर्म-पुष्पों से निःसृत मधु-स्वरूप थी। 'इसका दर्शन उपनिषद्, भारतीय षड्दर्शन, बौद्ध धर्म, सूफी सम्प्रदाय एवं नाथ सम्प्रदाय की विश्वजनीन अनुभूतियों के तत्त्वों को मिलाकर सुसंगठित हुआ है।'[2] इसमें अन्य धर्मों के गुणों को ग्रहण करने का प्रयास किया गया और दोषों पर कठोर प्रहार किया गया है। इनका

प्रहार किसी मत को ध्वस्त करने के लिए नहीं, उसे परिष्कृत स्वरूप प्रदान करने के लिए होता था।

ज्ञानमार्गियों का ईश्वर एक है जो घट-घट में व्याप्त है। जीव ईश्वर का ही अंश है। ईश्वर को प्राप्त करने का एकमात्र साधन प्रेम है। प्रेम का मार्ग अत्यन्त कठिन है। उस पर चलना बहुत बड़ी साधना है। प्रेम-मार्ग का प्रदर्शन गुरु का कार्य है। इसलिए इस सम्प्रदाय में गुरु का महत्त्व सर्वाधिक है। यहाँ तक कि गुरु ईश्वर से भी बड़ा माना जाता है। गुरु भी ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है। इसलिए गुरु का पाना बहुत कुछ ईश्वर को पाना है। साधक को यदि सर्वस्व न्योछावर करके भी गुरु की प्राप्ति हो सके तो उसे सस्ता ही समझना चाहिए।

निर्गुणियों ने साधना के क्षेत्र में सहज समाधि, सुरति-निरति आदि योग क्रियाओं को माना है। योग-साधना की शक्ति प्रत्येक मनुष्य में मानी गई है। मनुष्य जन्म के बाद ज्यों-ज्यों माया में लिपटता जाता है त्यों-त्यों यह शक्ति उसमें कम होती जाती है। इसलिए साधक को सांसारिक मोह-माया से अलिप्त रहना चाहिए। जिस राम के नाम का जप करने की सलाह निर्गुणियों ने दी है वे राम दशरथ-पुत्र राम से भिन्न हैं। वे कभी न जन्म लेते हैं न मरते हैं। इस प्रकार अवतारवादी सिद्धान्तों से इनकी असहमति ठहरती है। इनका कथन है कि 'सर्वव्यापी ब्रह्म को अवतार की कल्पना द्वारा किसी व्यक्ति में सीमित करना धोखा देना है। ब्रह्म कभी अवतार नहीं लेता है।'[1]

मूर्ति-पूजा एवं जाति-पाँति के भेद-भाव से निर्गुणी संत चिढ़ते थे और उसके समर्थकों को अत्यन्त खरी-खोटी कटूक्तियाँ सुनाते थे।[2] वस्तुतः ये साम्प्रदायिकता के कट्टर विरोधी थे। इनका विश्वास था कि धार्मिक एवं साम्प्रदायिक भेदभाव मनुष्य-निर्मित एवं निम्न कोटि का सिद्धान्त है। सभी मनुष्य बराबर एवं एक ही परमात्मा के अंश हैं। सभी का निर्माण एक ही तत्त्व से हुआ है। ईश्वर से प्रेम करने के सभी समान अधिकारी हैं।

इस सम्प्रदाय के अन्तर्गत साधु-संगति को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था। यहाँ तक कि सगुणवादियों को सम्बोधित करके कहा गया कि 'जो चाहे आकार तू साधु—परतिप देव' अर्थात् उन्होंने सगुणवादियों के अवतारी ब्रह्म को अपने साधुओं के बराबर माना। अहिंसा के ये परम पुजारी होते थे। हिन्दू-मुसलमान दोनों की हिंसक वृत्ति से इन्हें घोर घृणा थी। शास्त्रग्रंथों में कही गई बातों की अपेक्षा ये गुरु के उपदेश पर अधिक विश्वास करते थे क्योंकि गुरु का उपदेश अनुभवजन्य होता था।

ज्ञानमार्गी संतों में कुछ व्यक्तिगत विशेषताएं अत्यन्त उच्च कोटि की थीं।

---

१. सम्पादक डा० श्यामसुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, पृ० २४३।
२. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ० २७२।

इनमें अहं भाव का अभाव था। दया, संतोष एवं क्षमा से इनका हृदय परिपूर्ण था। गृहस्थ होकर भी ये मायावी आकर्षण से दूर रहते थे। किसी भी सिद्धांत के सारभूत तत्त्व को ग्रहण करने की इनमें विलक्षण शक्ति थी। हृदय से ये स्वच्छ एवं सिद्धान्त के पक्के होते थे। इसी कारण इनका प्रेम विकारग्रस्त कभी नहीं हुआ, जबकि सूफियों एवं कृष्ण भक्तों का प्रेम आगे चलकर लौकिक शृंगार की अभिव्यंजना का साधन बन गया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सूफियों की प्रेम-भावना से प्रभावित होने पर भी निर्गुणी संत उपनिषदिक प्रेम-भावना की सुरक्षा करते रहे।[1]

प्रेममार्गी धारा—निर्गुण प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रेममार्गी धारा सूफी संतों की है। इन्होंने ज्ञानमार्गी संतों के सारे सिद्धान्तों को स्वीकार किया परन्तु उनकी भाँति अन्य धार्मिक पद्धतियों का खंडन नहीं किया और अपने मूल धर्म की ओर आस्था बनाए रखी। 'ये नबियों और पैगम्बरों के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए सारी इस्लामी बातों से प्रेम करते थे।'[2] इनका प्रयास हिन्दू-मुस्लिम धर्मों में समन्वय लाने का था। इसीलिए हिन्दू प्रेम-कहानियों द्वारा मसनवी पद्धति पर अपने सिद्धान्तों का इन्होंने निरूपण किया। ज्ञानमार्गियों की सभी बातों को ग्रहण करके इस्लाम और भारतीय धर्मों का घाल-मेल इनके द्वारा तैयार किया गया।

सूफियों का प्रेम-निरूपण ज्ञानमार्गियों से भिन्न प्रकार का होता है। ये लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना करते हैं। इनका सिद्धान्त है कि लौकिक प्रेम की कठिनाइयों को सहकर साधक अलौकिक प्रेम की कठिनाइयों को सह लेने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। लौकिक प्रेम को ही अलौकिक प्रेम की ओर इन्होंने निरमुखीकरण किया। इनका साधक सर्वप्रथम किसी सांसारिक व्यक्ति के रूप-गुण आदि पर लुब्ध होता है और उसका प्रेम पाने के लिए तपस्या आरम्भ करता है। बाद में वही तपस्या अलौकिकता की ओर उन्मुख कर दी जाती है। इस प्रकार इनकी प्रेम-साधना का आरम्भ लौकिक शृंगार से होता है और अन्त अलौकिक शृंगार में। ज्ञानमार्गियों में लौकिक प्रेम के लिए कोई स्थान नहीं है।

सगुण प्रवृत्ति :

हिन्दी भक्तिकाव्य में सगुण प्रवृत्ति ईश्वर के साकार स्वरूप को मानकर चली। इसमें ब्रह्म के त्रिगुणातीत स्वरूप को माना गया। परन्तु उसे षड्गुण-युक्त कहा गया। छः गुण—ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, बल, वीर्य तथा तेज। इस प्रकार 'सब द्वन्द्वों से विनिर्मुक्त, सब उपाधियों से विवर्जित, सब कारणों का कारण—षड्गुण रूप परब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों है।'[3] सगुणवादी भक्तों ने ईश्वर के दोनों स्वरूपों को

स्वीकार किया परन्तु निर्गुण को अत्यन्त कठिन एवं अव्यावहारिक बताया। उसे साधारण और भोली-भाली जनता की पहुँच से परे सिद्ध किया।

निर्गुणवादियों के तर्कों को सगुण भक्तों ने अंशत: स्वीकार किया और अंशत: उनका प्रत्याख्यान भी; परन्तु कठिनाइयों के कारण निर्गुण रूप को अग्राह्य बताकर सगुणों के ही भीतर निर्गुण को भी समादृत कर लिया। वस्तुत: बिना गुण का सहारा लिए निर्गुण शब्द बन ही नहीं सकता और न व्यक्त ही किया जा सकता है। किसी भी अरूप तत्त्व की अभिव्यक्ति के लिए उसके विपरीत तत्त्व (निगेटिव फार्म) का सहारा लेना पड़ता है। जैसे ज्ञान को व्यक्त करने के लिए अज्ञान का, प्रकाश के लिए अंधकार का सहारा लेना पड़ता है वैसे ही निर्गुण को व्यक्त करने के लिए सगुण को स्वीकार करना पड़ेगा। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसलिए निर्गुण ब्रह्म को सगुण भी माना गया।

भक्तिकाव्य में निर्गुण प्रवृत्ति को ज्ञान का और सगुण प्रवृत्ति को भक्ति का प्रतीक माना गया है। माया-लिप्त संसार में मनुष्य को ब्रह्म की प्राप्ति कराने के लिए भक्ति को अधिक सफल सिद्ध किया गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने ज्ञान को पुरुष तथा भक्ति को स्त्री मानकर यह दिखाया है कि ज्ञान-पुरुष को माया-नारी प्रभावित कर सकती है। परन्तु भक्ति स्वयं नारी है इसलिए माया का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। रामचरितमानस में (उत्तर काण्ड) रूपक द्वारा ज्ञान का प्रकाश करने वाले दीपक को प्रज्ज्वलित करने की कठिनाइयों को उन्होंने विस्तारपूर्वक समझाया है। दीपक के जल जाने पर भी माया का सामान्य झोंका उसे आसानी से समाप्त कर देगा, परन्तु भक्ति की सरसता पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इस प्रकार भक्ति की स्वाभाविक सरसता एवं ज्ञान की नीरसता तथा परुषता के कारण भक्ति को ग्राह्य एवं ज्ञान को त्याज्य बताया गया। सूर के गोपी-उद्धव संवादों में अनेक दृष्टियों से निर्गुण की निरर्थकता और सगुण की ग्राह्यता का प्रतिपादन किया गया है।

सगुणवादी भक्तों ने ब्रह्म के अवतार को स्वीकार किया तथा उसमें विश्वास पैदा करने के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया। तर्क, भय, श्रद्धा, विश्वास, प्रलोभन आदि के द्वारा साम, दाम, दंड, भेद की सभी नीतियों को इस कार्य के लिए अपनाया गया। इनका ब्रह्म केवल कल्पना-क्षेत्र का ही नहीं बल्कि मानव-समाज में घुल-मिल कर रहने वाला तथा उनके सुख-दुःख में सुखी-दुःखी होने वाला दिखाया गया। इस मान्यता के कारण उनके सिद्धान्तों के प्रति विशेष आकर्षण पैदा हुआ।

राम-कृष्ण सम्बद्ध :

हिन्दू धर्म में स्वीकृत सभी अवतारों के प्रति आस्था प्रकट करते हुए राम और कृष्ण के अवतारों की इस काव्य में उपासना की गई है। इस प्रकार रामभक्ति तथा कृष्णभक्ति का प्रचार हुआ। रामभक्त गोस्वामी तुलसीदास दास्य-भाव के

सर्वश्रेष्ठ उपासक हुए। उन्होंने राम के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण किया तथा अपने को भगवान् का दास माना। राम का जीवन आदर्शपूर्ण दिखाया गया। स्वामी, राजा, पुत्र, पिता, पति आदि सभी रूपों से उनका आदर्शरूप सामने लाया गया। इसके फलस्वरूप मानव-जीवन में राम का आदर्श चरित व्याप्त हो गया। भक्ति के क्षेत्र में उनका एकाधिपत्य हो गया परन्तु साहित्य की सरसता के लिए उनमें आकर्षण नहीं रह गया। इसी कारण गोस्वामीजी की साहित्यिक परम्परा आदर्शवाद में उलझ-कर आगे न चल सकी।

कृष्णभक्ति के अन्तर्गत दास्य, सख्य, माधुर्य एवं वात्सल्य भावों की उपासना-पद्धति चलाई गई। कृष्ण अनुपम स्वामी, रसिक प्रेमी एवं अद्भुत बालक के रूप में चित्रित किए गए। इस प्रवृत्ति के कारण साहित्य में कृष्ण का प्रेमी स्वरूप अधिक दिखाया गया। फलस्वरूप कृष्णकाव्य में सरसता अधिक आई और शृंगार की अनुपम झाँकियाँ प्रस्तुत की गईं। इसकी सरसता इतनी प्रभावशाली सिद्ध हुई कि आगे चलकर रामभक्त भी इससे प्रभावित हुए और मर्यादा की सीमा लाँघ कर राम का भी शृंगारी स्वरूप चित्रित करने लगे। हिन्दी साहित्य का समस्त वातावरण इससे प्रभावित हो उठा। इसकी साहित्यिक परम्परा निर्बाध रूप से चल पड़ी। रीतिकाव्य को मूल प्रेरणा इसी से मिली जिसके फलस्वरूप शताब्दियों तक शृंगारिक रचनाएँ होती रहीं।

रीतिकाव्य :

संवत् १७०० से १९०० वि० के मध्य एक विशेष ढंग की रचनाओं को यहाँ रीति साहित्य कहा गया है। रीति शब्द का अर्थ यहाँ एक विशेष शैली है जिसकी इस युग में प्रधानता रही है। इस शैली के अन्तर्गत रस, नायिका-भेद, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति आदि के शास्त्रीय सिद्धान्तों को दृष्टि में रख कर लिखा जाता रहा है जिससे दो प्रकार की रचनाओं का निर्माण हुआ। एक में इन सिद्धान्तों के अनुसार सरस साहित्य लिखा गया, दूसरे में दोहा, छंद द्वारा इनकी शास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत करके उदाहरण रूप में साहित्य की रचना की गई। इस प्रकार लक्षण और लक्ष्य दो प्रकार के साहित्य का सर्जन हुआ। इन दोनों प्रकार की रचनाओं में शृंगार रस की प्रधानता रही है। शृंगार का ऐसा प्रबल प्रवाह इनमें दिखाई देता है कि साहित्य की समस्त विधाएँ सर्वांग उसी में विलीन हो गई हैं। रीतिकाव्य आध्यात्मिक आवरण को हटाकर शुद्ध साहित्यिक परम्परा को लेकर चला। इसकी काव्यगत [illegible] शुद्ध साहित्यिक हैं। जीवन के प्रति ये ईमानदार कवि थे। गार्हस्थ्य जीवन के सर्वाधिक आकर्षक अंग शृंगार को स्वीकार करने का यह भी कारण था।

रीतिकाव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :

का स्वर सर्वाधिक मुखर है। उनकी हर प्रकार की रचना में शृंगार व्याप्त है। जहाँ उन्होंने शास्त्रीय रस-परम्परा का अनुसरण करके प्रत्येक रस का वर्णन किया है वहाँ अन्य रसों पर भी इसी का अधिकार दिखाई देता है। अन्य रस इसी के माध्यम से अभिव्यक्त होते पाए जाते हैं। कहीं-कहीं उनका स्वरूप इसी में विलीन हो गया है। बिहारी के दोहों में ऐसे उदाहरण पाए जाते हैं, जहाँ वात्सल्य जैसे पवित्र भावों को शृंगार में विलीन कर दिया गया है।[1] यह प्रवृत्ति रीतिकाव्य में इतनी आगे तक बढ़ी हुई दिखाई देती है कि शृंगार के बाधक तत्त्वों को भी उसमें चित्रित किया गया है। केशव ने इसी प्रवृत्ति के कारण कृष्ण का शृंगारी स्वरूप वीभत्स परिस्थितियों में भी दिखाया है। ऐसे वर्णनों से शृंगार नहीं वीभत्स रस का रसाभास हुआ है।[2] संतोष की बात यह है कि इस प्रकार की रचनाएँ अत्यल्प मात्रा में ही लिखी गई हैं।

रीतिकाव्य के शास्त्रीय ग्रंथों पर शृंगार का साम्राज्य दिखाई देता है। रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि प्रत्येक विषय के शास्त्रीय ग्रंथों में लक्षणों के पश्चात् उदाहरण प्रायः शृंगार रस के ही दिए गए हैं। रसों के प्रसंग में अनेक कवियों ने अन्य रसों के उदाहरणार्थ एक-एक पद लिखकर छुट्टी पा ली और शृंगार रस पर पूरा ग्रंथ लिख डाला है। ऐसे स्थलों पर शृंगार की अभिव्यक्ति करने के लिए ये आतुर दिखाई देते हैं। साहित्यशास्त्र के अन्य विषयों का स्पर्श भी न करने वाले कवि रीतिकाव्य में मिल सकते हैं परन्तु शृंगारी वर्णन न करने वाला कोई नहीं है। भक्ति और नीति-सम्बन्धी रचना करने वालों ने भी शृंगारी रचनाएँ की हैं चाहे उनका शृंगार आध्यात्मिक ही क्यों न हो। अनेक कवियों ने तो अपने को शृंगार तक ही सीमित रखा है। शृंगार के प्रति इतना प्रबल मोह उस युग के काव्य में दिखाई देता है कि अनेक ग्रंथों में बार-बार एक ही प्रकार की उक्तियों की आवृत्ति कभी-कभी अरुचि पैदा करने वाली हो गई है। ऐसा जान पड़ता है कि रीति-कवि शृंगार-वर्णन करते अघाते नहीं थे। इसीलिए विभिन्न प्रकार के अवसर ढूँढ़-ढूँढ़कर उसकी अभिव्यंजना करके तुष्टि पाते थे।

---

१. बिहँसि बुलाय बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को पिय चूम्यौ मुँह चूमि॥
लरिका लेवै के मिसनि लंगर मों ढिग जाय।
गयो अचानक आंगुरी छाती छैल छुवाय॥ —बिहारी

२. टूटी टाटि घुन घने घूम घूमसेन सने, झींगुर छगोड़ी साँप बिच्छुन की घात जू।
कंटक कलित तिन वलित बिगंध जल, तिनके तलप तल ताको ललचात जू।
कुलटा कुचील गात, अंधतम अधरात, कहि न सकत बस अति अकुलात जू।
छेड़ी में घुसे कि घर ईंधन के घनस्याम घर घरनीनि पहं जात न घिनात जू।
—रसिकप्रिया

रीति-युग संघर्षहीन एवं शान्ति का था। युद्ध का विनाशकारी दृश्य आँखों से ओझल हो चुका था। बादशाह से लेकर छोटे-छोटे सामंत एवं जागीरदार सभी सांसारिक वैभव का आनन्द लूटने में मग्न थे। सुरा-सुन्दरी का उन्मुक्त उपयोग इनके यहाँ होता था। अनेक पत्नियों के अतिरिक्त वेश्याएँ भी इनके यहाँ रहती थीं। साहित्यिक मनोविनोद एवं शृंगार-भावना को उद्बुद्ध करने के लिए कवियों को आश्रय में रखना तत्कालीन रईसों का आवश्यक अंग हो गया था। ये कविगण आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए शृंगारिक रचनाएँ प्रस्तुत करते थे। यह प्रसन्न करने की प्रवृत्ति आगे चलकर यहाँ तक बढ़ गई कि काव्य का आलम्बन आश्रयदाताओं को ही बनाया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि शृंगार रस के नायक और नायिका के रूप मे आश्रयदाताओं एवं उनकी रक्षिताओं का वर्णन होने लगा। इस प्रकार हम देखते है कि रीति कवियों की दृष्टि घूम-फिर कर नारी के आँचल में ही शरण पाती थी और उसका भोगपरक उन्मादकारी चित्र प्रस्तुत करती थी।

संयोग शृंगार—रीतिकाव्य का शृंगार-वर्णन शास्त्रीय परम्परा के अनुसार हुआ है। इसलिए उसके प्रत्येक तत्त्व की विशद् विवेचना यहाँ प्रस्तुत की गई है। इसका संयोग शृंगार-वर्णन साहित्यशास्त्र एवं कामशास्त्र दोनों का अनुसरण करता हुआ चला है। साहित्यशास्त्र के अनुसार चलकर रस के प्रत्येक अवयवों की विवेचना की गई है और कामशास्त्र के अनुसार उनका व्यावहारिक स्वरूप दर्शाया गया है। इन दोनों शास्त्रों के समन्वय द्वारा शृंगार-वर्णन की व्यापक भूमि प्राप्त कर ली गई है।

संयोग शृंगार के वर्णन में रीति कवियों का मन खूब रमा है। कामशास्त्र की सारी क्रीड़ाओं का व्यावहारिक वर्णन इसमें किया गया है। आलिंगन-चुम्बन से लेकर विपरीत रति सुरतान्त तक की सभी क्रीड़ाएँ बार-बार दुहराई गई हैं। अनेक स्थलों पर ये वर्णन अश्लील हो गये हैं। ऐसे काव्यों की रचना के लिए गार्हस्थ्य जीवन की विभिन्न घटनाओं एवं परिस्थितियों की कल्पना करके शृंगाराभिव्यक्ति के लिए कविगण रास्ता निकालते रहे हैं। इन वर्णनों में अनुभावों एवं संचारी भावों का सुन्दर स्वरूप उपस्थित किया गया है। इनमें कवियों की वैयक्तिक ऐन्द्रिय बुभुक्षा भी अभिव्यक्त हुई है। आश्रयदाताओं की भाँति कवि भी लौकिक शृंगार के प्रति आसक्त रहते थे इसलिए उनकी रचनाओं में उनका व्यक्तिगत अनुभव व्यक्त होता था।

पहुँचने की चेष्टा नहीं की गई है। इसी कारण प्रेम का सात्त्विक स्वरूप यहाँ अप्राप्य है। नारी के केवल कामिनी एवं रमणी स्वरूप को यहाँ देखा गया है। उसके प्रत्येक कार्य-व्यापार को उन्मादकारी बनाने की चेष्टा की गई है। जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी उसका कोई स्थान हो सकता है—इस पर इन कवियों ने ध्यान नहीं दिया। यदि कहीं संयोगवश माँ, बहन, बेटी, मित्र आदि का सम्बन्ध इनके काव्य-प्रसंग में आ गया है तो उसे भी शृंगारिक ही बना लिया गया है। वस्तुतः ये सम्बन्ध काम के आवेश में टूट गए हैं। मित्र के रूप में यदि कोई नायिका इनके सम्मुख आई है तो उसे प्रेयसी के रूप में इन्होंने देखा है और यदि भगिनी तथा पुत्री के रूप में आई तो उसे कामिनी की ओर अग्रसर होने वाली पुष्पकली के रूप में। इस प्रकार हर तरफ घूम-फिर कर इनकी भावनाएँ भोगपरक बनी रहीं। इसी प्रवृत्ति के वशीभूत होकर आचार्य केशवदास ने अपने श्वेत केशों को कोसा है।

विदेशी साहित्य की प्रतिद्वन्द्विता एवं विदेशी शासन की मनोवृत्ति से प्रेरित होकर भी रीति कवियों की शृंगार-योजना अपना भारतीयपन बनाए रही। कुछ कवियों के वर्णनों में फारसी की नाजुक-खयाली का प्रभाव दिखाई देता है परन्तु वह अल्पांश मात्रा में ही है। रीतिबद्ध कवियों के वर्णन तो साफ-साफ विदेशीपन से बचे हुए हैं, क्योंकि वे संस्कृत साहित्य अथवा उसके उपजीवी हिन्दी-ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत करते थे। इसलिए उन पर विदेशी प्रभाव पड़ने का अवकाश नहीं था। संयोग शृंगार के घोर अश्लील चित्रणों में भी भारतीयपन बना हुआ है। इसी कारण इस काव्य में वेश्या-विलास को तो प्रायः त्याग दिया गया है। यद्यपि उस युग में वेश्याएँ राजाओं के सुख-साधनों में आवश्यक उपकरण थीं फिर भी स्वकीया नायिका को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।[1] परकीया नायिकाओं का मिलन दूतियों आदि के द्वारा घर के भीतर ही दिखाकर उसे रोमानी साहसिकता से बचा लिया गया है। मानसिक छलना की गंध तक उसमें नहीं आने पाई है। इस प्रकार बाजारूपन एवं रोमानी साहसिकता से बचकर रीतिकाव्य का संयोग शृंगार घर के भीतर विलासी आकर्षण के केन्द्र-रूप में भोग की तरलता प्रवाहित करता रहा है।

विप्रलम्भ शृंगार—रीति-काव्य का वियोग-वर्णन शास्त्रीय परम्परा के अनुसार हुआ है। इसका आधार प्रत्यक्ष, चित्र, स्वप्न एवं छाया-दर्शन को बनाया गया है। छाया-दर्शन के अन्तर्गत नायिका का प्रतिबिम्ब सरोवर में दिखाकर नायक को वियोगी बनाया गया है।[2] वियोग के चार भेद पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुणा में प्रथम तीन का क्रमशः वर्णन किया गया है। इन तीनों प्रकार के वर्णनों में विरह की दसों अवस्थाओं का स्वरूप क्रमशः दर्शाया गया है। वियोग के अन्तर्गत उद्दीपन-कारी वस्तुओं (प्रकृति आदि) का विशद् वर्णन हुआ है। इस प्रकार वियोग-वर्णन

---

१. डा० नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १६०।

२. सम्पा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भिखारीदास ग्रन्थावली, भाग १, पृ० १५६।

के लिए भी संयोग की ही भाँति व्यापक भूमि प्राप्त की गई है।

वियोग-वर्णन में शास्त्रीय साँचे का विशेष ध्यान रखने के कारण ताप का मात्राधिक्य दिखाने में कवियों ने स्वाभाविकता को ठेस पहुँचायी है। मानव-हृदय की स्वाभाविक विकलता का आभास भी ऐसे स्थलों पर नहीं मिलता है। कहीं-कहीं हास्यास्पद स्थिति भी पैदा हो गई है। उदाहरण के लिए पद्माकर की नायिका की वियोगाग्नि से नदी और तालाब सूखने लगे।[1] मतिराम की नायिका के शरीर पर चन्दन का लेप पापड़ की तरह भुन गया।[2] बिहारी की नायिका के शरीर पर गुलाबजल की शीशी उंड़ेलने पर जल अत्यधिक ताप की ज्वाला में बीच में ही सूख गया।[3] इस प्रकार के वर्णनों में चमत्कार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह बात अवश्य है कि वियोग की स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी उक्तियाँ भी रीतिकाव्य में कम नहीं हैं।

वियोग-वर्णन में रीति-कवियों का हृदय नहीं रमा है। इसका कारण यह है *कि वियोग उनकी भोगपरक प्रवृत्ति के प्रतिकूल पड़ता था। वे संयोग का ऐन्द्रिय आनन्द उठाना चाहते थे, वियोग की तड़पन उन्हें नापसन्द थी।* यही कारण है कि विप्रलम्भ शृंगार-वर्णन में भी पूर्वराग एवं प्रवास की अपेक्षा मान एवं खंडिता की व्यंजनाओं का उन्होंने अधिक चित्रण किया है, क्योंकि ये भी संयोगावस्था के आनन्द को बढ़ाने वाले होते हैं। पूर्वराग एवं प्रवास के जो वर्णन रीतिकाव्य में पाए जाते हैं वे प्रायः रस परम्परा का अनुसरण करने के कारण हुए हैं। कवियों का हार्दिक झुकाव इधर कम रहा है।

आलम्बन वर्णन—शृंगार रस के विभावन-व्यापार के अन्तर्गत आलम्बन और उद्दीपन का रीति कवियों ने व्यापक वर्णन किया है। शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका होते हैं। नायक-नायिका-भेद रीति कवियों का प्रिय विषय रहा है। इस विषय पर स्वतन्त्र ग्रन्थों की भी रचनाएँ इस युग में अधिक हुई हैं यद्यपि रस-प्रसंगों के अन्तर्गत भी इनका वर्णन हुआ है। यह सारा वर्णन संस्कृत की परम्परा का अनुगामी है।

रीतिकाव्य के सभी नायक एवं नायिका शृंगारानुकूल बनाकर ग्रहण किए गए हैं। जो नायक-नायिका लौकिक शृंगार के अनुकूल नहीं बन सके हैं उनका इस काव्य में परित्याग कर दिया गया है। इसी कारण भक्तिकाव्य के राम और सीता इनके काव्य में स्थान न पा सके और राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं से सम्पूर्ण रीतिकाव्य भर गया।

तत्कालीन कवियों के आश्रयदाताओं एवं उनकी रक्षिताओं के आचरण का प्रतिविम्ब है। नायक के वर्णन में कवियों ने कामदेव का कल्पित स्वरूप उपस्थित किया है। पुरुप के जो भी गुण स्त्री की शृंगार-भावना को उद्‌बुद्ध करने में सहायक हो सकते हैं उन्हीं से नायकों को सुशोभित किया गया है। पद्माकर ने तो नायक के अन्य गुणों के साथ स्त्रियों के लिए दर्शनीय होना भी एक आवश्यक गुण माना है।[1] जो रीति-काव्य की भावधारा का प्रतीक है। इसी प्रकार नायिका के लिए उन गुणों से सुशोभित होना सभी रीति कवियों ने अनिवार्य माना है जो नायक के शृंगार-भाव को उद्दीप्त कर सकें।

नायिका-भेद रीति कवियों का प्रिय विषय था। इस युग के सर्वाधिक ग्रंथ इसी विपय पर लिखे गए हैं। इस विवेचन के अन्य तत्त्वों को त्याग कर भी नायिका-भेद-सम्बन्धी अनेक स्वतन्त्र ग्रंथ इन कवियों ने लिखे। नायिकाओं के विवेचन में रसशास्त्र एवं कामशास्त्र दोनों का सहारा लिया। इनके भेदोपभेद पुरुप की भोग-परक शृंगारी प्रवृत्ति के अनुकूल किए। यह प्रवृत्ति रीति कवियों में विशेप बढ़ गई थी। सिद्धान्त-निरूपण में उनका मन नहीं लगता, क्योंकि सिद्धान्तों के अनुसार सरस उदाहरण प्रस्तुत करना उनका लक्ष्य था। इसी कारण शास्त्रीय ज्ञान के लिए संस्कृत के मूल ग्रंथों को न देखकर वे अपने निकटतम पूर्ववर्ती हिन्दी के रीति-ग्रंथों का ही सहारा लेते थे। आचार्य केशव ने संस्कृत-ग्रंथों को अपना आधार बनाया परन्तु उनके बाद केशव से देव और देव से उनके परवर्ती अधिकांश कवि क्रमशः प्रभावित होते रहे हैं। नायिकाभेद के क्षेत्र में संस्कृत-ग्रंथों में भानुदत्त की 'रसमंजरी' विशेप रूप से रीति कवियों को प्रभावित करती रही है।

रीतिकाव्य का नायिकाभेद स्त्रियों के रमणी-स्वरूप को दृष्टि में रख कर लिखा गया है। संस्कृत साहित्य में विवेचित नायिकाभेद के बाल की खाल निकाल-कर यहाँ रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। इन कवियों ने कोई नया भेद प्रस्तुत नहीं किया परन्तु सरस उदाहरणों की भरमार कर दी। यही इनका अभीष्ट भी था। शास्त्रीय विवेचना में इनका मन उतना नहीं लगा है जितना रुचिकर उदाहरण प्रस्तुत करने में।

नायिका-भेद के वर्णनों में पुरुप की स्त्री के प्रति स्वार्थपरक आसक्ति व्यक्त हुई है। नारी विलास की उपभोग्य वस्तु समझी गई है। इसके अतिरिक्त समाज में उसका और कोई स्थान नहीं दिखाया गया है। परकीया, सामान्या, कुलटा आदि अपमानजनक भेद पुरुप की स्वार्थपरता के ही द्योतक हैं। अज्ञातयौवना नायिकाएँ शृंगार रस की आलम्बन बनाई गई हैं जब कि यौवन-अनभिज्ञ नायक रसाभास ही उत्पन्न कर सकता है। खंडिता नायिका का स्वरूप नायक के नितान्त पक्षपात का ही प्रतीक है। वह नायक पर परतिय चिह्न देखकर भी कुछ कह नहीं सकती, क्योंकि

१. पद्माकर ग्रंथावली, जगद्विनोद, पृ० २८१।

लिखते थे। इसी कारण आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा है।

नखशिख-वर्णन—नखशिख और शिखनख दोनों प्रकार के वर्णन सामान्य नायिकाओं के ही लिए रीतिकाव्य में किए गए हैं। नखशिख-वर्णन पूज्य देवी का किया जाता है, सामान्य स्त्री का नहीं। आचार्य भिखारीदास ने 'शृंगार निर्णय' में छन्द ३२ से ५९ तक सामान्य नायिका का नखशिख-वर्णन किया है। इस प्रकार नखशिख-वर्णन के प्रसंग में देवी और सामान्य स्त्री में रीति कवियों ने कोई अन्तर नहीं माना है।

उद्दीपन-वर्णन (सौन्दर्यगत)—उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत सौन्दर्यगत उद्दीपन का महत्त्व रीतिकाव्य में सर्वाधिक माना गया है। सौन्दर्य के प्रति अत्यासक्ति इसी कारण दिखाई गई है। रीतिकाव्य का उन्मादकारी सौन्दर्य-चित्रण इसी तथ्य का प्रमाण है। रूप का व्यापक प्रभाव भी इन कवियों ने दिखाया है। भिखारीदास के नायक ने नायिका की परछाईं यमुना के जल में देख ली जिससे उसके प्राणों पर संकट आ पड़ा।[1] इसी प्रकार देव के नायक ने नायिका की फैली हुई उघरी बाँह देख ली जिसके कारण हाथ मल-मलकर पछताता फिरता रहा। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण रीतिकाव्य की रचनाओं में भरे पड़े हैं।

चेष्टागत—उद्दीपन के अन्तर्गत नायक-नायिकाओं की परस्पर चेष्टाओं के सरस वर्णनों की रीतिकाव्य में भरमार है। इस प्रकार के वर्णनों को चेष्टागत उद्दीपन कहा गया है। वचन-विदग्धा, क्रिया-विदग्धा नायिका एवं वचन-चतुर, क्रिया-चतुर नायकों के कार्य-व्यापार इसी के अन्तर्गत आते हैं। प्रेमियों की लुका-छिपी, छेड़-छाड़ आदि क्रीड़ाएँ इसी सन्दर्भ में दिखाई जाती हैं। रीतिकाव्य में ऐसे वर्णनों का अंबार है। जीवन की विभिन्न घटनाओं के रंग-बिरंगे सरस चित्र कल्पना के आधार पर इसमें प्रस्तुत किए गए हैं। घर के भीतर-बाहर सर्वत्र इस प्रकार की मधुर लीलाएँ दिखाई गई हैं। इस प्रकार के काल्पनिक वर्णनों में रीतिकवियों का मन विशेष रमा है। कहीं-कहीं ये वर्णन अश्लील हो गए हैं।

चेष्टागत उद्दीपन के वर्णन में हास-परिहास तथा हाव-भावों की योजना विशेष सहायक होती है। रीति-कवियों ने इनका भी उपयोग किया है। कहीं-कहीं परिहास के साथ ही अनुभावों की योजना इनके काव्य में अन्यतम बन पड़ी हैं। भिखारीदास की नायिका का पालतू मैना पक्षी के माध्यम से नायक से परिहास करना इसी प्रकार का उदाहरण है।[2] यद्यपि इस प्रकार की कल्पनाएँ संस्कृत साहित्य से उधार ली गई हैं, फिर भी हिन्दी कवियों का सरस ढंग इनमें अनूठा बना है।

---

१. भिखारीदास ग्रंथावली, भाग १, पृ० १५३।
२. शृंगार निर्णय, छंद २५०।

सखी-दूतीगत—उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत सखा-सखी, दूत-दूती का भी महत्त्व-पूर्ण वर्णन परम्परित ढंग से रीति कवियों ने किया है। ये प्रेमियों को मिलाने के लिए सक्रिय सहयोग प्रदान करते हुए दिखाए गए हैं। दूतियों का वर्गीकरण जाति के आधार पर सुनारिन, चूड़िहारिन आदि एवं कार्य के आधार पर उत्तमा, मध्यमा, अधमा के रूप में किया गया है। दूतियाँ प्रायः नायिकाओं के मान-मोचन के लिए प्रयुक्त हुई हैं और सखियाँ हास-परिहास के लिए। उनके कार्य-व्यापारों को दिखाने के माध्यम से रीति कवियों ने शृंगार की सरस रचनाएँ अधिक की हैं। उनके कार्यों को दिखाने के माध्यम से कवियों की मधुर कल्पना को बहुत बड़ी शक्ति मिलती रही है।

प्रकृतिगत—प्रकृति का उद्दीपन-रूप में वर्णन करने की रूढ़-परम्परा का रीतिकाव्य में भरपूर पालन हुआ है। संयोग-वियोग शृंगार के दोनों क्षेत्रों में उसका उपयोग किया गया है। यह वर्णन फुटकल एवं क्रमबद्ध बारहमासा तथा ऋतु-वर्णन दोनों रूपों में परम्परानुसरण पर हुआ पाया जाता है। इनमें प्रकृति का आलम्बन-रूप में वर्णन कहीं नहीं मिलेगा। सर्वत्र वह परम्परित ढंग से रूढ़ उपमानों द्वारा शृंगार भाव को उद्दीप्त करती हुई दिखाई गई है। वस्तुतः केवल उद्दीपन-रूप में रीति कवि प्रकृति को देखते ही थे।

संयोग शृंगार के उद्दीपक प्रायः वसंत और पावस ऋतुएँ दिखाई गई हैं। वसंत में होली तथा पावस में झूला एवं तीज-त्योहारों का वर्णन किया गया है। इन वर्णनों में प्रेमियों की सरस क्रीड़ाओं को दिखाया गया है। वर्षा के प्रसंग में परकीया नायिकाओं की विकट परिस्थितियाँ दिखाई गई हैं। कहीं जलप्लावन से क्रीड़ा-स्थलों के नष्ट हो जाने पर वे दुःखी दिखाई गई हैं तो कहीं कृष्णाभिसार के अवसर पर अचानक मार्ग में चाँदनी उग जाने से विकट परिस्थिति में पड़ गई हैं। इसी प्रकार की कल्पनाएँ अनेक ढंग से प्रकृति-वर्णनों के प्रसंग में की गई हैं।

वियोग की अवस्था में प्रकृति का परम्परानुसारी उद्दीपन-स्वरूप दर्शाया गया है। वर्ष का प्रत्येक माह एवं प्रत्येक ऋतु वियोगी के प्रतिकूल होकर उसे सताती हुई दिखाई गई है। वसंत तथा पावस पर ही यहाँ भी विशेष दृष्टि रखी गई है। ये वर्णन ऊहात्मक अधिक हुए हैं जिससे कवियों की चमत्कारप्रियता झलकती है। चमत्कार के अतिरिक्त और कोई नई उद्भावना इस प्रसंग में नहीं मिलेगी।

प्रकृति के समस्त तत्त्वों को रीति कवियों ने शृंगार के अनुकूल बनाकर ग्रहण किया है। जो तत्त्व अनुकूल नहीं हो सकते थे उनको छोड़ दिया है। वन-वाटिका तथा लता-कुंजों को प्रेमियों की लुका-छिपी एवं सहेट-स्थलों के रूप में ग्रहण किया गया है और सर-सरिता, पनघट पर-प्रेम-व्यापार चलाने के लिए चित्रित हुए हैं। इसी प्रकार सर्वत्र घन-दामिनी, ऊषा-निशा, चाँद-चाँदनी, पशु-पक्षी सभी कामोद्दीपन करते हुए दिखाए गए हैं। उद्दीपन के अतिरिक्त प्रकृति के और स्वरूप इन कवियों के साहित्य में कदाचित् ही पाए जा सकते हैं।

अनुभाव-संचारीभाव आदि वर्णन—शृंगार की मधुर योजना में अनुभावों आदि का वर्णन बहुत सहायक होता है। रीतिकाव्य के शृंगार में इनका अच्छा उपयोग हुआ है। इनका वर्णन दो रूपों में प्राप्त होता है—लक्षणों के उदाहरण-रूप में तथा काव्य के अन्तर्गत भाव-व्यंजना के सहायक होकर। दोनों रूपों में शृंगार का सरस चित्रण करने में ये बहुत सहायक हुए हैं।

रीतिकाव्यों में हावों को भी अनुभाव के अन्तर्गत मानकर रचनाएँ की गई हैं जब कि हाव, अनुभाव से अलग वस्तु है। हाव स्वाभाविक और अयत्नज होते हैं। अनुभाव सदा भाव-प्रेरित होते हैं। इन्हें कुछ हिन्दी वाले हाव कहते हैं। वे चेष्टाएँ भाव-प्रेरित न होकर सहज होती हैं। इसीलिए संस्कृत वालों ने उन्हें अलंकार कहा है। किसी नायिका की शोभा जिस प्रकार अलंकारों से होती है उसी प्रकार इन चेष्टाओं या हावों से। हिन्दी में हाव शब्द का प्रयोग भ्रामक अथवा व्यापक अर्थ में होने लगा है।[1] हाव और अनुभाव एक में मिला दिए गए हैं। संचारी एवं सात्त्विक भावों का वर्णन संस्कृत की परम्परा के बिल्कुल अनुरूप हुआ है। सरस उदाहरण अवश्य हिन्दी कवियों ने संस्कृत से अच्छा प्रस्तुत किया है। यही इनका उद्देश्य भी था।

हाव-भावों का वर्णन प्रायः उद्दीपनकारी रूप में रीतिकाव्य में शब्दांकित हुआ है। कहीं नायक नायिका के उन गुणों का वर्णन करता हुआ दिखाया गया है, कहीं दृष्टिपात करता हुआ। परस्पर-वार्ता में इनका उदय होना तो उद्दीपन का कार्य करता ही है। इनके वर्णन द्वारा नायिकाओं के सौन्दर्य में भी वृद्धि की गई है जिससे नायक रीझते रहे हैं। गुरुजनों की उपस्थिति में समय और परिस्थितियों की उपेक्षा करके जब नायिकाओं में ये भाव जगते हुए पाए गए हैं तो नायकों का स्वाभाविक एवं तीव्र आकर्षण उसी ओर दिखाया गया है। रीति कवियों ने गार्हस्थ्य जीवन की काल्पनिक घटनाओं में इसका अच्छा वर्णन किया है। प्रेमियों की मधुर मानसिक दशाओं को इनकी रचनाओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। इस प्रकार के वर्णनों में अश्लीलता भी पाई जाती है।

अनुभावादि के माध्यम से रीतिकाव्य की अभिव्यंजना-शक्ति को बहुत बड़ा बल मिला है। मुक्तकों की संकुचित सीमा में प्रेम-व्यापार की विशृंखलित कथा कह पाने की शक्ति इन्हीं भावों ने रीति कवियों को प्रदान की है। जो बात लम्बे कथानक में भी पूर्णतया समझा कर नहीं कही जा सकती वह आसानी से अनुभावों में इनके द्वारा व्यक्त कर दी गई है। इससे सरसता भी आई है और संक्षिप्त पदों में भाव भी व्यक्त हो गए हैं। शृंगार की सर्वाधिक सरसता हाव-भावों के ही चित्रण में रीतिकाव्य में पाई जाती है।

अलंकारप्रियता—काव्य के अलंकरण की प्राचीन प्रवृत्ति रीतिकाल में आते-

---

१. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, विहारी, पृ० १२६।

आते पुनः अधिक बढ़ गई थी। इस युग के कवि वाणी को अलंकृत करके प्रकट करते थे। कविता में अनुप्रास, वर्णमैत्री, अनेकार्थकता, व्यंग आदि गुण सप्रयास लाए जाते थे। ऐसा करने के लिए एक ओर शब्दों को तोड़-मरोड़ कर अलंकारों के अनुरूप बनाया जाता था, दूसरी ओर उन्हें खराद-खराद कर चिकना एवं मुलायम किया जाता था। वस्तुतः इस युग में काव्य का निरलंकृत स्वरूप ग्राह्य नहीं समझा जाता था। मुगल साम्राज्य के चरम विकास ने नागरिक जीवन के प्रत्येक तत्त्व को कलात्मक बना दिया था। वस्त्र, आभूषण, रहन-सहन आदि सभी कुछ कलात्मक हो गए थे। अलंकारहीन कोई भी वस्तु सुन्दर नहीं मानी जाती थी। साहित्य भी इससे अछूता न रहा। कविता भी एक कला समझी जाती थी इसलिए उसे भी अलंकृत किया जाता था। जान-बूझकर चमत्कार-विधायक अलंकारों का काव्य में प्रयोग होता था।

रीति कवियों को जीविका-निर्वाह के लिए दरबारी-कवि-दंगलों में उपस्थित होना पड़ता था और बाजी मार लेने के लिए कविता में स्वर-माधुर्य एवं उक्ति-वक्रता विशेष रूप से लानी पड़ती थी। जिसकी कविता में कलात्मकता नहीं रहती थी उसका सम्मान नही होता था। चमत्कृत कर देने वाली उक्तियों द्वारा पाठक अथवा श्रोता का मन जो अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाता था वह कवि सफल नही माना जाता था। इसका फल यह हुआ कि आगे चलकर कविगण अलंकार का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद कविता करने का साहस करते थे। ऐसे कवियों का काव्य अलंकृत होना स्वाभाविक था।

रीतिकाल के आरम्भ होने के पूर्व ही हिन्दी में आचार्य केशवदास ने अलंकारवाद पर विशेष जोर दिया। इसका प्रभाव आगे आने वाले कवियों पर पड़ा। सेनापति के श्लेष-वर्णन में इसी का प्रभाव है। बाद के रीति कवि भी इससे प्रभावित होते रहे। रीतिकालीन आलंकारिकता का एक यह भी कारण था। इसी परम्परा के कारण बौद्धिक चमत्कार-विधायक चित्रालंकारों की योजनाएँ इस युग में की गई।

रूप-सौन्दर्य की अकथनीय कल्पना के कारण भी रीतिकाव्य अलंकृत हुआ। अपने सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए कवियों को अलंकार का सहारा लेना पड़ा। बिना उपमानों को प्रस्तुत किए वे अपने भावों को पूर्णतया व्यक्त करने में असमर्थ थे। इसलिए अलंकारों का प्रयोग कहीं-कहीं बाध्य होकर उन्हें करना पड़ा। ऐसे अवसरों पर अलंकारों के माध्यम से भावाभिव्यक्ति की बहुत बड़ी शक्ति प्राप्त की गई है। अरूप एवं सूक्ष्मतम भाव इन्हीं के द्वारा सरस ढंग से संक्षेप में व्यक्त हो पाए हैं। बिहारी आदि कवियों की रचनाएँ इसके उदाहरण हैं।

रीतिकाव्य में प्रयत्नपूर्वक जहाँ अलंकारों की योजना की गई है वहाँ भाव-पक्ष अत्यन्त क्षीण हो गया है। कविता केवल एक कलाबाजी के रूप में रह गई है। भूषण आदि की रचनाओं में इस प्रकार के पर्याप्त स्थल प्राप्त होते हैं जहाँ केवल कवि का बौद्धिक चमत्कार ही सामने आता है। यहाँ तक कि बिहारी आदि जैसे अच्छे ...ों में भी इस प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं जहाँ केवल कलात्मकता ही कवि

का लक्ष्य दिखाई देता है। वस्तुतः यह प्रवृत्ति रीतिकालीन प्रायः प्रत्येक कवि में कम या अधिक पाई जाती है।

अलंकरण के प्रति मोह बढ़ जाने पर अलंकारों के लक्षण लिखकर उनके उदाहरण-रूप में कविताएँ प्रस्तुत की जाने लगीं। आरम्भ में लक्षणों के ज्ञान के लिए कवियों ने संस्कृत-ग्रन्थों का सहारा लिया। परन्तु बाद में अपने पूर्ववर्ती हिन्दी-ग्रन्थों के लक्षणों को देखकर ही काम चलाने लगे। इसका फल यह हुआ कि अलंकारों का अधूरा ज्ञान रखने वाले भी काव्य में उनका उल्टा-सीधा प्रयोग करने लगे।

लक्षण-ग्रंथों में अलंकारों का व्यवस्थित एवं काव्यमय स्वरूप उपस्थित करने वालों में भिखारीदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। ये भी अपने पूर्ववर्ती हिन्दी के ग्रंथों से प्रभावित हुए हैं परन्तु संस्कृत ग्रंथों का भी सहारा लेते रहे हैं। इस कारण इनके लक्षण तो स्पष्ट एवं सुबोध हैं ही; उदाहरण भी अत्यन्त सटीक तथा काव्यगत तरलता से ओत-प्रेत हैं। उदाहरणों के रूप में प्रस्तुत की गई इनकी कविताएँ शास्त्रीय परिधि में आबद्ध होकर भी पूर्णतया भावप्रवण एवं सरस हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण भिखारीदास—शास्त्र तथा काव्य—दोनों क्षेत्रों में रीतियुग के उत्तम कवि और आचार्य माने जाते हैं।

प्रशस्ति—रीतिकाव्य में आश्रयदाताओं की प्रशस्ति गाने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यह प्रशस्ति-गान अर्थ-प्राप्ति के लिए किया जाता था, क्योंकि उस समय कवियों के जीविकोपार्जन का दूसरा कोई साधन नहीं था। जीविकोपार्जन करते हुए उन्हें काव्य-सर्जन करना पड़ता था और वे भक्त कवियों की भाँति न वैरागी थे, न आधुनिक कवियों की भाँति व्यापारी, सेठ-महाजन। इसलिए अर्थ-प्राप्ति के लिए उन्हें दरबारों की शरण लेनी ही पड़ती थी। साधारण जनता कवियों का आर्थिक भार ढोने में असमर्थ थी। वह स्वयं जीविका के लिए तरसती रहती थी। काव्यानन्द उसके लिए व्यर्थ था। निरंकुश राजतन्त्र की प्रचण्ड विभीषिका के कारण उसका हृदय-स्रोत सूख गया था। उसकी आत्मा त्रस्त थी। इसलिए वह साहित्यिक आनन्द प्राप्त करने को सोच भी नहीं सकती थी।

कवियों को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए प्रशस्ति गानी पड़ती थी। इसलिए वे इस क्षेत्र में अत्युक्ति भी करते थे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश से भी बड़ा आश्रयदाताओं और उनके दान को 'न भूतो न भविष्यति' उन्हें कहना पड़ता था। उनकी विलासी प्रवृत्ति का ध्यान रखकर भोगपरक शृंगार को उत्तेजित करने वाली ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत करनी पड़ती थीं जो फारसी की घोर शृंगारिकता को भी मात कर सकें, क्योंकि इन दरबारों में फारसी के कवियों से इनकी प्रतिद्वन्द्विता रहती थी। आश्रयदाता विलासपरक मनोरंजनकारी रचनाओं को ही पसन्द भी करते थे। इसलिए प्रायः कविगण प्रशस्ति-गान में शृंगार एवं चमत्कार का ही विशेष ध्यान रखते थे। आगे चलकर यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि लक्षणों के उदाहरण आश्रयदाताओं पर घटाए जाने लगे और स्वतन्त्र ग्रंथों की रचना प्रशस्ति-मात्र के लिए की जाने लगी।

इतना करने पर भी कवियों को कष्ट ही उठाना पड़ता था। कई-कई दरबारों की शरण उन्हें लेनी पड़ती थी। गंग आदि कवियों ने लगभग दो दर्जन दरबारों की खाक छानी थी। पद्माकर और भूषण को भी कई दरबारों की शरण लेनी पड़ी थी।

रीतिकालीन प्रशस्ति-काव्य में तीन प्रकार की रचनाएँ देखने को मिलती हैं। प्रथम प्रकार की रचनाओं में ग्रंथों के आरम्भ में आश्रयदाताओं की स्तुति की गई है। दूसरी श्रेणी मनोरंजन के लिए कहे गए फुटकल छंदों तथा तीसरी विरुदावली में लिखे गए स्वतन्त्र ग्रंथों की है। काव्य की दृष्टि से प्रथम प्रकार की रचनाएँ महत्त्वहीन हैं। दूसरी श्रेणी के छंद शृंगारी तथा नायक-नायिका-भेद सम्बन्धी हैं और कभी-कभी अलंकार के भी ग्रंथ हैं जिनको शुद्ध प्रशस्ति-काव्य नहीं कहा जा सकता है। तीसरी श्रेणी के स्वतंत्र ग्रंथों में कुछ बहुत ही अच्छे वीरकाव्य हैं और कुछ साधारण कोटि की रचनाएँ हैं। वीरकाव्यों में भूषण की रचनाएँ 'शिवराजभूषण', 'शिवाबावनी' और 'छत्रसालदसक' आएँगी। ये ग्रंथ हिन्दू जाति के उत्साहवर्द्धक और वीरकाव्य हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि रीतियुगीन शृंगार-परम्परा से भिन्न समाज को एक नई दृष्टि देने का उनमें प्रयास है। हिन्दू जनता को इन रचनाओं पर गर्व है। साधारण कोटि के प्रशस्ति-ग्रंथों में पद्माकर आदि की विरुदावलियाँ आ जाती हैं। इनमें वीर रस की रचनाएँ तो हैं परन्तु भूषण की कोटि की नहीं हैं। राजा-महाराजाओं के यश-गान का स्वर यहाँ प्रधान है, वीरभाव की गर्जना का नहीं।

रीतिकालीन तानाशाही परिस्थितियों के परिवेश में निर्मित प्रशस्तिपरक रचनाओं के आधार पर उन कवियों को दोषी नहीं कहा जा सकता है। वर्तमान युग में उस समय से कम प्रशस्ति की प्रवृत्ति नहीं है। स्वतंत्र भारत के मंत्रियों के अभिनन्दन-ग्रंथ और प्रशस्तियाँ रीतियुगीन रचनाओं से अधिक स्वार्थपरक एवं पक्षपातपूर्ण हैं। रीति कवियों को तो जीविका के लिए मात्र यही साधन था।

छंद—रीति कवियों के प्रिय छंद कवित्त, सवैया, दोहा आदि थे। दरबारों में फारसी कवियों के शेरों की सर्वप्रसिद्ध शृंगारिकता एवं कलात्मकता का इन्हीं के द्वारा सामना किया जा सकता था। दोहे की पैनी शक्ति तथा कवित्त-सवैयों के तरल प्रवाह के सम्मुख शेरों की उक्तियाँ फीकी पड़ जाती थीं। इन छंदों की पंक्तियों में भावनाएँ गहराई के साथ जमकर बैठ पाती थीं जिससे फारसी कवियों को इनका लोहा मान लेना पड़ता था। इसी कारण रीतिकाव्य में इन्हीं छंदों को अधिक ग्राह्य समझा गया।

दरबारी दृष्टिकोण के कारण रीति कवियों ने अपनी रचनाएँ मुक्तकों में प्रस्तुत कीं। मुक्तक ही उनके अनुकूल भी पड़ते थे। प्रबंध की व्यापक भूमि में आश्रयदाताओं को आसानी से तुरन्त प्रसन्न नहीं किया जा सकता था और उन रईसों के पास प्रबंधों को सुनने-समझने के लिए समय एवं धैर्य ही था। मुक्तकों के सीमित क्षेत्र में कवियों की भावनाओं को गहराई भी प्राप्त हो जाती थी। संक्षेप में इस उछालकर वाह-वाही

लूटने वाले ही उस समय सफल कवि माने जाते थे। फारसी के कवि उन दरवारों में इसी कारण सम्मान पाते थे। उनकी प्रतिद्वन्द्विता के लिए हिन्दी कवियों को भी मुक्तकों का ही सहारा लेना पड़ता था। राधा-कृष्ण की जिन लीलाओं का ये वर्णन करते थे वे भी मुक्तकों के ही अनुरूप थीं। इन सारी परिस्थितियों के कारण रीति कवियों ने केवल मुक्तकों में अपनी रचनाएँ कीं।

भाषा—रीति कवियों ने व्रजभाषा को अपने काव्य में ग्रहण किया। भक्तिकाल में सूरदास आदि कवियों की रचनाओं में इस भाषा ने अपना प्रवल सामर्थ्य प्रकट कर दिया था। इस कारण रीतिकाल में भी इसकी ओर आकर्षण हुआ। रीतिकालीन शृंगार-भावना के अनुकूल भी वह पड़ती थी। इसका विकास ही शौरसेनी प्राकृत से हुआ है जो अपने माधुर्य के लिए प्रसिद्ध थी। कृष्ण भक्तों की सरस वाणी ने इसे और भी मधुर बना दिया था। बार-बार प्रयोग में आने के कारण इसके कठोर तथा संयुक्त वर्ण सरल रूप धारण कर चुके थे। श का स, ण का न तथा ड़ का र उच्चारण, स्वाभाविक रूप में विकसित होकर मुख सुख के अनुरूप हो गया था। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के केन्द्रीय क्षेत्र में विकसित होने के कारण इसमें मधुर भावों की सहज शिष्ट अभिव्यंजना-शक्ति आ गई थी। इसका शब्द-भण्डार भी अत्यंत व्यापक हो गया था। उत्तर भारत की सभी बोलियों के शब्द इसमें स्थान पा गए थे। राजनीतिक प्रभाव के कारण फारसी के शब्द भी स्वीकार कर लिए गए थे। इन्हीं कारणों से इसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इसकी व्यापकता के ही कारण भिखारीदास ने इसे सीखने के लिए व्रज-क्षेत्र में रहना अनिवार्य नहीं माना बल्कि हिन्दी कवियों की भाषाओं से ही इसके स्वरूप को समझ लेने की घोषणा की।[1] वस्तुतः वाराणसी से राजस्थान तक के विशाल क्षेत्र में पनपने के कारण इसकी शक्ति बहुत बड़ी हो गई थी।

उपरोक्त विशेषताओं के अतिरिक्त बार-बार पद्य में प्रयुक्त होने के कारण व्रज भाषा पद्यमय बन गई थी। इसमें स्वाभाविक लचीलापन आ गया था। इसकी विभक्तियाँ कविता को दृष्टि में रखकर वैकल्पिक ढंग से प्रयोग में लाई जाती थीं। क्रियाएँ माधुर्य और तुक के अनुकूल बना ली गई थीं। शब्दों में स्वर-लोप और स्वरागम आवश्यकतानुसार कर लिये जाते थे। इन समस्त विशिष्टताओं से पूर्ण परिचित होकर रीति कवियों ने व्रजभाषा को अपनाया। उस समय इस भाषा का ऐसा आकर्षक प्रभाव था कि हिन्दी के अन्य स्वरूप इसके सम्मुख फीके लगते थे। कृष्णभक्ति-साहित्य की परम्परा को अपनाने के कारण उसकी भाषा को भी ग्रहण करने में रीति कवियों को सरलता हुई। केवल आध्यात्मिक आवरण को हटाकर उसे ज्यों का त्यों उन्होंने स्वीकार कर लिया।

रीति कवियों ने व्रजभाषा की शक्ति का उपयोग अपने ढंग से किया। उसके

---

१. काव्य निर्णय, १४ १५-१६।

छवि दूवरो लंक विचारो' में लंक पुल्लिग है परन्तु 'लंक लचकि लचकि जात' में स्त्रीलिंग है। इसी प्रकार इनके काव्यों में अनेक स्थलों पर पुल्लिग शब्दों के विशेषण स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग के पुल्लिग रखे गए हैं। इस प्रकार की लिंग-सम्बन्धी त्रुटियाँ भाषा-मर्मज्ञ बिहारी में भी पाई जाती हैं। 'वायु' शब्द का प्रयोग दोनों लिंगों में उन्होंने किया है।[1] परन्तु यह दोष बिहारी में हिन्दी-संस्कृत के मिश्रित स्वरूप को ग्रहण करने के कारण आया है। संस्कृत में वायु शब्द पुल्लिग है परन्तु हिन्दी में स्त्रीलिंग। इन त्रुटियों के अतिरिक्त क्रियाओं एवं कारक-चिह्नों का प्रयोग रीतिकाव्य में मनमाने ढंग से किया गया है। भाववाचक संज्ञाओं का बहुवचन बनाया गया है, जैसे 'कोमलता' का 'कोमलतायनि'। आवश्यक तत्त्वों को छोड़ना और अनावश्यक शब्दों की पुनरुक्ति करना तो रीति कवियों के लिए साधारण बात थी। इन सारे दोषों का कारण गद्य का अभाव एवं कविता के प्रति विशेष व्यामोह उत्पन्न होना जान पड़ता है। यदि गद्य का प्रचलन रहा होता तो इनकी भाषा में व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ संभवतः नहीं आई होतीं। दुर्भाग्य है, गद्य का प्रचलन आरम्भ होते ही व्रजभाषा पीछे छूट गई और जनवाणी का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया।

---

१. (क) आवति नारि नवोढ़ लौं सुखद वायु गति मंद। स्त्रीलिंग
(ख) आवत दच्छिन देस तें थक्यो बटोही बाय। पुल्लिग —बिहारी

द्वितीय अध्याय

भक्तिकालीन प्रेमाख्यानक काव्य में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ

सूफी कवि :

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखाई देती हैं। इन कवियों ने प्रेम के जिस स्वरूप को स्वीकार किया है वह रीतिकाव्य की कोटि का है। लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति करना उनका लक्ष्य था। लौकिक प्रेम-साधना सामाजिक होती है। सूफी काव्य के नायक सामाजिक प्रेम के आकर्षण से आबद्ध थे। उनके जीवन की घटनाएं तथा काव्य की सूफी रचनाएं इस तथ्य के प्रमाण हैं। इसीलिए उनका प्रेम आरम्भ में लौकिक होता है जो भोग-परक प्रवृत्ति का उन्नयन करता है। सूफी कवि आगे चलकर उसका परिष्कार करते हैं और उसे आध्यात्मिक धरातल पर ले जाते हैं। उनके प्रेम का समस्त लौकिक स्वरूप रीतिकाव्य की प्रवृत्ति का ही पोषण करता है।

संयोग शृंगार :

शृंगार सूफी काव्य का मुख्य विषय रहा है। इसी के अनुसार इन कवियों की रचनाएं पल्लवित हुई हैं। किसी एक नायिका के लिए प्राय: उनके नायक अपना सर्वस्व त्याग कर चल देते रहे हैं और उसी को प्राप्त करना उनका लक्ष्य रहा है। उनको प्राप्त करने में नायक को सभी प्रकार की कठिनाइयां झेलनी पड़ती रही हैं। कठिनाइयों के झेलने में नायक की प्रेम-परीक्षा भी होती रही है और वह उनमें सफल होता रहा है। इस प्रकार नायक की शृंगार-भावना को उद्बुद्ध करने तथा नायिकाओं को नायक के प्रयास की सूचना द्वारा विकल दिखाने का अच्छा अवसर इनको प्राप्त होता रहा है। शृंगार का ऐसा व्यापक क्षेत्र पाकर उसकी सुन्दर झांकी इन कवियों ने प्रस्तुत की है।

सूफी कवियों के नायक-नायिका राजघरानों के हैं इसलिए उनके मिलन के स्थान भी राजमहल हैं। उनको लुका-छिपी खेलने का अवसर नहीं मिला है। कथानकों में वे प्राय: महलों में ही मिलाए गए हैं। जायसी की पद्मावती का रंगमहल

सात खण्ड ऊपर था। उसमें हीरा-मोती आदि बहुमूल्य रत्न प्रकाशमान थे। उसकी शय्या की सुकुमारता असीम थी। दृष्टि-भार से ही वह दबती जाती थी। पाँव रखने पर उसकी न जाने क्या स्थिति होती।[1] इसी प्रकार अन्य कथानकों में भी प्रेमियों के मिलन का स्थान राजमहल ही दिखलाया गया है।

संयोग के अवसर पर साज-सज्जा-वर्णन में नायिकाओं के सौन्दर्य-वर्णन पर ही इन कवियों की दृष्टि विशेष रही है। नायक को सूर्य कहकर कहीं-कहीं उसका प्रताप झलका दिया गया है। उनके सौन्दर्य-वर्णन पर कवि की दृष्टि नहीं जमी है। नायिकाओं को ऐसे अवसरों पर शोभा, कांति एवं दीप्ति से युक्त नहीं दिखाया गया है। उनके एक-एक अंग का अलग-अलग विस्तृत वर्णन किया गया है जिसके कारण रूप-सौन्दर्य कहीं-कहीं बिखरा हुआ-सा जान पड़ने लगता है। जायसी ने पद्मावती के मिलन के प्रसंग में सोलह शृंगार एवं बारह आभूषणों का जो चित्रण किया है उससे कवि की जानकारी का प्रदर्शन मात्र हो सका है। नायिका की सौन्दर्य-वृद्धि में उससे कोई मदद नहीं मिलती है।[2] प्रकृति के उपमानों को चुन-चुन कर वहाँ क्रमपूर्वक सजाया गया है। अभिसार का मनोहर रूप सामने नहीं आने पाया है। पद्मावत के अतिरिक्त अन्य भक्तिकालीन प्रेम-कथानकों में तो उसका वर्णन ही नहीं हुआ है। नायक-नायिकाओं को सीधे एक स्थान पर एकत्र कर दिया गया है।

संयोग-शृंगार के अन्तर्गत प्रेमियों के हास-परिहास का विशेष महत्त्व होता है। इसमें सखा-सहेली आदि का विशेष योग होता है। कभी-कभी परिहास उन्हीं के द्वारा उपस्थित भी किया जाता है। सूफी कवियों को परिहास उपस्थित करने में सफलता नहीं मिली है। पद्मावत में इसी प्रकार का प्रयास किया गया है, परन्तु वह नायक-नायिका के बीच परिहास न होकर योगियों की तार्किक वार्ता हो गई है। सखियों द्वारा पद्मावती को छिपाकर रतनसेन की उत्कंठा को तीव्रतर बनाने का परिहास अत्यन्त सुन्दर होना चाहिए था, परन्तु बीच में ही रसायनशास्त्र का विवेचन लाने से उसका सारा महत्त्व समाप्त हो गया है। इस घटना से आनन्द की कोई लहर नहीं उठ पाई है। प्रचलित परम्परा के अनुसार रंगमहल में चौपड़ का जो खेल कवि ने उपस्थित किया है वह अत्यन्त उपयुक्त है, परन्तु वहाँ भी आध्यात्मिकता का भार उसे दबाए हुए है। फारसी साहित्य में परिहास की योजना नहीं है। संभवतः इसी कारण इन कवियों को इसमें अच्छी सफलता नहीं मिली है।

संभोग वर्णन करने में सूफी कवियों की वृत्ति अधिक रमी है।[3] अन्य प्रसंगों

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० १२६।
२. वही, पृ० १३०।
३. (क) कंचन करी जरी नग जोती। बरमा सौं बेधा जनु मोती॥
—जा० ग्रं०, पृ० १३६

(ख) भयऊ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधांसि बिरह संग्रामा॥
—वही, पृ० १४०

के वर्णनों से मुँह मोड़कर कवियों का हृदय इधर ही लगा है। इसीलिए अन्य वर्णनों को छोड़कर सीधे नायक-नायिकाओं को महल में कभी अप्सराओं द्वारा और कभी देवताओं द्वारा एकत्र कर दिया गया है। पद्मावत में रत्नसेन-पद्मावती मिलन-खंड जितना लम्बा है उतने अन्य खंड नहीं। ग्रंथ के मध्य में अँगूठी के नग की तरह यह खंड जुड़ा हुआ है। कवि के भाव और उसकी भाषा यहीं देखने लायक हैं। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने तीन-तीन अर्थों की अभिव्यक्ति इन स्थलों पर दिखाई है। मालूम होता है कि इस स्थल पर जायसी की आत्मा सारी बाधाओं से विमुक्त होकर प्रवाह में यही पर आई है। भावों की उन्मुक्त स्वच्छन्दता के कारण संभोग-वर्णन की कुछ पंक्तियाँ विशेष अश्लील हो गई हैं।[1] यह बात अवश्य है कि जायसी का अध्यात्मवाद सर्वत्र छाया हुआ है। इसी कारण इनकी अश्लीलता प्रकाश में आने नहीं पाई है।

संभोग के बाद अवसाद की स्थिति का वर्णन कवि-परम्परा में होता आया है। सूफी कवियों ने भी इसका खुलकर पालन किया है। सभी कवियों ने इस प्रसंग में प्रायः एक-सी बात कही है। कम-से-कम यह बात तो सबने दोहराई है कि—

टूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी माँग भंग भए केसा।
कंचुकि चूर चूर भई तानी। टूटे हार मोति छहरानी ॥[2]

मिलन के पश्चात् सखियों को उपस्थित करके परिहास भी सभी कवियों ने करवाया है। कवियों की रूढ परम्परा का पालन-मात्र इसके द्वारा हुआ है। वस्तुतः सूफी कवि इन वर्णनों के अभाव में अपने काव्य को अधूरा समझते थे। इसीलिए जानबूझ कर इसका वे वर्णन करते थे।

संयोगावस्था में इन प्रेमियों की मनोवैज्ञानिक स्थिति का कहीं-कहीं अत्यन्त मनोहर चित्र उपस्थित किया गया है। मिलन के लिए जाती हुई अभिसारिका पद्मावती की मनःस्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सँवरि सेज धनि मन भइ संका। ठाढ़ि तेवानि टेकि कर लंका ॥
हौं बारी औ दुलहिनि, पीउ तरुन सह तेज।
ना जानौं कस होइहि चढ़त कंत के सेज ॥[3]

प्रथम समागम के पूर्व नायिका की हार्दिक हलचल का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण इन पंक्तियों में किया गया है। इसी प्रकार के मनोभावों के चित्रण में रीति कवियों की वृत्ति अधिक रमी है। नायिका की यह स्थिति दिखाने के बाद उससे प्रौढ़ा की

---

१. पै पिय वचन एक सुनु मोरा। चाखु पिया मधु थोरै थोरा ॥
—वही, पृ० १४१

२. जायसी ग्रंथावली, पृ० १४०।

३. वही, पृ० १३२।

भाँति जो तार्किक वार्ता कराई गई वह स्वाभाविक नहीं है। कवि अपने प्रारम्भिक चित्रण के कोमल भावों के अनुसार आगे के वर्णनों को संभालने में समर्थ नहीं हो पाया है। प्रथम समागम की स्वाभाविक स्थिति का चित्रण करने में मंझन अत्यन्त सफल हैं। मधुमालती राजकुमार मनोहर को अपनी चित्रसारी में समझाती है—

कहेसि कुँअर अस कर्म न कीजै। माता पितहिं अकलंकन दीजै ॥[1]

इसी प्रवृत्ति के अनुसार व्याह के बाद समागम का भी चित्रण कवि ने किया है। नायक-नायिका दोनों एक-दूसरे के स्वरूप पर मुग्ध दिखाए गए है फिर भी उनके समागम का वर्णन काम की लड़ाई के सदृश नहीं है। हृदय की आकुलता भाव-प्रवाह में स्वयं व्यक्त हुई है।

संयोग शृंगार के अन्तर्गत हाव-भाव का वर्णन करने की परम्परा का सूफी कवियों ने भी कहीं-कहीं पालन किया है। हावों का वर्णन इन कवियों ने प्रायः नहीं किया है परन्तु सात्त्विक भावों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। उनके स्वरूपों को उपस्थित करने की चेष्टा इन कवियों ने की है। पद्मावती के विवाह-प्रसंग में कवि कहता है—

देखा चाँद सूरज जस साजा। अष्टौ भाव मदन जनु गाजा ॥[2]

'अष्टौ भाव' का तात्पर्य आठ सात्त्विक भावों से है जो स्वेद, स्तम्भ, रोमांच, स्वर-भंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु और प्रलाप हैं। इसका अर्थ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने आठ अंगों नेत्र, अधर, मुख, हृदय, कुच, भुजा, कटि और काम-मन्दिर लगाया है। यह अर्थ उचित भी जान पड़ता है, क्योंकि आगे कवि ने इन सभी अंगों की प्रफुल्ल स्थिति का भी चित्रण किया है।[3] सात्त्विक भावों की स्थिति को कवि ने नायक-नायिकाओं में पूर्णतया झलकाया नहीं है केवल उनके संकेत-मात्र से काम चलाया है।

विप्रलम्भ शृंगार :

हिन्दी प्रेमाख्यानकों में विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन अधिक हुआ है। इसका कारण इन कवियों का सम्प्रदाय है। ये सूफी मात्र कवि थे। भक्त का भगवान् से वियोग ही अधिक रहता है इसलिए उसी प्रकार की अधिक अभिव्यंजनाएँ इनकी रचनाओं में हुई है। इसी की अधिकता के कारण कहीं-कहीं इनकी रचनाओं में विशेष वर्णन का आधिपत्य दिखाई देता है। साधक की साधना का सारा समय वियोग के ही अन्तर्गत आता है इसलिए उसी की अधिकता सर्वत्र व्याप्त दिखाई देती है।

---

१. मधुमालती, पृ० ३६।
२. जायसी ग्रंथावली, पृ० १२२।
३. वही, पृ० १२२।

के युद्ध में मारे जाने पर। पति की मृत्यु के कारण इस जीवन में मिलन की आशा समाप्त हो जाने पर रानियों को आत्मदाह करना पड़ा। इसका कारण इस जीवन के अतिरिक्त परलोक में भी पति से सम्बन्ध बनाए रखने की उत्सुकता है। जायसी की नायिका ने भी यही अभिलाषा अभिव्यक्त की है।[1] प्रेम की वह पुण्य दशा धन्य है जिसमें लौकिक शरीर का महत्त्व समाप्त हो जाता है।

वियोग की दस दशाएँ होती हैं। इन अवस्थाओं के अनुसार वियोग का क्रमिक वर्णन इन काव्यों में नहीं हुआ है। यद्यपि छिट-पुट रूप में हृदय की व्याकुलता को अभिव्यक्त करने में प्रायः अधिकांश दशाओं के वर्णन इनके काव्य में हो गए हैं। वियोग दशाओं के क्रम का ध्यान न रहने से हृदय की विकल भावनाएँ सहज रूप में सामने आ गई हैं। वहाँ किसी शास्त्रीय बंधन की सीमा नहीं है। इसी कारण इन कवियों का विरह-निवेदन रीति कवियों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली बन गया है। मात्र उसमान की चित्रावली में वियोग दशाओं पर विशेष ध्यान दिया गया जान पड़ता है। इसका कारण यह है कि इस कवि ने अपने प्रत्येक वर्णन में शास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाया है, लेकिन उसका प्रतिफल रमणीय नहीं हो पाया है। उनके काव्य में जायसी-जैसी रमणीयता नहीं है।

वियोग के अन्तर्गत नायिका-भेदों में से प्रोषितपतिका, आगतपतिका, प्रवत्सत्पतिका तथा प्रवत्स्यत्पतिका आती हैं। इनमें से प्रोषितपतिका का वर्णन सूफी कवियों ने अधिक किया है। इनकी नायिकाएँ रीति कवियों की भाँति अनेक नहीं हैं। इसलिए अपने कथानकों की नायिकाओं के ही विभिन्न स्वरूप इन्होंने चित्रित किये हैं जो विरहिणी नायिकाओं के नायिकाभेद के अनुसार स्वरूप उपस्थित करते हैं। वस्तुतः प्रवास-वर्णन के क्षेत्र में प्रोषितपतिका का ही व्यापक अधिकार होता है इसीलिए प्रवासप्रिय सूफी कवियों ने नायिकाओं के भेद पर विशेष दृष्टि रखी है।

वियोग के अन्तर्गत पत्रिका तथा संदेश-वर्णन करने की परम्परा भी रही है। सूफी कवियों ने इसका खूब उपयोग किया है। प्रायः प्रेमी-प्रेमिकाओं के पास एक-दूसरे की सूचना इसी माध्यम से पहुँचती रही है। इनकी पत्रिकाएँ साधारण नहीं हुआ करती थीं। बारहमासे तक का वर्णन इनके पत्रों में है। चित्रावली का बारह-मासा-वर्णन इसी प्रकार का है। उसके पत्र का असाधारण प्रभाव भी राजकुमार पर पड़ा। उसके विरही हृदय की ज्वाला पत्र पाते ही दुगुनी होकर भभक उठी और उसकी उसासों से आकाश धूमिल हो गया।[2] इतना ही नहीं पत्रों के ऊहात्मक प्रभाव इन काव्यों में भरे पड़े हैं।

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० २९९

२. चित्रावली, पृ० १७८।

पद्मावत में पत्रों का व्यापक प्रभाव दिखाया गया है। सिंघल द्वीप में पहुँचने के वाद रतनसेन ने पद्मावती को एक असाधारण पत्र लिखा जिसमें नेत्रों की स्याही एवं वरौनियों की लेखनी से रो-रोकर यह पत्र ऐसा लिखा गया कि उसकी ज्वाला के कारण कोई उसे छू भी नहीं सकता था।[1] पद्मावती के पास पहुँचाने वाला शुक भी उसे तार द्वारा गले में बाँधकर ले जा सका अन्यथा वह भी असमर्थ था।[2] फिर भी पत्रवाहक शुक पर उसका प्रभाव कम नहीं पड़ा। उसके गले में बँधे हुए तार जलकर लाल एवं काले कंठ बन गए। पत्र ले जाते समय उसकी स्वासों से अग्नि की लपटें निकल रही थीं जिनसे वृक्ष भी झुलस गए।[3] पत्र की ज्वाला ऐसी थी कि उसे लिखकर तैयार करना ही असम्भव कार्य था परन्तु प्रिया की मधुर स्मृति के कारण उसका लिखा जाना सम्भव हो सका। पत्र की ही भाँति अन्य सन्देशों का भी वर्णन सूफी कवियों ने किया है।

विरह-ताप का मात्राधिक्य दिखानेवाला ऊहात्मक वर्णन चमत्कार भले ही उत्पन्न कर दे परन्तु काव्य की सरसता उसमें से जाती रहती है। सूफी कवि भी इस प्रकार के वर्णनों में लगे हैं और रीति कवियों को इन्होंने ही इस क्षेत्र में प्रभावित किया है। उदाहरण के लिए वर्षा ऋतु की बूँदों को देखकर चित्रावली के हृदय से लू उठने लगती है।[4] वैसाख की तप्त भूमि पर उसके जलते हुए आँसू जहाँ कहीं पड़ते हैं वहीं से लू चलने लगती है।[5] इससे भी अधिक मात्राधिक्य व्यंजित करने वाले कवि जायसी हैं। पत्रों एवं उनके वाहकों के चित्रण में कवि ने सदैव इसी पद्धति को अपनाया है रीति कवियों के वर्णन उसके सम्मुख फीके हो जाते हैं। वस्तुतः इसका कारण यह है कि रीति कवियों को इस प्रकार की उक्तियों की प्रेरणा इन्हीं कवियों से मिली थी। जायसी का शुक-पक्षी जिस पत्र को लेकर पद्मावती के पास गया उसके अक्षर इतने जल रहे थे कि उन्हें कोई छू तक नहीं सकता था। इसी कारण वह पत्र शुक के गले में वाँधा गया।[6] इसी प्रकार के वर्णन जायसी-ग्रंथावली में अधिक मिलेंगे।

सूफी कवियों ने हृदय के भावों को व्यक्त करने की चेष्टा अधिक की है। वेदना की माप-तौल कम उपस्थित की है। वियोग में नायिका को एक-एक सुखदायी वस्तुएँ किस प्रकार पीड़ा दे रही हैं यह कहना कवियों का उद्देश्य रहा है न कि उसके

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० ९६।
२. वही, पृ० ९७।
३. वही, पृ० ९९।
४. चित्रावली, पृ० ९४।
५. वही, पृ० ९४।
६. जायसी ग्रंथावली, पृ० ९६।

विरह-ताप की नाप-तौल उपस्थित करना। हृदय की वेवसी के अद्भुत नमूने ऐसे स्थलों पर उपस्थित किए गए हैं। नागमती के व्याकुल हृदय की कवि भाड़ में पड़े हुए दाने की उपमा देकर कहता है कि उसका हृदय भाड़ में पड़कर छटपटा रहा है।[1] दाना उछल-उछल कर भी तप्त बालू से बाहर निकल नहीं निकल पाता है। उसी में पुनः गिर कर उसे भुनना पड़ता है। उसी प्रकार नायिका के प्राण भी व्याकुल हो-होकर रह जाते हैं। शरीर को त्याग नहीं पाते हैं। विकल हृदय की मर्मान्तक वेदना का सजीव चित्र कवि ने यहाँ उपस्थित कर दिया है। वस्तुतः हृदय की कारुणिक स्थिति की अभिव्यंजना कहीं-कहीं इन प्रेमियों ने वेजोड़ की है। उसमान ने लिखा है कि चित्रावली की आँखों में जेठ मास की गरमी के कारण आँसू सूख गए हैं।[2] सूखे हुए आँसुओं के नेत्रों की दयनीय दशा का अनुभव वही व्यक्ति कर सकता है जिसको दर्द को देखने के लिए हृदय की आँखें मिली हों। साधारण हृदय वालों को यह दृश्य अदृश्य ही रहेगा। इसी प्रकार प्राणों की विकलता को व्यक्त करते हुए कवि कहता है कि प्राण प्रिय का रास्ता देख रहा है। कभी हृदय में विकल होकर उसे ढूँढ़ता है और कभी अधरों तक आकर उसकी राह झाँक जाता है।[3] विरह-व्यथित हृदय में प्राणों की दुर्गति का क्या ही मार्मिक रूप उपस्थित किया गया है। प्राण अधरों तक आकर हृद्गत हलचल को पूर्णतया प्रकट कर जा रहे हैं। सामाजिक मर्यादा एवं लज्जाशीलता के कारण कभी-कभी इनकी और दुर्गति हो जाती है। अपने विषाद को छिपाकर मुख पर बनावटी हँसी लानी पड़ती है। चित्रावली ऐसी ही विकट परिस्थिति में पड़ी हुई थी। मुख पर बनावटी हँसी उसे बनाए रखनी पड़ती थी। दो हाथों के मध्य पड़ी हुई चींटी-जैसी उसकी हालत थी जिसका मसल जाना प्रायः निश्चित रहता है।[4]

सूफी कवियों ने अपनी विरह-व्यंजना का सृष्टिव्यापी प्रभाव दिखलाया है। उनके वियोगियों का प्रभाव प्रकृति के सभी तत्त्वों पर पड़ा है। नागमती के रुदन से पक्षियों तक की नींद हराम हो गई थी।[5] मधुमालती में प्रेमा के रक्तमय अश्रु में मुँह धोने से ही शुक की चोंच लाल हो गई। उसके दाह में जलकर पिक एवं करील काले हो गए, वृक्षों में पतझड़ आ गए।[6] चित्रावली की पी-पी की ध्वनि को पपीहे ने आज तक याद कर रखा है। परेवा उसकी वाणी सुनते ही उड़ भागा, फिर भी

---

१. जायसी ग्रन्थावली, पृ० १५६।

२. चित्रावली, पृ० १६९।

३. वही, पृ० ९६।

४. वही, पृ० ९६।

५. जायसी ग्रंथावली, पृ० १५६।

६. मधुमालती, पृ० ६७।

है। वियोग में वृत्तियों के बहिर्मुखी होने के कारण भावोद्गार स्वतः अभिव्यक्त हो पाते हैं। भक्त को वियोग का अनुभव करना आवश्यक है, बिना वियोग के संयोग हो ही नहीं सकता है। मानव-मात्र को विरह का अनुभव करना इसी कारण मंझन ने अनिवार्य माना है। बिना विरह के जीवन धारण करना ही व्यर्थ है।[1] इसी बात को जायसी ने अपने बारहमासे में कहा है कि आर्द्रा में वही पौधे पल्लवित हो पाते हैं जो मृगशिरा की तपन को सहने की शक्ति रखते हैं।[2] उसमान ने इसी तथ्य के आधार पर यह कल्पना की कि कौवा विरह में जलकर काला होने के बाद ही सीता के पवित्र चरणों को स्पर्श करने पाया था।[3]

वियोग की अनिवार्य मान्यता और उसे सहर्ष स्वीकार करने की प्रवृत्ति इस बात की द्योतक है कि इन कवियों का विरह लौकिक जीवन का अलौकिक तत्त्व से है। प्रेम का मधुर मार्ग अपनाने के कारण इनमें रीतियुगीन कवियों की भाँति शृंगारिकता भी है। इन कवियों का शास्त्रीय ज्ञान अच्छा था। उसका प्रकाशन भी ये करना चाहते थे इसीलिए अपने वर्णनों में इन्होंने शास्त्रीय दृष्टिकोण अपनाया है।

आलम्बन-वर्णन :

शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका होते हैं। इनका वर्णन करना रीति कवियों का प्रमुख विषय रहा है। सूफी कवियों ने नायिका-भेद तो नहीं परन्तु स्त्री-भेद-वर्णन किया है। इनका प्रतिपाद्य विषय प्रेम रहा है इसलिए शृंगार को अपनाना इनका लक्ष्य हो गया। शृंगार के सागर में गहरा गोता लगाने पर स्त्री-भेद का भी चित्रण करना इन्होंने अनिवार्य समझा। स्त्री-भेद-वर्णन करने में लगने के कारण प्रसंगवश पुरुष-भेद का भी इन्होंने वर्णन किया।

वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में तीन-तीन प्रकार के नायक और नायिका माने हैं। नायक-भेद के अन्तर्गत शश, मृग, वृष, अश्व और नायिकाओं में मृगी, वड़वा और हस्तिनी मानी गई हैं।[4] कामशास्त्रीय स्त्री-भेदों का प्रमुख आधार वही ग्रन्थ है। इसी के आधार पर आगे चलकर अनेक रति-विज्ञान-सम्बन्धी ग्रन्थ तैयार किए गए। इन ग्रन्थों में रतिरहस्य, रतिरत्न प्रदीपिका, अनंगरंग आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों में चार-चार प्रकार के नायक और नायिकाएँ मानी गई हैं। नायकों के शश, मृग, वृष और अश्व भेद किए गए हैं तथा नायिकाओं में पद्मिनी, चित्रिणी,

---

१. मधुमालती, पृ० ७२।
२. जायसी ग्रंथावली, पृ० १५२।
३. चित्रावली, पृ० ९६।
४. शशो वृषो श्व इति लिंगतो नायक विशेषाः। नायिका पुनर्मृगी वड़वा हस्तिनं चेति॥ —कामसूत्र, प्रथम भाग, पृ० २१६।

शंखिनी और हस्तिनी भेद किए गए हैं। आगे चलकर वात्स्यायन के कामसूत्र की अपेक्षा नये ग्रन्थ ही अधिक प्रचलित हो गए। परिणाम यह हुआ कि नायिकाओं के कामशास्त्रीय चार भेद ही अधिक प्रचलित हो गए। इसी कारण सूफी कवियों ने इन चारों भेदों को ही अपने स्त्री-भेद-वर्णन में स्थान दिया। यह बात अवश्य है कि जहाँ-तहाँ अध्यात्मवाद का रंग भी उस पर चढ़ाया है।

सूफियों के अनुसार पद्मिनी नायिका की प्रमुख विशेषता पद्म की होती है। पद्म के समान उसका रंग होता है और पद्म की ही उसमें गंध होती है। पद्मिनी की यह विशेषता 'रति रहस्य', 'अनंगरंग' और 'रतिरत्न प्रदीपिका' तीनों ग्रन्थों में अनिवार्य मानी गई है। वहीं से इन कवियों ने इसको ग्रहण किया है। जायसी के मतानुसार पद्मिनीं न अधिक लम्बी होती है न अधिक छोटी, न अधिक पतलीं होती है न अधिक मोटी, चन्द्र की सोलह कलाओं से वह परिपूर्ण रहती है। उसकी चाल मराल की-सी शोभित होती है तथा सुकुमारता के आधिक्य के कारण फल-फूल ही खाकर रहती हैं। उसके केश लम्बे होते हैं और हाथों की अँगुलियाँ भी लम्बी-लम्बी होती हैं। गले में तीन रेखाएँ होती हैं और नेत्र मृगशावक के सदृश बड़े-बड़े होते हैं। छोटे-छोटे दाँत हीरे की भाँति चमकते रहते हैं। कुच जंभीरा के समान ऊँचे होते हैं। ललाट द्वितीया के चन्द्रमा के समान प्रकाशमान रहता है। नाभि में मानो चन्दन बसा रहता है। पतली नासिका खंग-धार सी होती है। क्षीण कटि तो केसरी को भी लज्जित करती है। पेट की क्षीणता से जान पड़ता है कि उसमें आँत है ही नहीं। पतले ओठों का रंग विद्रुम-सदृश होता है। कपोलों और नितम्बों की शोभा कहाँ तक कही जाय उन्हें देखते ही मन लुभा जाता है। सुभर कलाई और जंघों की गज-गति की शोभा को पूछना ही क्या, इन अंगों पर सोलह शृंगार देखते ही देवगण भी उसे पाने के लिए ललचाने लगते हैं।[1] जायसी ने इतनी विशेषताएँ पद्मिनी नायिका के लिए मानी हैं। लगभग यही उसमान की भी मान्यता है। ये सारी विशेषताएँ संस्कृत-ग्रंथों से ली गई हैं। जायसी ने अपने धार्मिक मतवाद का रंग अवश्य उस पर चढ़ा दिया है।

पद्मिनी के बाद चित्रिणी का स्थान आता है। इन कवियों के अनुसार चित्रिणी प्रेम करने में चतुर होती है और अप्सरा के सदृश अभुक्त होती है। पद्मिनी से केवल दो कला घट कर होती है। क्रोध करना तो जानती ही नहीं तथा सदैव हँसमुख रहती है। कुमुदिनी के समान गोरी वह नायिका पर-पुरुष को तो जानती ही नहीं। हंसों की भाँति वह चलती है और अत्यन्त अल्पाहार करती है।[2]

---

१. संपा० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावत, प्रथम संस्करण, पद संख्या ४६६-६७।

२. संपा० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावत, प्रथम संस्करण, पद संख्या ४६५।

इन गुणों के अतिरिक्त चित्रकारिता में वह निपुण होती है तथा वीणा आदि वजाना भी अच्छी तरह जानती है। ऐसी स्त्री जिसके पास होती है वह पुरुष अत्यन्त सुखी रहता है।[1] लक्षण-ग्रंथों में इस प्रकार की स्त्री को नागरिक होने के कारण चित्र, शिल्प, गायन, नृत्य आदि कलाओं में निपुण वताया गया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इन कवियों ने इसे अप्सरा की संज्ञा दी है।

शंखिनी नायिका को जायसी ने सिंघिनी कहा है। यह नायिका वल अधिक दिखाती है और अत्यल्प आहार लेती है। उसका वक्षःस्थल उभरा और कटि पतली होती है। गर्व के कारण वह किसी का भी भय नहीं मानती है। क्रोध अधिक करती है और अपने पति को भी मारना चाहती है। वह अपने शृंगार को सर्वश्रेष्ठ तथा अपने सम्मुख दूसरों को कुछ भी नहीं समझती है। वह माँस खाती है और उसके मुँह से सड़ी हुई मछली की-सी दुर्गन्ध आती है। अपने पैरों को ढीला छोड़कर सिंह की भाँति वह चलती है। उसके पैरों में रोएँ अधिक होते हैं तथा शैवा या सिंह की ही भाँति नख प्रयोग करती है।[2] उसमान के अनुसार वह उतावली होकर चलती है, आहार वहुत अधिक करती है, उसके कुच छोटे और कटि पतली होती है तथा काम-पीड़ा से सदैव व्याकुल रहती है। क्रोधी, कपटी, दयाहीन, कटु-भाषिणी एवं कठोर-हृदया होना उसके लिए स्वाभाविक होता है। जिस घर में ऐसी स्त्री होती है वह पति अत्यन्त दुखी रहता है।[3] लक्षण-ग्रंथों में इसे अल्पाहारी कहा गया है। अन्य वातें इन कवियों ने वही वताई हैं जो लक्षण-ग्रंथों में कही गई हैं।

हस्तिनी नायिका की सारी प्रकृति हस्ति की होती है। उसका आकार, स्वभाव सव-कुछ हस्ति से मिलता-जुलता है। उसके हाथ और पैर मोटे-मोटे, गर्दन छोटी होती है तथा स्तन छोटा और कटि मोटी होती है। उसकी चाल मस्त गज की सी होती है। अपना पति उसे दिखाई नहीं देता और दूसरे के पति के लिए ललचाती रहती है। वह भोजन अधिक करती है और भोग अधिक चाहती है। उसके पसीने से दुर्गन्ध आती रहती है और अपने विश्वासी के साथ विश्वासघात करती है। लज्जा एवं भय तो उसके हृदय में होता ही नहीं है। केवल अंकुश के वल से वह वशीभूत की जा सकती है।[4] इस नायिका के लक्षण पूर्णतया कामशास्त्रीय ग्रंथों से अनुवाद किए गए हैं। उपर्युक्त लक्षणों के लिए रतिरहस्य, अनंगरंग और रतिरत्न प्रदीपिका ग्रंथ आधार वनाए गए हैं।

इन चारों प्रकार की नायिकाओं के वर्णन में इन कवियों ने संस्कृत ग्रंथों का

---

१. चित्रावली, पृ० २११।
२. पद्मावत, पद संख्या ४६४।
३. चित्रावली, पृ० २१२।
४. पद्मावत, पद ४६३।

है। जायसी ने पद्मावत के आरम्भ में पद्मावती के पारस रूप की जो कल्पना की है उससे भी इसी प्रकार का आभास होता है।[1] श्लेष के द्वारा कवि ने इस शब्द से ऐसी ही अभिव्यंजना की है।

'पारस रूप' स्पर्शमणि की भाँति कल्याण करने वाला है। इस शब्द के आध्यात्मिक अर्थ को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, परन्तु कवि के श्लेषार्थ की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। श्लेष के माध्यम से जायसी ने तीन अर्थों की अभिव्यंजना इस शब्द द्वारा की है—

पारस-रूप=पारस अर्थात् स्पर्शमणि के सदृश
पार-सरूप=संसार के उस पार
पा-रस-रूप=रूप रस पाना अर्थात् लौकिक रूप सौन्दर्य को पाना।

पद्मावती के रूप-वर्णन के प्रसंगों में जायसी ने सर्वत्र इन तीन अर्थों को निभाने का प्रयास किया है। पद्मावती अलौकिक ही नहीं लौकिक नायिका के रूप में भी चित्रित की गई है। इस प्रकार एक ही नायिका के रूप को लौकिक और अलौकिक भावों के वीच सुन्दर ढंग से उपस्थित करने का अद्भुत प्रयास इन प्रेमियों ने किया है।

कथा के प्रवाह में जब कभी भी इन्हें अवसर मिला है तो रूप की अलौकिकता का संकेत ये कवि करने लगे हैं। ऐसा जान पड़ता है कि जब इन्हें कथा का लौकिक प्रसंग दूर तक चलता जान पड़ने लगता है तो ये तुरन्त उसकी अलौकिकता की ओर संकेत करते हैं ताकि कथानक की मधुर धारा में कवि के अलौकिक अर्थ को पाठक भूल न जाएँ। मधुमालती में उसका नखशिख-वर्णन कर लेने के वाद मधुमालती जोगी खंग में जाकर मनोहर कहता है 'कि यही रूप' संसार का मायावी रूप है तथा संसार का सार इसी में निहित है, सर्वत्र इसी की व्याप्ति है, इसे कोई विरला हीख दे और समझ पाता है।[2] नायिका के नखशिख-वर्णन के वाद नायक द्वारा इस प्रकार की उक्ति से यही सिद्ध होता है कि कवि के हृदय में नायिका का मायावी रूप ही प्रवल है परन्तु जब उसकी धार्मिक बुद्धि जगती है तो अध्यात्म का संकेत करने लगता है। महाकवि जायसी इस विषय में सबसे आगे हैं। घोर लौकिक शृंगारपरक रूप-वर्णन करते हुए भी पग-पग पर आध्यात्मिक संकेत करते चलते हैं ताकि पाठक उनके धार्मिक दृष्टि-कोणों को भूल न जाए। नेत्रों का वर्णन करते हुए कहता है कि 'जग डोले डोलत नैनाहा'[3] अर्थात् ब्रह्म स्वरूप पद्मावती के नेत्रों की मुद्रा परिवर्तन से संसार की गति-

---

१. कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई॥

—पद्मावत, पृ० २५

२. मधुमालती, पृ० ३८।

३. जायसी ग्रंथावली, पृ० ४२।

दिशि ही पलट जाया करती है । इस प्रकार के संकेत की प्रवृत्ति जायसी में केवल रूप-वर्णन में ही नहीं सर्वत्र मिलती है ।

प्रेम-कथानकों में रूप-वर्णन की प्रायः दो प्रणालियाँ दिखाई देती हैं । एक तो प्रसंगवश किया गया फुटकल रूप-वर्णन और दूसरा नायिका का परम्परानुसार नख-शिख-वर्णन । फुटकल किए गए रूप-वर्णनों में कवियों की उत्कृष्ट भाव-तरंगों को देखा जा सकता है । रूप के प्रति विशेष आसक्ति होने के कारण ये वर्णन स्वतः आ गए हैं परन्तु शोभा, कांति, दीप्ति से युक्त रूप-वर्णन का यहाँ अभाव-सा है । जायसी के अतिरिक्त अन्य प्रेममार्गी कवियों में अंगों की परम्परागत उपमानों द्वारा गणना-सी की गई है । यह बात अवश्य है कि उपमानों का प्रयोग अत्यन्त उत्कृष्ट ढंग से किया गया है । नायिकाओं के अंगों का नायक पर जो प्रभाव पड़ता है उसी की ओर कवियों की विशेष दृष्टि रही है । ऐसा करने से नायिकाओं की रूप-शोभा अंगों की विरलता तथा प्रभावात्मकता के कारण सुन्दर ढंग से उपस्थित न हो सकी है केवल परम्परित उपमानों के प्रभावात्मक उपयोग किए गए हैं ।

फुटकल रूप-वर्णन जायसी ने सर्वाधिक किया है । रूप की जो मूर्ति जायसी के मानस में वर्तमान थी उसका वर्णन करते वे अघाते न थे इसीलिए अवसर पाते ही रूप-वर्णन में लग जाते थे । कथा-प्रारम्भ की ऐसी स्थिति उन्हें बहुत रुचती थी और उसकी ताक में उनकी सजग बुद्धि सदैव लगी रहती थी । कहीं-कहीं ऐसी स्थिति में अनावश्यक वर्णन भी हो जाया करते हैं । सिंहल द्वीप का वर्णन करते हुए उपयुक्त प्रसंग न होने पर भी नायिका के अंगों का श्लेष के माध्यम से कवि वर्णन कर जाता है ।

> सात दीप बरनै सब लोगू । एको दीप न ओहि सरि जोगू ॥
> दिया दीप नहिं तस उजियारा । सात दीप सर होइ न पारा ॥
> जंबू दीप कहौं तस नाहीं । लंक दीप सरि पूजन छाहीं ॥
> दीप गभस्थल आरन पारा । दीप महुस्थल मानुस हारा ॥[1]

इन द्वीपों को श्री वासुदेवशरण अग्रवाल ने मध्यकालीन भूगोल की कल्पित कहानियों से लिया गया बताया है और इनका भौगोलिक स्थान भी दिया है परन्तु श्री शिरेफ ने इन द्वीपों के नामों को नायिका के अंगों पर ही घटाया है । उनके अनुसार दिया द्वीप स्त्री के चमकीले नेत्र हैं, सारन द्वीप श्रवण है, जंबू द्वीप जामुन जैसे काले केश हैं, लंक द्वीप कटि प्रदेश है, दीप गभस्थल का पाठान्तर कुंभस्थल तथा कुंभास्थल है अर्थात् ये स्तन हैं, दीप महुस्थल स्त्री का गुह्य भाग मधुस्थल है । इस प्रकार द्वीपों के वर्णन में कवि ने नायिका के अंग-प्रत्यंगों का भी वर्णन किया है ।

सिंहल द्वीप-वर्णन के बाद लगभग दस स्थलों पर जायसी ने रूप-वर्णन और

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० १० ।

वह नहीं हुआ और अंग-प्रत्यंगों की सेना भी तैयार हो गई। प्रायः सभी प्रेममार्गी कवियों ने रूप-वर्णन की अलग महत्ता और उसका व्यापक प्रभाव दिखाया है।

नखशिख-वर्णन :

फुटकल रूप-वर्णन के अतिरिक्त नायिकाओं के नखशिख-वर्णन की परम्परा इन सभी कवियों में पाई जाती है। रूप के प्रति विशेष आसक्ति होने के कारण उसका नखशिख-वर्णन करना इन कवियों ने अनिवार्य समझा था। ऐसा जान पड़ता है कि नखशिख-वर्णन के बिना अपने काव्य को वे अधूरा समझते रहे हैं। इसीलिए जान-बूझकर नखशिख के प्रसंग इनके काव्यों में लाए गए हैं और अवसर मिलने पर उसके खूब चित्रण किए गए हैं। जिस प्रकार रीति कवि अन्य आवश्यक प्रसंगों को छोड़कर भी शृंगार का व्यापक चित्रण करते थे उसी प्रकार सूफी कवि अन्य तत्त्वों को छोड़कर नखशिख-वर्णन करने में लगते थे। यद्यपि कभी-कभी इनके इन वर्णनों से कथा-प्रवाह में बहुत बड़ा अवरोध भी उपस्थित हो गया है।

सूफी कवियों के नखशिख-वर्णन को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि ये कवि शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद काव्य-क्षेत्र में उतरे थे, क्योंकि रूढ़ियों, उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं का पालन सजग बुद्धि के साथ इनकी रचनाओं में पाया जाता है। संस्कृत साहित्य के एक भी परम्परित उपमान इनसे छूटने नहीं पाये हैं। जिस प्रकार रीति-काव्य का अध्ययन करते समय एक ही बात बार-बार अनेक कवियों द्वारा सुनने से जी ऊबने लगता है उसी प्रकार सूफियों के नखशिख-वर्णन की उपमाओं की समानता से भी जी ऊबने लगता है। एक ही अंग के वर्णन में अनेक कवियों द्वारा उपमानों की पुनरुक्ति-मात्र जान पड़ती है। उदाहरण के लिए 'जायसी ग्रंथावली', 'मधुमालती' तथा 'चित्रावली' के अंश देखने ही लायक हैं।[1] इन ग्रंथों में केश-वर्णन करते हुए कवियों ने उपमानों की पुनरुक्ति मात्र की है। सभी ने सर्वत्र प्रायः एक ही बात कही है। इस प्रकार के वर्णन का कारण यही जान पड़ता है कि ये कवि अभिप्राय (मोटिव्) के रूप में नखशिख-वर्णन करते रहे हैं।

दो कवियों के वर्णनों में तो समानता है ही, एक ही कवि ने जब दो बार रूप-वर्णन किया तो दूसरी बार का उसका रूप अथवा नखशिख-वर्णन पुनरुक्ति-मात्र बनकर रह गया है। उसमें कोई आनन्द की वस्तु नहीं है। दो बार किया गया वर्णन फीका हो गया है। ऐसा जान पड़ता है कि जान-बूझकर इन कवियों ने नखशिख-वर्णन की प्रणाली को अपनाया है और अपने अध्ययन के अनुसार उसका चित्रण किया है। उपमानों की सीमित जानकारी के कारण इनके वर्णनों में समता आई।

---

१. मिलाइए केश-वर्णन, जायसी ग्रंथावली, पृ० ४१; मधुमालती, पृ० २६-२७; चित्रावली, पृ० ६६।

सभी प्रेममार्गी कवियों ने अपनी नायिकाओं का नखशिख-वर्णन शिख से आरम्भ किया है और पाँव की ओर क्रमश: उतरे हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि यद्यपि इनके मानस में अलौकिक सौन्दर्य की धारणा रही है परन्तु ये रूप-वर्णन लौकिक नायिका का ही करना चाहते थे और किया। नखशिख-वर्णन में शिख से वर्णन आरम्भ साधारण नायिका का ही किया जाता है, देवी का नहीं। साधारण नायिका के जो अंग-प्रत्यंग भोगपरक शृंगार के विशेष उद्दीपक हो सकते हैं केवल उन्हीं अंगों पर इन कवियों की विशेष दृष्टि रही है। अन्य अंग कहीं-कहीं छूट भी गए हैं। शिख से वर्णन आरम्भ कर जाँघ तक ये कवि आए हैं, उसके नीचे के अंगों में इन्हें आकर्षण नहीं जान पड़ा। केवल उसमान ने अपनी 'चित्रावली' में चरण का भी वर्णन किया है परन्तु उसमें भी कवि का मन रमा नहीं है। जाँघ-वर्णन के बाद सीधे चरण-वर्णन पर कवि उतर आया है और चरणों की अलौकिक सत्ता ही दिखाने में उसने अधिक रुचि दिखाई है उसके स्वरूप-चित्रण में कम।

रूप-वर्णन के प्रसंगों में प्राय: इन कवियों ने अलौकिक सत्ता की ओर भी संकेत किया है। चूँकि ब्रह्म का समस्त सृष्टि पर अधिक व्यापक प्रभाव पड़ता है इसलिए अपनी नायिकाओं के स्वरूप का भी सृष्टिव्यापी प्रभाव उन्होंने दिखलाया है। इनकी नायिका की वरुनियों के बान से सारा संसार बेंधा गया है। नक्षत्रों के अगणित टुकड़े उसी के प्रहार से हुए हैं। रन-बन में कोई तत्त्व इसके आघात से बचा नहीं है। पशुओं के रोएँ और पक्षियों के पंख भी उसी के परिणाम हैं।[1] कहीं-कहीं इनकी नायिकाएँ साक्षात् ब्रह्म बन गई हैं। उनका समस्त स्वरूप-चित्रण इसी प्रकार का हो गया है। इस प्रकार रूप का सृष्टिव्यापी प्रभाव लौकिकता में अलौकिकता का मिश्रण होने के कारण संभवत: दिखाया गया है।

फारसी प्रभाव के कारण रूप-वर्णन की अत्युक्तियाँ भी इन कवियों में खूब पाई जाती हैं। उसमान ने कटि की सूक्ष्मता बाल से भी अधिक बताई है। देखने वाला इसीलिए संकोच में पड़ जाता है कि दृष्टिभार से ही कटि कहीं टूट न जाए।[2] इसी बात को मंझन ने भी कहा है कि यह कटि नितम्बों के भार से ही टूट जाएगी। इसकी क्षीणता को देखकर ही ब्रह्मा ने त्रिवली का बंधन उस पर लगा दिया है।[3] ऐसे भावों को इन कवियों ने सीधे संस्कृत-ग्रंथों से लिया है। महाकवि जायसी इस क्षेत्र में और आगे बढ़े हुए हैं। नायिका की ग्रीवा का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है—

पुनि तेहि ठाँव परीं तिन रेखा। घूँट जो पीक लीक सब देखा॥[4]

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० ४३।
२. चित्रावली, पृ० ७६।
३. मधुमालती, पृ० ३१।
४. जायसी ग्रंथावली।

भाषा कवियों ने निकाली है। आगे चलकर यह रूढ़ परम्परा बन गई और शृंगार-वर्णन का एक शास्त्रीय अंग बन गया। वर्ष के एक-एक मास को लेकर उसका अलग-अलग विवेचन किया जाने लगा। यदि इस परम्परा का और आगे विकास हुआ होता तो कवि वर्ष के तीन सौ साठ दिनों को लेकर तीन सौ साठा लिखने लगे होते। जायसी ने बारहमासे की पद्धति का कुछ विकास करके ही नक्षत्रों तक का वर्णन किया है परन्तु साल के पूरे नक्षत्रों तक न पहुँच कर सात-आठ नक्षत्रों तक ही सीमित रह गए हैं।

सूफी कवियों ने बारहमासा और षड्ऋतु के प्रसंग प्रयासपूर्वक अपने काव्यों में किये हैं। कथा-प्रवाह में इस प्रसंग को लाने के लिए कहीं पत्री का सहारा लिया गया है, कहीं वार्ता का। मधुमालती अपनी माँ की चोरी से ही अपनी सखियों से बारहमासा-वर्णन कर जाती है[1] और चित्रावली भी सखियों से ही सारा प्राकृतिक वर्णन कर जाती है।[2] सखियों से वार्ता का स्वरूप उपस्थित करके प्रकृति का षड्ऋतु और बारहमासा के रूप में वर्णन करने लगना कथा-प्रवाह में अवरोध एवं अनावश्यक विस्तार लाना है। कथानक की इस त्रुटि का ध्यान न करके इन कवियों ने अपने को इन कवि-कर्म के अनुसार वर्णन में लगाया है। इसका मात्र कारण यही है कि अपने काव्य में साहित्यिक परम्पराओं का पालन ये चेतनापूर्वक करना चाहते थे।

कुछ कवियों ने षड्ऋतु और बारहमासा दोनों का वर्णन किया है। जैसे जायसी, उसमान और मंझन ने केवल बारहमासा का ही वर्णन किया है। जायसी ने षड्ऋतु का वर्णन संयोग के अन्तर्गत और बारहमासा का वियोग के अन्तर्गत किया है। परन्तु उसमान ने दोनों का वर्णन वियोग के ही अन्तर्गत किया है। इनके काव्य में वियोग की ही प्रधानता है, क्योंकि भक्त का भगवान् से वियोग ही अधिक रहता है। संयोग के अवसर तो क्षणिक हुआ करते हैं। इसी दृष्टि से उसमान का ऋतु-वर्णन केवल विप्रलम्भ के ही अन्तर्गत हुआ है।

षड्ऋतु-वर्णन :

षड्ऋतु का वर्णन जायसी ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत और उसमान ने वियोग के अन्तर्गत किया है। दोनों कवियों ने वसन्त से शिशिर तक का वर्णन किया है। दोनों को प्रकृति के एक-एक तत्त्व रस उद्दीप्त करते हुए दिखाई देते हैं। जो सुखी हैं वह उनका आनन्द प्राप्त करते हैं और जो वियोगी हैं उसे वे दुगुनी व्यथा बढ़ाते हुए दिखाए गए हैं इसीलिए जायसी ने पद्मावती को इन ऋतुओं का आनन्द लूटते हुए दिखाया है और उसमान ने इनसे तप्त वियोगी स्वरूप को। वस्तुतः वियोग के अन्तर्गत ऋतुओं का वर्णन कवियों को प्रिय रहा है। वियोग में सभी वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर

---

१. मधुमालती, पृ० १२०।
२. चित्रावली, पृ० ६४।

प्रिय का रास्ता देखती रहती हैं। इसलिए सबका वर्णन करने का अवसर प्राप्त होता है। इस क्षेत्र में उसमान का ऋतु-वर्णन जायसी की अपेक्षा आगे है। इन्हें प्रत्येक ऋतु की एक-एक वस्तु कष्ट देती दिखाई देती है।

वसन्त ऋतु मे फूल नायिका को अंगार की तरह और कलियाँ काँटों की तरह लगती हैं। कोयल और पपीहे की पुकार तो हृदय पर कटार चलाती रहती है। ग्रीष्म ऋतु में विरहिणी प्रकृति की तपन तथा हृदय की जलन की दुहरी आग में जलती रहती है। प्रेम की प्यासी नायिका पानी भी नहीं पीती है और पी-पी रटती रहती है। पावस ऋतु मे जलधार ज्यों-ज्यों पृथ्वी को सींचती है त्यों-त्यों नायिका के हृदय से हूक उठती है। दामिनी की दमक प्राण ही निकालती है। शरद् ऋतु में चन्द्रमा अधिक कष्ट देता है। गुप्त रूप मे मदन तो जलाता ही है प्रत्यक्ष रूप में चन्द्रमा भी नायिका को जलाता रहता है। हेमन्त के शीत में नायिका सिसकियाँ लेती हुई रात बिताती है। यद्यपि नायिका के हृदय में मदन के अंगारे जलते रहते है फिर भी शीत भागता नही है। शिशिर ऋतु में सब लोग श्री पंचमी का त्योहार मनाते हैं परन्तु नायिका बेचारी विकट निर्जन मे पड़ी रहती है। उसके हृदय में वियोग के कारण रुदन होता रहता है फिर भी उसे अपने अधरों पर कुल कानि के कारण हँसी रखनी पड़ती है। इसी परिस्थिति के कारण वह यह चाहती है कि अपने शरीर को भस्म करके पवन के साथ लगकर प्रिय को ढूंढ़ निकाले।[1]

उसमान के इस वर्णन में अनावश्यक विस्तार एवं ज्ञान-प्रकाशन तो नही किया गया है परन्तु परम्परा का अक्षरशः पालन अवश्य हुआ है। छः ऋतुओं के वर्णन में एक भी ऐसी उक्ति नहीं है जिसे कवि के हृदय की मौलिक सूझ कहा जा सके।

वारहमासा-वर्णन :

वारहमासा का वर्णन सभी प्रेममार्गी कवियों ने किया है। परम्परा के अनुसार इसका वर्णन चैतमास से आरम्भ होता है, क्योंकि वर्ष का प्रथम मास यहीं है। प्रेममार्गी कवियों ने इस क्रम में स्वतन्त्रता से काम लिया है। जायसी ने असाढ़ से, मंझन ने श्रावण से और उसमान ने चैत मास से वारहमासे का वर्णन आरम्भ किया है। जायसी की नागमती को वियोग दशहरा से हुआ था जो असाढ़ के आरम्भ के पाँच दिन पहले पड़ता है। सम्भवतः इसी कारण उन्होंने असाढ़ से वर्णन करना आरम्भ किया। वियोग-वर्णन के वाद नायिका के वियोग की इस स्थिति के विषय में इस तिथि का कवि ने संकेत किया है—

दसवँ दावँ के गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा ॥[2]

---

१. चित्रावली, पृ० ९४-९६।

२. जायसी ग्रंथावली, पृ० १८८।

वियोग की दसवीं अवस्था मरण की स्थिति करके दशहरे के दिन जो प्रिय गया था अब वह लौट रहा है। उसमान ने भी चैत-वर्णन के आरम्भ में ऐसा संकेत किया है।[1] मंझन ने बारहमासा-वर्णन के श्रावण से आरम्भ करने का कोई कारण संकेत नहीं किया है। सम्भवतः मधुमालती और मनोहर का चित्रसारी में प्रेमा द्वारा जो मिलन कराया गया था वह श्रावण मास से ही था और उसी समय दोनों में वियोग भी हो गया। इसीलिए कवि ने श्रावण से वर्णन आरम्भ किया है। मधुमालती अपनी सखी से बारहमासा के आरम्भ में कहती है—

पंछी रूप बरिस दिन फिरी कुँअर की आरि।
सो सब तोसौं हे सखी एक एक कहौं उघारि॥[2]

इससे यह स्पष्ट हो रहा है कि नायिका अपने कष्टों का आरम्भ से अन्त तक क्रमिक वर्णन कर रही है। उसका वियोग श्रावण मास से ही हुआ था। इसीलिए वह सर्वप्रथम कहती है कि—

सावन घटा जो घन घहराती। सोंहि नेह चखु अँगना पानी॥[3]

यदि मधुमालती का वियोग श्रावण मास से न भी हुआ हो तो भी अन्य प्रेमी कवियों की परम्परा को देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उन्होंने बारहमासे का आरम्भ वियोग की तिथि से किया है, वर्ष के आरम्भिक महीने से नहीं। यहाँ सुविधा के लिए वर्ष के प्रथम माह चैत्र से उनके बारहमासे पर दृष्टिपात किया जाएगा।

चैत के वर्णन में मधुमालती और भौंरों का वर्णन सभी कवियों ने किया है। वसन्त की मादक बयार जब भौंरों को पुष्प पराग की ओर खींचती है उस समय प्रिय-रूपी भौंरे का प्रिय पुष्प से दूर रहना सभी को विशेष कष्टदायक प्रतीत हुआ है। इस वर्णन में जायसी सबसे आगे प्रतीत होते हैं। उनकी विरहिणी कहती है कि वसन्त के प्रभाव से अन्य फल-फूलों की भाँति नागमती की शरीर-रूपी शाखा में कुच-रूपी नारंग फल लग गए हैं और यौवन परिपूर्ण हो चुका है। विरह-रूपी शुक उसे खाना चाहता है अर्थात् नष्ट करना चाहता है, अब उसकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए हे प्रिय! गिरह बाज परेवा की भाँति इस पराए हाथ में पड़ी हुई नारी की रक्षा करो।[4]

वैसाख-वर्णन में चोआ, चीर, चन्दन आदि का वर्णन तो किया ही गया है मंझन ने नई-नई कोंपलों का भी वर्णन किया है।[5] वैसाख-वर्णन में जायसी की ये

---

१. चित्रावली, पृ० १६६।
२. मधुमालती, पृ० १२०।
३. वही, पृ० १२०।
४. जायसी ग्रंथावली, पृ० १५६।
५. मधुमालती, पृ० १२२।

पंक्तियाँ सर्वप्रसिद्ध हैं—

> लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिरि फिरि भूँजुसि तजेउँ न बारू।
> सरवर हिया घटत नित जाइ। टूक टूक होइ कै बिहराइ।
> बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका ॥[1]

नायिका के हृदय की स्थिति भाड़ में पड़े हुए दाने की है। प्राण शरीर से निकलता नहीं है और बार-बार उसी में छटपटा रहा है। विदीर्ण हृदय को दृष्टि-रूपी दवँगरा से मिलाने की उक्ति प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण और उससे भाव-साम्य का अत्यन्त सुन्दर रूप उपस्थित करती है। इससे नायिका की व्यथा के साथ-साथ कवि की निरीक्षण-शक्ति भी प्रकट हो रही है।

जेठ मास में सूर्य सहस्रों गुना अधिक तप रहा है। उसका ताप विरहिणी चित्रावली की आँखों में ही आँसुओं को सुखा दे रहा है। प्रिय की अनुपस्थिति में विरह बवंडर की भाँति तूफान मचा रहा है और उसका प्राण उसी में पड़े हुए पत्ते की भाँति उड़ रहा है। इसीलिए नायिका कहती है कि जेठ की गर्मी की व्यथा का सही अनुभव वही कर सकता है जिसकी सेज पर उसका प्रिय न हो।[2] मधुमालती के जेठ-वर्णन में कोई नई विशेषता नहीं है। चित्रावली की ही भाँति यहाँ भी विरह-ताप अधिक दिखाया गया है। मधुमालती का कथन है कि विरह तो गुप्त रूप में जलाता ही है, पर प्रकट रूप में सूर्य की अग्नि दुगुना ताप बढ़ा रही है।[3] नागमती की भी यही स्थिति दिखाई गई है। वह इसी अग्नि में जलकर अधमरी हो गई है। विरह ने उसके अधजले मांस को खाकर अब हड्डियों को भी खाना आरम्भ कर दिया है। प्रियतम का अब भी आना श्रेयस्कर हो सकता है।[4]

जेठ के बाद असाढ़ का वर्णन होता है परन्तु जायसी ने जेठ-असाढ़ी का वर्णन किया है। जेठ के अन्त में प्रथम अथवा द्वितीय पावस तक के समय को जेठ-असाढ़ी कहते हैं। यह समय कृषक-वर्ग के लिए अत्यन्त महत्त्व का होता है, क्योंकि कृषि-कार्य इसी समय आरम्भ होता है। वर्षा आरम्भ होने के पूर्व कृषक अपना छप्पर छाते हैं। जायसी ने अपने जेठ-असाढ़ी-वर्णन में इन्हीं बातों का वर्णन किया है।[5] रानी नागमती को अपने छप्पर को छाने की विशेष चिन्ता थी। रानी के मुख से छप्पर की व्यवस्था की चिन्ता अभिव्यक्त कराकर कवि ने भारतीय ग्रामीण जीवन की उत्तम झाँकी उपस्थित की है। प्रेम के क्षेत्र में रानी और रंकिणी में कोई अन्तर

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० १५६।
२ चित्रावली, पृ० १६६।
३. मधुमालती, पृ० १२२।
४. जायसी ग्रंथावली, पृ० १५६।
५. वही, पृ० १५७।

नहीं होता है। नागमती छप्पर के छाजन के माध्यम से पावस के आगमन पर आने वाले कष्टों को याद करके भयभीत हो रही है। इसलिए उसकी छप्पर को छाने की चिन्ता को दिखाना अनुचित नहीं, उचित ही है।

असाढ़ का वर्णन उसमान, मंझन और जायसी का लगभग एक समान है। जायसी कवि की नागमती को असाढ़ के प्रथम पयोद विरह की सेना के सदृश जान पड़ते हैं। धुँधले, काले, श्वेत घन आकाश में सैनिकों की भाँति दौड़ते दिखाई देते हैं। बक-पंक्तियों की श्वेत ध्वजा दिखाई देने लगी, विद्युत-रूपी खंग चमकने लगे, एवं बूँद-बाणों की घनघोर वर्षा बादल करने लगे। मदन की इस घिरी हुई सेना से नायिका की प्राण-रक्षा उसका प्रिय ही कर सकता है।[1]

सावन और भादों का वर्णन इन सभी कवियों ने बिल्कुल समान किया है। यहाँ तक कि कुछ पंक्तियाँ भी मिलती हुई प्राप्त हैं। तीज और हिंडोले का वर्णन मौसमी त्यौहार के रूप में इन महीनों में किया गया है। ऊहात्मक कल्पनाएँ भी सभी कवियों की लगभग समान हैं। जायसी की नायिका के नेत्र मघा के झकोरों से होड़ लगा रहे हैं। यही बात मधुमालती में भी कही गई है।[2]

अन्य सभी महीनों का वर्णन सभी कवियों ने प्रायः एक समान किया है। क्वार में खंजन, अगस्त, हंस, स्वच्छ जल आदि शरद ऋतु की शोभा-विधायक वस्तुओं का वर्णन किया गया है। इसी समय प्राचीनकाल में राजा युद्ध के लिए प्रस्थान करते थे इसलिए उसका भी वर्णन जायसी ने किया है।[3] कातिक मास में चाँद-चाँदनी और दिवाली के त्यौहार का वर्णन किया गया है। अगहन और पूस मास में रात की दीर्घता और दिवस की लघुता तथा जाड़े की अधिकता का वर्णन किया गया है। माघ-वर्णन में माघी वर्षा का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया गया है। इस महीने में श्रीपंचमी के त्योहार का भी वर्णन उसमान ने किया है। फाल्गुन-वर्णन के अन्तर्गत चाँचर, होरी, नई बनस्पति, नया रंग, नई कान्ति का सुन्दर वर्णन इन कवियों ने किया है। ये सभी वर्णन प्रायः एक समान हैं।

वस्तुतः सूफी कवियों ने बारहमासा-वर्णन के अभाव में अपने काव्य को अधूरा समझा था इसलिए उसका वर्णन करना अनिवार्य समझा। इसके वर्णनों में समानता यहाँ तक पाई जाती है कि एक कवि की रचना पढ़ने के बाद दूसरे की रचना फीकी जान पड़ती है। उपमानों की आँख मूँद पुनरावृत्ति-मात्र हुई है। इस क्षेत्र में सर्वोत्तम वर्णन महाकवि जायसी का है। भावों की मार्मिक योजना जैसी जायसी की है वैसी किसी कवि ने नहीं की है।

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० १५२।

२. वही, पृ० १५३; मधुमालती, पृ० १२०; चित्रावली, पृ० १७०।

३. मधुमालती, पृ० १२०; जायसी ग्रंथावली, पृ० १५३

ठाट इनमें रहता है। अलंकार भार से दबी निर्जीव काव्य-कामिनी की सर्जना ऐसी ही स्थिति में होती है। यह प्रवृत्ति रीति कवियों में अधिक पाई जाती है। इसका प्रभाव सूफी कवियों पर भी पाया जाता है। यहाँ अलंकार प्रदर्शित करना इन कवियों का लक्ष्य नहीं था परन्तु अपनी जानकारी को दिखाना ये अवश्य चाहते थे। इसके प्रमाण इनके काव्यों में प्राप्त होते हैं।

सूफी कवि अपनी जानकारी दिखाने के लिए किसी विषय का प्रसंग आते ही उसका पूरा ब्यौरा उपस्थित करने लगते हैं। ऐसे स्थलों पर वस्तुओं की संख्या गिनाना तथा उनके विषय में अपनी जानकारी उपस्थित करना इनका लक्ष्य जान पड़ता है। चित्रावली में उसके विवाह के अवसर पर उसमान ने मिठाइयों को गिनाना आरम्भ कर दिया है और एक भी उसकी जानकारी की मिठाई छूटने नहीं पाई है।[1] इसी प्रकार भोजन का वर्णन करते समय सभी पकवानों का नाम कवि गिना डालता है। छोटी-से-छोटी कोई भी वस्तु छूटने न पाए इस बात का विशेष ध्यान रखा है। यहाँ तक कि 'खरिका' का भी वर्णन कर डाला है।[2]

विषय की जानकारी का प्रदर्शन करने में जायसी सबसे आगे हैं। किसी वस्तु के विषय में अपनी सम्पूर्ण जानकारी उपस्थित करने का ये अवसर खोजते रहे हैं और अवसर मिलने पर उसका पूर्ण उपयोग इन्होंने किया है। कहीं-कहीं ऐसा करने में इनकी कविता वस्तुओं की परिगणना मात्र होकर रह गई है। पद्मावत के अन्तर्गत बादशाह भोज खण्ड इसका सुन्दर उदाहरण है। माँस का वर्णन करते समय जितने जानवरों का माँस मनुष्य खाता है उन सबको उन्होंने गिना डाला है। इस अवसर पर कवि ने अत्यन्त होशियारी से काम लिया है। माँस के प्रसंग में ऐसे जानवरों का नाम उन्होंने नहीं गिनाया है जिससे किसी की धार्मिक भावना को ठेस लगे। उदाहरणार्थ गाय और सूअर का वर्णन उन्होंने इस प्रसंग में नहीं किया है जबकि हरिण तथा नील गाय आदि का वर्णन किया है।[3] इसी प्रकार मछली के वर्णन में मछलियों की सारी जातियाँ गिना दी गई हैं। चावल का वर्णन करते समय कवि ने धान की उपज की सारी किस्में प्रदर्शित कर दी हैं।[4] अन्त में कवि ने अपनी असमर्थता भी यह कहकर प्रकट कर दी है कि 'कहँ लगि बरनौ जावत धाना।' आगे चलकर माँस और मछली पकाने की विधि इस प्रकार वर्णन करने लगता है मानो पाकशास्त्र की शिक्षा दे रहा है।

इन कवियों को शब्दों के पकड़ने में बहुत आनन्द आता जान पड़ता है। जायसी ने पद्मावत के आरम्भ में लगभग साठ बार 'कीन्हेसि' शब्द की पुनरावृत्ति

---

१. चित्रावली, पृ० २००
२. वही, पृ० २००।
३. जायसी ग्रंथावली, पृ० ३४३।
४. वही, पृ० २४४।

हरण हैं। उन पदों की विस्तृत एवं विद्वत्तापूर्ण व्याख्या डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने 'पद्मावत' के महाभाष्य में की है। इस प्रकार की रचनाएँ संस्कृत साहित्य की उस परम्परा की कड़ी हैं जिसमें कवियों ने एक ही पद में रामायण और महाभारत दोनों की कथाएँ वर्णित की हैं तथा एक-एक पद को पन्द्रह-पन्द्रह अर्थों से भरा है।

सूफी कवियों को परम्परा के प्रति मोह था। इसी मोह के कारण भद्दी परम्पराओं का भी इन्होंने पालन किया है। लम्बे रूपकों तथा श्लेष की बार-बार पुनरावृत्ति इसी परम्परा के कारण इन्होंने की है। इनके काव्यों में अतिशयोक्ति तो पग-पग पर पाई जाती है। यह बात अवश्य है कि इनके आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण अतिशयोक्ति हास्यास्पद नहीं होने पाई है। अन्य अलंकारों का प्रयोग परम्परा के अनुसार इनमें भी पाया जाता है।

सूफी कवियों की प्रशस्ति-प्रथा :

सूफी-काव्य में समसामयिक राजाओं की प्रशंसा गाने की भी प्रथा रही है। इनकी प्रशंसा रीति कवियों की भाँति दरबार में सम्मान अथवा धन पाने के लिए नहीं की गई है और न राजाओं की भोगेच्छा जगाना ही इन कवियों का लक्ष्य रहा है। ये कवि थे। राजाओं की अधिकार-भार से दबी परिस्थिति को ये महसूस करते थे इसलिए राजाओं के प्रति सम्मान प्रकट करना अपना कर्तव्य समझते थे। इसी कर्तव्य-भाव से प्रेरित होकर उन्होंने अपने सामयिक राजाओं की प्रशस्ति गाई है। ग्रंथ के आरम्भ में ही ईश्वर-वन्दना के बाद शाहेवक्त की प्रशंसा करने का उनका अर्थ यही है कि लौकिक जीवन का रक्षक राजा और पारलौकिक जीवन का ईश्वर है अर्थात् ईश्वर के बाद राजा का ही स्थान है इसलिए उसकी स्तुति भी अवश्य की जानी चाहिए।

मलिक मुहम्मद जायसी ने बादशाह शेरशाह की प्रशंसा की है, उसमान ने नूरुद्दीन की और मंझन ने शाह सलीम की। इन सभी कवियों ने बादशाहों की प्रशंसा खूब बढ़ा-चढ़ाकर की है। इनके न्याय और दान की महिमा प्रायः एक ही प्रकार की उक्तियों में सभी ने गाई है। जायसी ने शेरशाह की न्यायप्रियता का वर्णन करते हुए लिखा है—

> अदल कहौं जस प्रिथिमी होई। चाँटहि चलत न दुखवइ कोई।
>
> \+ + +
>
> परी नाथ कोइ छुअइ न पारा। मारग मानुस सोन उछारा।
> गउव सिंघ रेंगहिं एक बाटा। दुअउ पानि पिअहिं एक घाटा।
> नीर खीर छानइ दरबारा। दूध पानि सो काढ़ निनारा॥[1]

---

१. जायसी ग्रंथावली, पृ० ६।

कवि पुहकर

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी पुहकर कवि-कृत 'रसरतन' है। सन् १९६३ ई० में नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा इसे प्रकाशित किया गया है। इसके साथ कवि की नायिका-भेद सम्बन्धी रचना 'रसवेलि' के भी प्राप्त अंश प्रकाशित किए गए हैं।

पुहकर की रचनाएँ हिन्दी के मध्यकालीन साहित्य की कुंजी कही जा सकती हैं। 'रसरतन' वस्तुतः रस और रतन से युक्त रचना है। इसमें रीतिकाव्य की प्रवृत्तियों को आख्यानक काव्य की वस्तु के रूप में ग्रहण करके एक अद्भुत कथानक तैयार किया गया है। इसका रचनाकाल सम्राट् जहाँगीर का शासनकाल अर्थात् सत्रहवीं शताब्दी का मध्यकाल था। कवि ने इसमें जहाँगीर की अत्यधिक प्रशस्ति भी गाई है। इसको भक्तिकालीन रीति-ग्रंथ कहना चाहिए। रीतिकाव्य की सभी प्रवृत्तियाँ इसमें वर्तमान हैं।

रसरतन की प्रेम कहानी पुहकर ने दंतकथाओं में सुनी थी। उसी में नव रसों का समावेश करने की उसने योजना बनाई[1] और यथास्थान सभी रसों का चित्रण किया। सभी रसों में शृंगार को कवि ने रसराज माना है।[2] इसी सिद्धान्त के अनुसार उसने अपनी साहित्य-सर्जना भी की है जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण रसरतन पर शृंगार का साम्राज्य छा गया है। अन्य रस उसके सहायक रूप में प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यों की शृंगारिकता इसमें स्वच्छन्द होकर लौकिक धरातल पर उतरी जान पड़ती है फिर भी 'शृंगार के शास्त्रीय और प्रचलित रीति-बन्धनों के बीच से रास्ता बनाता हुआ भी कवि जीवन की सहज और संस्कृति के मर्यादा-प्रेरित भावों तथा वृत्तियों की भी रक्षा करने के प्रयत्न में उद्बुद्ध और सचेत है।'[3] भारतीय संस्कृति की मर्यादा उसके काव्य में खण्डित नहीं होने पाई है। यह बात अवश्य है कि रीति कवियों के समान भोगपरक शृंगार का वर्णन इस काव्य में अधिक हुआ है।

संयोग शृंगार वर्णन :

संयोग शृंगार का वर्णन पुहकर ने कामशास्त्रीय पद्धति से किया है। 'रसरतन' के विजयपाल खण्ड में रम्भावती को सखियों द्वारा काम-कला की सम्पूर्ण शिक्षा दी गई है।[4] इस अवसर पर कवि ने कामशास्त्र के लक्षणों का भी वर्णन किया है।[5]

---

१. रसरतन, आदि खंड, पृ० ८६-९१।
२. वही, पद सं० १००।
३. रसरतन की भूमिका, पृ० १८।
४. रसरतन, विजयपाल खण्ड, पद सं० ७०-१०६।
५. वही, पद सं० १०२-५।

नहीं है।[1] अत्यन्त विस्तार के साथ सम्भोग चित्रण करने पर भी कवि की आत्मा सन्तुष्ट नहीं हुई है। इसी कारण उसने अन्त में कहा कि प्रथम समागम की रस-रीति को जानने वाले जानते हैं। उसे स्पष्ट नहीं कहा जा सकता। केवल रसिक ही उस पर विचार कर सकते हैं।[2]

कल्पलता के प्रथम समागम के अवसर पर ही कवि ने विपरीत रति का चित्रण किया है।[3] यह वर्णन परम्परित परिपाटी पर हुआ है। नायिका के सभी अंग-प्रत्यंगों की अद्भुत स्थिति यहाँ कवि ने दिखाई है। यद्यपि यह वर्णन अश्लील हुआ है परन्तु उसमें कवि की उपमाएँ रूढ़िग्रस्त होते हुए भी अपनी अनोखी छटा बनाए हुए हैं। सम्भोग के इन सभी वर्णनों में आलिंगन, चुम्बन, दंतक्षत, नखक्षत और सम्भोग की अन्य स्थितियों का बार-बार वर्णन हुआ है।

रतिरण का वर्णन पुहकर ने कई जगहों पर रूपकात्मक ढंग से किया है।[4] ये सभी वर्णन परम्परानुसार हुए हैं परन्तु नायिका-कौशल सर्वत्र छाया हुआ है। रतिरण के वर्णन में इन्होंने सेना का रूपक बाँधा है। नायिका अनंग को सारथी बनाकर रणभूमि के लिए प्रस्थान करती है। उसकी भृकुटी धनुष और बरुनियाँ बान, अंचल ध्वजा, कंचुकी जिरह की जेब तथा कटाक्ष सुभट के रूप में काम देते हैं। किंकणी की ध्वनि मानो रतिरण में युद्धनाद है।[5] विपरीत रण में नायिका के झीने अंचल से कंचुकी में उभरे उरोज नायक के सम्मुख स्पष्ट आभासित हो रहे हैं। कंचुकी मानो सेनानी के जिरह की जेब है जिसमें कुच-रूपी अस्त्र रण में प्रयोग करने के लिए रखे गए हैं। कवि की यह कल्पना उसकी तीक्ष्ण बुद्धि की देन है। एक ही पद में संयोग की सारी वस्तुओं को कलात्मक ढंग से समेट कर रख दिया गया है।

संयोग के पश्चात् नायिका की अस्त-व्यस्त स्थिति का भी पुहकर ने अनेक स्थलों पर अच्छा वर्णन किया है।[6] ये सभी वर्णन परम्परित परिपाटी पर ही हुए हैं। नायिका की चूड़ियाँ टूट गई, कंचुकी दरक गई, अलकें उलझ गई, मुख-मण्डल मलिन हो गया, अधरों पर कज्जल और कपोलों पर पीक की लीक लगी हुई है। नखक्षत, दन्तक्षत से वह घायल हो गई है आदि बातों को सर्वत्र दोहराया गया है। इन वर्णनों से कवि की कलात्मकता झलकती है। प्राचीन उपमानों के ही द्वारा नई ज्योति कवि ने पैदा की है।

संयोग शृंगार के अन्तर्गत विलासिता की समस्त सामग्री को कवि ने चित्रित

---

१. रसरतन, स्वयंवर खण्ड, पद सं० २८८-९०, अप्सरा खण्ड, पद सं० १०३-४।
२. वही, पद सं० २९३।
३. वही, अप्सरा खण्ड, पद सं० ११३-१८।
४. वही, पद सं० ११९-२३ तथा १५७-५८।
५. वही, पद सं० १२३।
६. वही, पद सं० १४७-५३ तथा स्वयंवर खण्ड, पद सं० २९९-३०५।

ग्रंथ के अन्तर्गत केवल इसी प्रसंग में किया गया है। वियोग-वर्णन की सारी कला इस अवसर पर कवि ने दिखाई है। यद्यपि स्वप्न के प्रिय की प्राप्ति के लिए अत्यधिक विकल होना कुछ अस्वाभाविक-सा जान पड़ता है।

मान-वर्णन—मान का वर्णन 'रसरतन' में अत्यल्प मात्रा में हुआ है। एक स्थल पर कवि ने लघु, मध्यम एवं गुरु मान का संकेत किया है परन्तु वहाँ मान का वर्णन नहीं संकेत-मात्र है।[१] मान के आधार पर नायिकाओं का लक्षण बताया गया है। केवल दो स्थानों पर साधारण रूप में मान का वर्णन करके कवि ने कथानक को आगे बढ़ाया है। अप्सरा कल्पलता सूरसेन के पास उसकी भावी प्रिया रंभावती का चित्र देखकर हल्का-सा मान करती है। बाद में सूरसेन ने जब उसे यह स्पष्ट बता दिया कि यह चित्र उस राजकुमारी का है जिसका स्वयंवर होने वाला है तो नायक के वचन चातुर्य से उसका मान तुरन्त भंग हो जाता है।[२] इस रचना में मान का स्पष्ट वर्णन केवल यही है।

रम्भावती का मान वस्तुतः मान-वर्णन नहीं बल्कि प्रेम-वर्णन कहा जा सकता है। उसने नायक से इसलिए मान किया कि नायक ने अपनी प्रिय सपत्नी कल्पलता को छोड़ कर उसे कष्ट दिया। वह सपत्नी से ईर्ष्या नहीं बल्कि प्रेम करती है, क्योंकि प्रिय उससे प्रेम करता है। उसके मान का कारण यह है कि प्रिय ने अपने मन की बात उससे स्पष्ट कही तक नहीं।[3] सपत्नी के विषय में नायिका की धारणा एक सखी के सदृश है। उसके अनुसार शठ स्त्रियाँ ही सपत्नी से भय खाती हैं।[४] इसीलिए वह कल्पलता को अविलम्ब लाने का नायक से आग्रह करती है।[५]

रम्भावती का यह आचरण पतिव्रता पत्नी का आदर्श उपस्थित करता है। सम्भवतः कवि का उद्देश्य भी यही था। जिस प्रकार रम्भावती ने पति से अपनी अटूट आस्था एवं निश्छल प्रेम की व्यंजना की उसी प्रकार सूरसेन ने भी अपने हृदय का सर्वाधिक प्यार उसी के लिए दर्शाया। इस प्रकार दोनों प्रेमियों का प्रेम मान के द्वारा अत्यन्त प्रगाढ़ अवस्था को पहुँच गया। कल्पलता का मान सामान्य नायिका की भाँति सौत के प्रति ईर्ष्या के कारण दिखाया गया है। परन्तु रम्भावती का मान आदर्श पत्नी की भाँति सौत के प्रति सहानुभूति के कारण दिखाया गया है।

प्रवास-वर्णन—'रसरतन' में प्रवास के अन्तर्गत कल्पलता का विरह-वर्णन किया गया है। सूरसेन अप्सरा कल्पलता के साथ संयोग सुख प्राप्त करने के बाद

---

१. रसरतन, वैरागर खंड, पद सं० १७५।
२. वही, अप्सरा खंड, पद सं० २४१-४६।
३. वही, युद्ध खंड, पद सं० १६७-७१।
४. वही।
५. वही।

रम्भावती के स्वयंवर में चला गया। वहाँ रम्भावती से विवाह हो जाने पर वहीं रहने लगा। इधर कल्पलता प्रिय के वियोग में घुल-घुल कर मरने लगी। इसी घटना के कारण कवि को प्रवास-वर्णन का उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ है जिसका सम्पूर्ण स्थान बारहमासा-वर्णन घेरे हुए हैं।

प्रवास के अन्तर्गत कल्पलता ने अपनी वेदना को एक शुक को सुनाना आरम्भ किया। बारहमासे की सारी व्यथा वह शुक से ही कह डालती है। शुक उसकी सहायता करने के लिए चम्पावती में जाकर रानी रम्भावती से लक्षणा के द्वारा सारी कथा का सारांश सुना डालता है। उसी कथा को सुनकर रम्भावती ने सूरसेन से मान भी किया और कल्पलता से मिलने के लिए नायक-नायिका दोनों ने सदल-बल प्रस्थान कर दिया। अन्त में इन प्रेमियों का मिलन हुआ। इस अवसर पर शुक की विद्वत्ता दर्शनीय है। उसने रम्भावती से मात्र इतना ही कहा—

बहु नाइक नाइक जिते ते न होंहि अनुकूल।
सो तज मधुकर मालती अंधौ कमल के फूल॥[1]

इस संकेत मात्र से ही रम्भावती सारी बात समझ गई और सूरसेन से कल्पलता की विरहाग्नि को शान्त करने के लिए आग्रह करने लगी।

विरह दशाओं का वर्णन :

पुहकर की दृष्टि प्रत्येक वर्णन में प्रायः उसके शास्त्र पर रही है इसलिए वियोग-दशाओं का वर्णन भी उन्होंने शास्त्रीय-पद्धति पर किया है। रसरतन के समस्त वियोग-वर्णन में कवि ने विरह-दशाओं का चित्रण किया है। पूर्वराग और प्रवास वर्णनों के अन्तर्गत इनके अनेक उदाहरण प्राप्त हैं। पूर्वराग-वर्णन के अन्तर्गत तो कवि ने सभी दशाओं का लक्षण और उदाहरण क्रमशः प्रस्तुत किया है।[2] यह वर्णन रीति कवियों के लक्षण-ग्रंथों की परम्परा की एक कड़ी है। इस वर्णन में कवि ने भानुदत्त की 'रसमंजरी' को आधार बनाया है। 'रसमंजरी' का ही क्रम और वर्णन इन्होंने भी अपनाया है। रसमंजरीकार की ही भाँति नव अवस्थाओं के वर्णन कर लेने के बाद दसवीं अवस्था 'मरण' का चित्रण कवि ने नहीं किया है। मरण-दशा को अमंगलकारी मानने के कारण उसका वर्णन नहीं करना चाहिए।[3]

विरह-वर्णन की विशेषताएँ :

पुहकर का विरह-वर्णन शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करते हुए भी भाव-

---

१. रसरतन, युद्ध खण्ड, पद सं० १४७।
२. वही, स्वप्न खण्ड, पद सं १४७-२१८।
३. वही, पद सं० २१७-१८।

संकुल है। इनके कुछ पदों की उक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक व्यंजित हुई हैं। भावों की सबलता ने कवि की कलाकारिता के बन्धन को अनेक स्थलों पर तोड़ दिया है। वियोगिनी की स्वप्नावस्था का वर्णन करते हुए नायिका की अद्भुत स्थिति का कहीं-कहीं दर्शनीय वर्णन कवि ने किया है।[1] वियोगावस्था का प्रभाव नायिका की सखियों पर भी दिखाया है। नायिका की जड़तावस्था के अवसर पर उसकी सखियाँ घबड़ा उठती हैं। कोई वायु, कोई भूत, कोई जूड़ी ज्वर, कोई नजर आदि लग जाने की शंका करती हैं। कोई-कोई अपनी अटकल लगाती हुई कहती है कि आज यह लाल चूनरी पहनकर फुलवारी में टहली है इसीलिए किसी ने अनिष्ट करने के उद्देश्य से इसे जादू कर दिया है। सखियों की इस प्रकार की घबड़ाई स्थिति का कवि ने अनेक पदों में वर्णन किया है। हाइ-हाइ, हा-हा आदि लोक-संतप्त शब्दों के द्वारा नायिका के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति दिखाने का भी प्रयास कवि ने किया है।[2] सखियों के अतिरिक्त रम्भावती की माता को भी कवि ने अति विकल दिखाया है। वह विरहिणी पुत्री की सुरक्षा के लिए दान-पूजा आदि भी कर डालती है।[3] इस प्रकार नायिका के वियोग के ही अन्तर्गत माता के सहज स्नेह का भी चित्रण किया गया है।

वियोग-वर्णन में रूढ़ परम्परा का अनुसरण करने के कारण पुहकर ने रीति कवियों की भाँति अत्युक्ति भी की है। ऐसे अवसरों पर चमत्कार भी दिखाया गया है।[4] तीर, तरवार, नेजा, सूल आदि का भी वर्णन किया है। ये सभी वर्णन परम्परा का अनुसरण करते हुए आगे बढ़े हैं।

आलम्बन वर्णन :

आलम्बन के अन्तर्गत नायिका-भेद पर पुहकर की दृष्टि विशेष रही है। यद्यपि आख्यान के कथानक में नायिका-भेद-वर्णन करने का अवसर कवि को कम मिला है फिर भी ऐसे प्रसंगों की प्रतीक्षा करता हुआ कवि जान पड़ता है जहाँ उसे अपनी नायिका-भेद-सम्बन्धी विज्ञता प्रकाशित करने का अवसर मिले। स्वप्न खण्ड में विरहिणी रम्भावती को सान्त्वना देने वाली सखियों का वर्णन करते हुए मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा नायिकाओं की विवरणी इसी प्रेरणा से प्रस्तुत कर जाता है।[5] रम्भावती को गुण-चातुरी की शिक्षा देने वाली आठ सखियों का वर्णन करते हुए कवि पुनः

---

१. रसरतन, स्वप्न खण्ड, पद सं० २६६।
२. वही, स्वयंवर खण्ड, पद सं० १३३।
३. वही, स्वप्न खण्ड, पद सं० २२७-२९।
४. वही, पद सं० ८५।
५. वही, पद सं० ८९-९०।

किसी अन्य व्यक्ति की रचना होने का संदेह नहीं होना चाहिए। इस ग्रंथ के प्राप्त होने तथा रसरतन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि नायिकाभेद कवि का प्रिय विषय रहा है। रसरतन में नायिकाभेद वर्णन करने का पर्याप्त अवसर न मिलने के कारण कवि की अतृप्त अभिलाषा रसवेलि में तृप्त हुई होगी।

'रसवेलि' की रचना 'रसमंजरी' के आधार पर की गई है। भानुदत्त ने ग्रंथ का प्रयोजन लिखते हुए अभिव्यक्त किया है कि विद्वानों के मन-रूपी भौंरे रस का आस्वाद प्राप्त कर सकें इसीलिए रसमंजरी की रचना की गई।[1] इसी बात को पुहकर ने भी रसवेलि में दोहराते हुए कहा है—

रसवेलि बरनि पुहकर सुकवि गिरा फूल आनन्द लसत।
अलिगण सुमन्त वर जग सु हरसु ये प्रसिद्ध जुग जुग हसत ॥[2]

रसवेलि की शास्त्रीयता पर पूर्णरूप से विचार उसके अधिकांश के प्राप्त हो जाने पर ही किया जा सकता है। अभी जो अंश प्रकाशित हो पाया है उसमें केवल चौवीस पद हैं और वे भी क्रमानुसार नहीं हैं। जो पद प्राप्त हुए हैं वे नायिकाओं के उदाहरणस्वरूप लिखे गए हैं और उन पर भानुदत्त की स्पष्ट छाप है।

रूप-वर्णन :

आलम्बन के स्वरूप का विशद् वर्णन पुहकर ने विभिन्न परिस्थितियों में अनेक स्थलों पर किया है। इनमें कवि की सर्वाधिक दृष्टि नायिका के सुसज्जित स्वरूप पर रही है। ऐसा कोई भी स्थल जहाँ नायिका का उल्लसित स्वरूप चित्रित करने का अवसर मिल सकता है कवि से छूटने नहीं पाया है। इसी कारण अनेकानेक स्थलों पर विभिन्न पद्धतियों से रूप-वर्णन हुआ है। सर्वप्रथम रूप का वर्णन आदिखंड में छन्द एक सौ बानवे से दो सौ छः तक नायिका की वयःसंधि के रूप में किया गया है। इस अवसर पर किशोरी की अज्ञात यौवना स्थिति का अच्छा चित्रण हुआ है। शैशव और यौवन की खींचतान के मध्य नायिका की अद्‌भुत स्थिति दिखाई गई है। इसके पश्चात् अपनी सौन्दर्य-कल्पना की सजीव मूर्ति का आभास कवि ने चित्रखंड में दिया है।[3] इस अवसर पर नायिका के प्रत्येक अंगों को गिनाकर उनकी एक झलक मात्र उपस्थित की गई है। इसी सांकेतिक सौन्दर्य के आधार पर आगे के विशद् रूप-वर्णन हुए हैं।

नायिका के रूप का विस्तृत वर्णन करने का अवसर कवि को स्वयंवर खंड में

---

१. विद्वत्कुल मनो भृंग रस व्यास संग हेतवे।
   एषा प्रकाश्यते श्रीमद्‌भानुनारसमंजरी ॥२॥
२. रसवेलि, पद सं० ३७।
३. रसवेलि, चित्र खंड, पद सं० १६२-६६।

सौन्दर्य की प्राप्ति के लिए नायक को घोर यातनाएँ सहनी पड़ीं उसी के प्रथम दर्शन यहाँ उसे प्राप्त हुए हैं इसीलिए अद्वितीय रूप में उसे कवि ने दिखाया है।

नखशिख-वर्णन :

फुटकल वर्णनों के अतिरिक्त स्वयंवर खंड में पुहकर ने व्यापक नखशिख-वर्णन किया है। यह वर्णन अत्यन्त सुन्दर हुआ है। नायिका के गोरे गात के सम्मुख कवि ने केसर, कनक, चंपा, दामिनि, दीपक आदि सब को फीका बताया है। उसके चंद्रमुख को देखकर चकोर भी लालायित हो उठते हैं। उसकी पद्मगंध से उसके आस-पास भौंरे उन्मत्त बने रहते हैं। मनुष्य क्या मुनि और सिद्ध भी उसकी प्राप्ति के लिए तरसते रहते हैं।[१] नायिका के पद-नख को कवि ने कामदेव की आरती कहा है जो उसके यौवन की पूजा के लिए सजाई गई है।[२] उसकी एड़ी को जावक रंग से भरी शीशी की उपमा दी गई है। नूपुरों के वर्णन में भी ऐसी ही कल्पना की गई है। नायिका के नूपुरों को देखने मात्र से ही काम उद्दीप्त होकर नायक को नायिका के ऊपरी भाग का चिन्तन करने के लिए बाध्य कर देता है।[३]

नायिका की कटि का वर्णन करने में कवि ने अधिक चमत्कार दिखाया है। परंपरित उपमानों की समता से उसे संतोष नहीं हुआ है। उसके अनुसार न वह आँख से देखी जा सकती है न मन में उसकी कल्पना ही की जा सकती है। उसे जानने के लिए योग, मुक्ति, ज्योतिष आदि का सहारा लेना पड़ेगा। उसकी उपमा विरही के बल, विरहिणी के हास-विलास तथा दुखी हृदय की वेदना से कुछ की जा सकती है।[४]

उरोजों के मध्य मोतियों की माला में लगे हुए गोल लाकेट का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि मानो पर्वतमालाओं के मध्य मखतूल के झूले में चन्द्रमा झूल रहा है।[५] चिवुक का डिठौना मानो प्रिय को रिझाने तथा सौत को सताने के लिए टोना किया गया है।[६] काले केशों के मध्य माँग की शोभा मानो पावस की काली घनघोर घटा के मध्य 'बरावगन' की पंक्ति हो।[७] इसी प्रकार सभी अंगों के वर्णन के लिए पुहकर की उक्तियाँ अतीव सुन्दर बन पड़ी हैं। इसमें कवि की प्रतिभा

---

१. रसरतन, स्वयंवर खंड, पद सं० ३५।
२. वही, पद सं० ३६।
३. वही, पद सं० ३८।
४. वही, पद सं० ४०।
५. रतनसेन, स्वयंवर खंड, पद सं० ४६।
६. वही, पद सं० ५१।
७. वही, पद सं० ६२।

को विशेष विस्तार प्राप्त हुआ है।

रूप को सजाने के लिए सोलह शृंगार तथा द्वादश आभरण का भी पुहकर ने वर्णन किया है। इन सौंदर्य प्रसाधनों के द्वारा कवि ने नायिका को सजाया है। कहीं-कहीं इनको क्रमशः गिनाया भी गया है।[1] गिनाने में एक सिरे से दूसरे सिरे तक का एक भी अंग-प्रत्यंग अथवा आभूषण कवि से छूटने नहीं पाया है। मानो इनकी गिनती कराना कवि ने अनिवार्य समझा था। इस वर्णन से कवि की परम्परानुसारी प्रवृत्ति का पता चलता है। इसी कारण उस समय तक प्रचलित एक भी वस्त्राभूषण को कवि ने छोड़ा नहीं है।

पुरुष-रूप-वर्णन :

पुरुष-रूप का वर्णन भी पुहकर ने किया है। सर्वप्रथम उन्होंने बादशाह जहांगीर का रूप-वर्णन किया है।[2] रूप के अन्तर्गत ही यहां बादशाह के ऐश्वर्य का भी संकेत कर दिया गया है।[3] इसके बाद कामदेव का पुरुष-रूप में सौन्दर्य-वर्णन हुआ है।[4] विश्वमोहन मदन का यह स्वरूप-वर्णन शिखनख के रूप में हुआ है। यहां उसके गौर वर्ण, सिर पर रत्नजटित मुकुट, भाल पर मृगमद का तिलक, घुंघराले केश, श्रुति-कुंडल, कमलवत् नेत्र आदि का क्रमशः वर्णन किया गया है। इसके बाद सूरसेन का रूप-वर्णन दो स्थलों पर हुआ है।[5] ये सभी वर्णन प्रायः समान हैं फिर भी इनमें कवि की उच्च कोटि की काव्यप्रतिभा की उक्तियाँ वर्तमान हैं।

उद्दीपन-वर्णन :

सौन्दर्यगत उद्दीपन का वर्णन पुहकर ने अधिक किया है। यही रसरतन के कथानक का मूलाधार है। परिचय के पूर्व रूप-दर्शन मात्र से रसरतन के नायक-नायिका एक-दूसरे पर आसक्त हो गए हैं। सौन्दर्यगत उद्दीपन का सबसे बड़ा उदाहरण यही है। रम्भावती और सूरसेन दोनों क्रमशः काम और रति द्वारा स्वप्न में दिखाए गए सौन्दर्य से ही कामासक्त हुए। काम और रति के सहायक तत्त्वों का भी इस अवसर पर कवि ने वर्णन किया है।[6] सौन्दर्यगत उद्दीपन का अच्छा वर्णन संयोग-शृंगार के अन्तर्गत हुआ है। समागम के समय कल्पलता के सौन्दर्य को देखकर

---

१. रतनसेन, अप्सरा खंड, पद सं० ७६।
२. वही, आदिखंड, पद सं० ३२-३५।
३. वही, पद सं० ३५।
४. वही, स्वप्न खंड, पद सं० ३२-३५।
५. वही, विजयपाल खण्ड, पद सं० २१०-१७, स्वयंवर खण्ड, पद सं० १३५-४४।
६. वही, स्वप्न खण्ड, पद सं० २०-३५।

सूरसेन विचलित हो उठा। रसलोलुप भ्रमर की भाँति वह आत्मविभोर हो उठा। उनकी इस स्थिति का बहुत अच्छा वर्णन कवि ने किया है।[1] रम्भावती और सूरसेन की भी यही स्थिति रही। शिव मन्दिर में एक-दूसरे को देखकर दोनों विह्वल हो उठे। यदि शील-संकोच का अंकुश न रहा होता तो नायक-नायिका दोनों को मदन ने अनियन्त्रित कर दिया होता।[2] समाज के भार ने प्रेमियों को सीमा के अन्दर समेटे रखा।

दूती सखी आदि का वर्णन :

उद्दीपन के अन्तर्गत दूत-दूती, सखी आदि का भी रसरतन में वर्णन हुआ है। सर्वप्रथम काम और रति द्वारा दूत-दूती का कार्य किया गया है। काम ने रम्भावती को सूरसेन के रूप में और रति ने सूरसेन को रम्भावती के रूप में स्वप्न में दर्शन देकर कामासक्त बनाया। इन्हीं दोनों के प्रयास से नायक-नायिकाओं में प्रेम के बीजारोपण किए गए जिसके फलस्वरूप प्रेमियों के मिलन हुए।

'रसरतन' में चित्रकार बुद्धि विचित्र ने दूत का अच्छा कार्य किया है। उसने रम्भा का चित्र सूरसेन के पास पहुँचाया और सूरसेन का पत्र तथा अँगूठी रम्भा को दिया। इस कार्य में मन्त्री सुमति सागर तथा रम्भावती की सखियाँ भी उसकी मदद करती रहीं। सूरसेन के पिता के मन्त्री गुनगम्भीर ने भी उसकी सहायता की। उसने सूरसेन को उसके पिता से रम्भावती के स्वयंवर में जाने के लिए अनुमति प्राप्त कर ली।

'रसरतन' में कीर का दौत्य-कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय रहा है। कल्पलता के वियोग की सूचना चम्पावती में जाकर सूरसेन की नवल वधू रम्भावती को इसने दी है। रम्भावती ने सौत की ईर्ष्या से प्रेरित न होकर उससे प्रेम-भाव दिखाया और सूरसेन के साथ कल्पलता को सांत्वना देने के लिए चल दी। इस प्रकार कीर के प्रयास से सूरसेन और कल्पलता का पुनः मिलन हुआ।

सखियों का दौत्य-कार्य पुहकर ने सर्वाधिक दिखाया है। अप्सरा कल्पलता से उसकी स्वर्ग की सखियों ने सूरसेन को मिलाया। सोए हुए सूरसेन को पलंग के साथ उन्होंने उठाकर कल्पलता के पास पहुँचा दिया। इसके बाद नायक-नायिकाओं का गांधर्व रीति से विवाह कराकर दोनों का मिलन भी करा दिया। मिलन के लिए प्रेमियों को चन्दन, चोवा, कुंकुम, केसर, चम्पक, गुलाब आदि की सारी उद्दीपनकारी सामग्री जुटाकर सखियाँ वहाँ से दूर हट गईं। इस अवसर पर सखियों का बहुत बड़ा सहयोग कवि ने दिखाया है।[3]

---

१. रसरतन, अप्सरा खण्ड, पद सं० ९०-९१।

२. वही, चम्पावती खण्ड, पद सं ३४५-५०।

३. वही, अप्सरा खण्ड, पद सं० ८०-८७।

अगहन, पूस और माघ तीनों महीनों में कवि ने शीत लहरी का वर्णन किया है। माघ की शीत का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि मानो काम विरहिणी के अंगों को अपना हाथ सेंकने के लिए प्रज्ज्वलित किए हुए है।[1]

फागुन वर्णन में मदन की उद्दीपनकारी स्थिति चित्रित की गई है। मदन के आतंक के कारण युवतियों में लोक-लाज एवं गुरुजनों का भय जाता रहा। वे सजधज कर संयोग सुख प्राप्त करने के लिए उल्लसित हो उठीं परन्तु बेचारी कल्पलता का विहार विरह के ही साथ हो रहा है।[2] चैत्र मास के वर्णन में वसंत की मादकता दिखाई गई है। पुष्प, पराग, भ्रमर, नए पत्र, कोकिल, कीर आदि का उन्मादकारी स्वरूप यहाँ दिखाया गया है। वैशाख और ज्येष्ठ महीने के वर्णन में भीषण गरमी का वर्णन हुआ है। इस गरमी की प्रचण्डता से बचने के सारे उपाय नायिका को विपरीत होकर कष्ट दे रहे हैं। इसी प्रकार के वर्णनों द्वारा बारहमासा एवं षड्ऋतु का अन्त किया गया है। दोनों का एक साथ और समान रूप में कवि ने वर्णन किया है। यह वर्णन जान-बूझकर वियोग के अन्तर्गत बारहमासा वर्णन करने की परम्परा का पालन करने के लिए किया गया है।

बारहमासा के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी रसरतन में प्रकृति का उद्दीपनकारी वर्णन हुआ है।[3] इनमें ऐसे भी वर्णन हैं जिनसे भाव-प्राबल्य का स्थान आलंकारिक चमत्कार ने लिया है। पुहकर ने रात्रि का वर्णन इसी ढंग से किया है। जिसमें कवि की आलंकारिकता ने भाव-प्राबल्य को दबा दिया है।[4] कहीं-कहीं प्रकृति का स्वतन्त्र एवं सुन्दर वर्णन भी रसरतन में पाया जाता है। अप्सरा खण्ड में मानसर का कवि ने अत्यन्त भाव-प्रवण वर्णन किया है।[5] इसी प्रकार युद्ध खण्ड में जंगल का वर्णन स्वाभाविक हुआ है।[6] अनेक स्थलों पर ऐसे स्वाभाविक वर्णन हुए हैं जहाँ भाव प्रबलता अधिक है।

अनुभाव-संचारी भाव वर्णन :

सात्त्विक एवं संचारी भावों तथा हावों का वर्णन रसरतन में अनेक स्थलों पर अत्यन्त सरस ढंग से हुआ है। कहीं-कहीं क्रमशः कवि ने सात्त्विक भावों का वर्णन किया है जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

---

१. रसरतन, युद्ध खण्ड, पद सं० ६५।
२. वही, पद सं० ७०-७७।
३. वही, नि[illegible] खण्ड, पद सं० ८३-९२।
४. वही, पद सं० ९०।
५. वही, अप्सरा खण्ड, पद सं० १२।
६. वही, युद्ध खण्ड, पद सं० १८८-८९।

अंजनु बनायौ भाल, चंदन सौं आंजे दृग, सकल सिंगार विपरीत को करी है जू।
बीरी कान नहिं ग्यान न सयान कछू, बारुनी के पान ज्यों विधान विसरी है जू ॥[1]

विभ्रम हाव का सुन्दर उदाहरण कवि ने चम्पावती खण्ड में प्रस्तुत किया है जब कि चम्पावती की युवतियों की सूरसेन को देखते मात्र अद्भुत स्थिति हो जाती है। कोई पनघट से रीती गगरी ले आती है, कोई हड़बड़ाकर घड़ा फोड़ डालती है, कोई एक ही नेत्र में अंजन लगाकर भूल जाती है, कोई बात करते-करते अपने-आप में खो जाती है, कोई पति को भोजन कराते समय खाना जमीन पर डाल देती है, कोई दीपक जलाते समय उँगली जला डालती है, कोई पान के बीड़ा की जगह प्रिय को चुनौटी दे देती है। इस प्रकार सभी विपरीत आचरण करती हुई दिखाई देती हैं।[2] यह विभ्रम हाव का एक विस्तृत वर्णन है। इसी प्रकार अन्य हावों का भी वर्णन रसरतन में है। यहाँ सबका उदाहरण प्रस्तुत करके विस्तार करना ठीक नहीं होगा।

प्रशस्ति-वर्णन :

पुहकर का आश्रयदाता जहाँगीर था, इस बात के लिए कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है। समसामयिक सम्राट् के रूप में कवि ने जहाँगीर की प्रशस्ति गाई है।[3] उसके महल की पाँच रानियों के बारे में इन्होंने संकेत किया है।[4] उसको बत्तीस लक्षणों से युक्त बताया है।[5] उसकी सेना का कवि ने व्यापक वर्णन किया है—

बीस लाष तुष्षार सहस सत्तरि सुंडालह।
पंच लाष रथ सुरथ सज्जि बिबि कोटि पयद्दल।
तीन लाष निस्सान मेघ भादौं जिमि गज्जहिं।
अति असंष सेना समूह उडगन गन लज्जहिं।
चहुँ ओर अष्ट जोजन कटक संकि भान धसनस धरनि।
दिग्पाल हलहिं व्याकुल कमठ गगन रैनि मुंदी तरनि ॥[6]

इस सेना के परिणामस्वरूप देश में दुर्जन नहीं रह गए थे। जिस समय यह सेना प्रस्थान करती थी तो चारों तरफ खलबली मच जाती थी। आसमान काँप उठता, सूर्य छिप जाता, दिग्गज मूक होकर मुरझा पड़ते, ऊबड़खाबड़ भूमि समतल

---

१. रसरतन, स्वप्न खण्ड, पद सं० २०।
२. वही, चम्पावती खण्ड, पद सं० १३१-३४।
३. वही, आदि खण्ड, पद सं० २६-८३।
४. वही, पद ३१।
५. वही, पद ३५।
६. वही, पद ३८।

कैधौं कवि पुहकर कंत के रिझाइवे कौ,
सौतिनि सताइवे को कीनौं कछु टोना है।
चातुरी कौ भाउ किधौं दाउ प्रेम पासि कौ है,
डीठ हू की डीठि कैधों चिबुक डिठौना है ॥[1]

इसके अतिरिक्त उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के उदाहरण रस-रतन में सर्वत्र भरे पड़े हैं, कहीं-कहीं अतिशयोक्ति के लगातार वर्णन कई-कई पदों में किए गए हैं।[2] यहाँ तक कि दृष्टकूट पद्धति को भी कवि ने अपनाया है।[3] ऐसे स्थलों पर सरलता के लिए कवि ने बोधक अंकों को देकर पाठक का काम कुछ सरल कर दिया है। इन स्थलों पर पुहकर की अलंकरण-प्रवृत्ति स्पष्ट झलकती है। इस प्रकार रीतिकालीन अलंकारवादियों की परम्परा की झलक इनमें भी मिल जाती है। अलंकारों के अधिक उदाहरण स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिए जा सकते हैं। उपर्युक्त उदाहरण कवि की प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

छन्द :

'रसरतन' के सम्पादक ने इसमें प्रयुक्त कुल पैंतीस छन्दों को गिनाया है। इन छन्दों में रीतिकालीन प्रिय छन्द कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा आदि भी हैं। पुहकर के छन्दों को देखने से ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने अपभ्रंश-परम्परा में प्रयुक्त सभी छन्दों को प्रयोग में लाने का प्रयास किया है' इस विषय पर सम्पादक ने विशद विवेचन भूमिका में प्रस्तुत किया है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों से हटकर छन्दों की विभिन्नता दिखाई गई है। इसमें एकाध छन्द ऐसे भी हैं जिनका अन्य न तो नाम मिलता है न प्रयोग ही उपलब्ध है। कदाचित् वे लक्ष्य-ग्रंथों में प्रयुक्त या लक्षण-ग्रंथों में निर्दिष्ट छन्दों के नवीन उपभेद हैं जिनका हमें शास्त्रीय परिचय उपलब्ध नहीं है। इससे सूचित होता है कि पुहकर कवि छन्द के शास्त्रीय पक्ष और उसके प्रयोग-शिल्प—दोनों का ही कलाकार था।[4] छन्दों के प्रयोग में इनमें एक बात यह भी पाई जाती है कि गेय तथा लययुक्त छन्दों को अपनाने के लिए कवि सचेष्ट रहता था। कथा-प्रवाह में मनोनुकूल स्थलों पर कवि ने ऐसे ही छन्दों का प्रयोग किया है।

---

१. रसरतन, स्वयंवर खण्ड, पद सं० ५१।
२. वही, स्वप्न खण्ड, पद ८३-८५।
३. वही, युद्ध खण्ड २७३-७६, वैराग खण्ड, पद सं० २७१-७५।
४. रसरतन, सम्पा० डॉ० शिवप्रसादसिंह, भूमिका (पं० करुणापति त्रिपाठी), पृ० २८।

तृतीय अध्याय

भक्तिकालीन कृष्णकाव्य में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ

विद्यापति

विद्यापति शृंगार रस के कवि हैं। उनकी अन्य रचनाओं में तो अन्य रस मिल भी सकते हैं, परन्तु पदावली पर प्रायः एकछत्र साम्राज्य रसराज का ही है। उसके ललित स्वरूप की जो योजना पदावली में है उसके सामने रीतिकालीन शृंगार-विलास फीका जान पड़ता है। ऐहिक लीलाओं की स्वाभाविकता के कारण इनके वर्णन अनुभवजन्य जान पड़ते हैं। उन्होंने सृष्टि की महानतम विभूति मनुष्य को और जीवन की सर्वोत्तम निधि शारीरिक सुख को माना है। प्रेम का उन्मुक्त उपयोग उनके जीवन का लक्ष्य था, इसीलिए उनकी नायिका ईश्वर से वर माँगती है कि हे प्रभु, संसार में जन्म न दो। यदि जन्म दो तो युवती न बनाओ और यदि युवती बनाओ तो रसवती न बनाओ तथा यदि रसवती बनाओ तो कुलीन न बनाओ, क्योंकि इससे बढ़कर कष्ट संसार में दूसरा नहीं है।[1] यह नायिका कवि की आत्मा ही है। उनके गीतों में रीति कवियों की भाँति स्वयं की रसिक भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। इस विषय में वे रीति कवियों के अधिक निकट हैं। शिवसिंह की सुन्दरी 'लखिमादेई' से उनके व्यक्तिगत प्रेम की चर्चा भी की गई है।[2] इनके शृंगारी गीतों की चर्चा इनकी व्यक्तिगत रसिकता की ही घोषणा करती है।

संयोग शृंगार :

संयोग-शृंगार के वर्णन में विद्यापति रीति कवियों से भी अधिक भोग-परकता की ओर झुके हैं। प्रेमियों की विविध मानसिक दशाओं का अनोखा वर्णन इन्होंने किया है। सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को जिस बारीकी से इन्होंने व्यक्त किया है

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १५२।

२. डॉ० शिवप्रसादसिंह, विद्यापति, पृ० १६।

यह उन्हीं के सामर्थ्य की बात है। अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिए उन्होंने कई माध्यम निकाले हैं। सखियाँ, दूतियाँ आदि उनके इसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। वे नायिका की बातों को स्वयं कहती हैं। उनके माध्यम से गीतों में स्वाभाविकता का सरल प्रवाह अविरोध रह जाता है। इसमें नायिकाओं की सज्जाशीलता भी भंग नहीं होती है और सारी श्रृंगार-भावनाएँ व्यक्त भी हो जाती हैं। ऐसे ही अवसर पर एक सखी नायिका को प्रिय मिलन का उपदेश देती हुई काम-शास्त्र की शिक्षा देती है कि ऐसे अवसरों पर प्रिय के साथ किस प्रकार का मधुर व्यवहार करना चाहिए। अश्लीलता की सारी-की-सारी बातें सखी द्वारा इस अवसर पर कह दी जाती हैं।[1] प्रिय समागम के समय नायिका द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली कोई बात छूटने नहीं पाती है। यदि यही बातें नायिका स्वयं कहती तो शायद वर्णन अश्लील हो जाता और कवि के पद का माधुर्य भी इतना सरस न हो पाता।

प्रेमियों की लुका-छिपी, कलह-मान आदि का चित्रण करके विद्यापति ने अपने गीतों के श्रृंगार में चार चाँद लगा दिये हैं। सामाजिक मर्यादाओं के बन्धन तथा गुरुजनों के भय के कारण प्रेमियों को अनेक छलछद्म करने पड़ते हैं। उनके श्रृंगारिक षड्यन्त्र की मानसिक स्थिति बड़ी कौतूहलपूर्ण होती है। नाना प्रकार के गुप्त विधान इन्हें करने पड़ते हैं। अनेक बार असत्य बोलना पड़ता है। इस प्रकार की स्थितियों के सुन्दर नमूने विद्यापति पदावली में भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ—एक नायिका ने प्रिय समागम का उन्मुक्त आनन्द पनघट पर गुप्त रूप से लूटा। अपनी अस्तव्यस्त स्थिति को घर पर छिपाने के लिए उसने बहाना बनाया कि 'मेरी यह दशा एक अनहोनी घटना के कारण हो गई है। सरोवर से अवतंस हेतु कमल नाल तोड़ने के लिए ज्योंही मैं वहाँ पहुँची कि उसके कोष में स्थित भ्रमर ने क्रोध में आकर मेरे अधरों पर डंक मार दिया। वहाँ से घबड़ाकर भागने में तट के कटीले वृक्षों की कुचों पर खरोंच लग गई, पानी के भारी घड़े के भार के कारण मेरे केश अस्तव्यस्त हो गए हैं, सखियों से पिछड़ जाने के कारण स्वासें लम्बी चल रही हैं, दुष्टों ने पथ के विषय में जो लाञ्छन लगाया है, उसी क्रोध के कारण आवाज भर्राई हुई है।'[2] नायिका ने अपनी अस्तव्यस्त स्थिति का कारण दूसरा ही बताया। इससे उसने पनघट के समागम को छिपाने का प्रयास किया। इस प्रकार की घटनाएँ विद्यापति के गीतों में अधिक चित्रित की गई हैं। इनमें प्रेमियों के गुप्त रहस्य की मार्मिक बातें बताई गई हैं।

संयोग-श्रृंगार के अन्तर्गत आलिंगन, चुम्बन, नेत्रकटाक्ष आदि का वर्णन किया जाता है। विद्यापति ने इनका खूब उपयोग किया है। एक नायिका के अर्द्ध-

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ६४।

२. वही, गीत १३०।

कटाक्ष की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि 'मदन के विवेक को क्या कहें, दृष्टि ने अपराध किया और पीड़ा देता है प्राणों को। बेचारी नायिका ने अपने को बहुत बचाया। दाहिने नेत्र को दुष्टों के भय से रोका और बाएँ के आधे भाग को परिजनों के डर से। केवल वाम-नयन के अर्द्ध-कटाक्ष मात्र से इतना बड़ा झंझट मच गया। कृष्ण को सभी देखते हैं उनको कोई दण्ड नहीं मिलता है। केवल भोली-भाली युवती पर ही पंचबाण का प्रयोग किया जाता है। यह कैसा न्याय है।[1] इस प्रकार के उपालम्भयुक्त चित्रण विद्यापति के गीतों में अधिक मिलते हैं।

आलिंगन, चुम्बन आदि का वर्णन इनके अनेक गीतों में मिलता है। संयोग-श्रृंगार का स्वाभाविक चित्रण करने में इनका अनायास वर्णन हुआ है। आलिंगन करना, मौक्तमालिका का विदीर्ण हो जाना, वक्षःस्थल पर नखक्षत का लगना, अधरों का दन्तक्षत से घायल होना आदि का चित्रण एक साथ ही कई गीतों में हुआ है।[2] इनका वर्णन कवि ने कहीं अलंकारों के माध्यम से किया है और कहीं अत्यन्त सीधी-सादी भाषा में। इनमें कामशास्त्रीय विधानों की अनुपम योजना हुई है। ऐसे स्वाभाविक शास्त्रीय वर्णन अन्यत्र कम ही मिलेंगे।

विद्यापति का श्रृंगार-वर्णन काल्पनिक भावात्मकता तक ही सीमित नहीं है, बल्कि भोग की चरम सीमा तक पहुँचा हुआ है। संयोग-श्रृंगार की चरम परिणति सम्भोग में होती है। जब कोई कवि श्रृंगाररस की शास्त्रीय दृष्टि से रचना करेगा तो उसे सम्भोग का वर्णन करना ही पड़ेगा। विद्यापति के गीतों में शास्त्रीय दृष्टि निरन्तर बनी हुई है, इसी कारण विपरीत रति का भी इन्होंने चित्रण किया है। ऐसे स्थलों पर उन गीतों को अश्लील भी कहा जा सकता है। रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा संकलित 'मिलन' तथा 'विदग्ध विलास' के अन्तर्गत अधिकांश पद इसी कोटि के हैं। इनमें रसलोलुप व्यक्ति की भावनाएं श्रृंगारिक पद्धति से व्यक्त की गई हैं। विपरीत रति के चित्रण में भी कवि ने खूब रस लिया है।[3] ऐसे अवसरों पर अलंकारों के चमत्कार ने कवि की भावनाओं पर भीना आवरण डाल रखा है जिससे नग्न चित्रण होने नहीं पाया है। उदाहरणार्थ एक सखी राधा की विपरीत रति का वर्णन करते हुए कहती है कि बिजली के नीचे बादल और दोनों के मध्य गंगा की धार लहरा रही थी, तरल अंधकार ने चन्द्रमा और सूर्य दोनों को ग्रस लिया था, तारे अस्तव्यस्त होकर बिखर गए थे, आकाश खिसक गया था, पर्वत उलट गए थे, धरणी डगमगाने लगी थी, पवन चंचल हो गया था, भ्रमर शोर करने लगे थे, समुद्र उफान में आ गए थे, सचमुच एक अद्भुत घटना हो गई थी।[4] प्रलय का सारा

१. विद्यापति पदावली, गीत ४३।
२. वही, गीत ९६, १६७, १६९ आदि।
३. वही, गीत १७०, १७२।
४. वही, गीत १७२।

दृश्य उपस्थित हो गया था। यहाँ अंगों के उपमानो द्वारा समस्त लीला व्यक्त कर दी गई है। यहाँ बिजली राधा, मेघ श्याम, गंगधार माला, चंचल तिमिर केश, चन्द्रमुख, सूर्य सिन्दूर बिन्दु, तारे केश ग्रथित पुष्प, अम्बर वस्त्र, पर्वत कुच, धरनी नितम्ब, पवन निःश्वासें, भ्रमर किंकिणी, समुद्र प्रस्वेद का द्योतन करते हुए दिखाए गए हैं। इनके आवरण में चित्रण की नग्नता को बचाया गया है।

विद्यापति के गीतों में संयोग-शृंगार की नग्नावस्था के प्रायः सभी चित्र वर्तमान हैं। प्रेमियों की सारी मुद्राएँ तथा केलि-कलाएँ इनके द्वारा वर्णित हैं। आलिंगन, चुम्बन, वस्त्रमोचन आदि सभी काम-क्रीड़ाओं के विस्तृत वर्णन इनकी पदावली में मिलते हैं। कवि की काम-पिपासा इन पदों में अन्त तक बनी हुई दिखाई देती है। इसीलिए शृंगार की मनोरम झाँकियाँ वह उपस्थित करता गया है। रीतिकाव्य की शृंगारिकता उनके सम्मुख मात खाती हैं।

वियोग-वर्णन :

विद्यापति का वियोग-वर्णन भी संयोग की ही भाँति अत्यन्त व्यापक हुआ है। वियोग के पूर्वराग, मान, प्रवास तीनों श्रेणियों के चित्रण इनकी पदावली में पाए जाते हैं। इन तीनों वर्णनों में कवि ने उन्मुक्त हृदय से काम लिया है, इसलिए भावों की गहराई सर्वत्र व्याप्त है। वियोग की दारुण स्थिति यहाँ सर्वत्र दिखाई गई है। शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए भावनाओं को कहीं बन्धन में नहीं रखा गया है।

पूर्वराग :

विद्यापति का पूर्वराग प्रायः प्रत्यक्षदर्शन पर ही आधारित है। राधा और कृष्ण एक-दूसरे को देखते ही विरह-व्याकुल हो उठे हैं। मुग्धा राधा अपनी प्रबल उत्कण्ठा को दबा नहीं सकती थी। कृष्ण का दर्शन उन्होंने कर लिया। उसी क्षण से उन पर आपत्ति आ गई। नेत्रों से आँसू झरने लगे। हृदय निरन्तर धड़कने लगा। न जाने कृष्ण ने किस प्रकार उनका हृदय ही चुरा लिया। लाख प्रयत्न करने पर भी अब वह विस्मृत नहीं हो पाता है।[1] इस प्रकार की अनेक घटनाओं का चित्रण कवि ने अपनी पदावली में किया है। कहीं नायिका अपने आधे नेत्रों से ही कृष्ण को देखकर परेशान होती है, कहीं बाँसुरी की धुन सुनकर उसका हृदय व्यथित हो उठता है।[2] इनमें जीवन की घटनाएँ बड़ी नहीं होती हैं बल्कि मानसिक हलचल प्रबल हो जाया करती है। प्रेमियों के हृदय का मिलन ही कवि का उद्देश्य भी है।

राधा की ही भाँति कृष्ण के भी पूर्वराग का वर्णन कवि ने किया है। कृष्ण

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ४०।

२. वही, गीत ३७-३९।

भी राधा को अच्छी तरह देख भी नहीं पाते हैं तब तक काम का प्रहार उन पर हो जाता है। नायिका का प्रत्येक अंग कृष्ण के हृदय में स्थान बना लेता है। विद्युत-रेखा की भाँति नायिका की अनुपम शोभा उन्हें भूलती नहीं है।[1] ऐसे अवसरों पर कवि ने प्रायः किसी क्षणिक घटना को सामने लाकर प्रेमोत्पन्न कराया है। इनमें कवि की भावनाएँ ही प्रधान स्थान बना पाई हैं। जीवन की घटनाएँ कवि की भावनाओं को साधन-मात्र प्रस्तुत करती रही हैं।

मान-वर्णन :

मान के वर्णन में कवि ने लगभग अट्ठाईस पद गाये हैं। इन पदों में राधा और कृष्ण दोनों के मान का चित्रण हुआ है, परन्तु कृष्ण के मान-सम्बन्धी पद राधा के मान से कम हैं। राधा का मान-वर्णन कृष्ण के अपराधों को दिखाकर चित्रित किया गया है। कृष्ण की गुप्त लीला को भाँप कर राधा उनसे कहती है कि 'नायिका के नखों की खरोंच पर आपने कुंकुम लगा लिया, अधरों में लगे काजल को धो लिया, फिर भी आपके रात्रि के जागरण से नेत्र की अरुणिमा सारे छल-कपट को व्यक्त कर दे रही है। आपको मेरी ओर देखकर हँसी आ रही है और मुझे आपके कर्त्तव्य पर शर्म आ रही है।[2] नायिका की इस असमर्थ झुँझलाहट से जो भाव व्यक्त हो रहा है उसे हृदय ही समझ सकता है। इसी प्रकार अन्य गीतों में मान के वर्णन में कवि ने शास्त्रीय दृष्टि रखी है। रात्रि के जागरण से नेत्रों का अरुणिम होना, अंगरागों का क्षतविक्षत हो जाना आदि सर्वत्र दिखाया गया है। यह बात अवश्य है कि भावों की गहराई कहीं भी कम होने नहीं पाई है। यदि नायिका नायक को फटकार भी सुनाती है तो भी नायक की मर्यादा का ध्यान करके केवल यही कहती है कि आप वहीं जाइए जहाँ आपने सारी रात बिताई है। भारतीय मर्यादा-वाद सदैव उसके मस्तिष्क में बना हुआ है।

नायिका के मान पर नायक की सफाई उसकी मर्यादा को बनाए रखती है। विद्यापति का नायक शपथ खाकर कहता है कि यदि मेरा अपराध सिद्ध हो जाए तो मैं दण्ड भी सहर्ष स्वीकार करूँगा। मैं तुम्हारे कुच-रूपी स्वर्ण-घट तथा हार-रूपी सर्पिणी के ऊपर हाथ रखकर शपथ खाता हूँ। यदि तुम्हारे अतिरिक्त मैं किसी और को स्पर्श करूँगा तो तुम्हारी हार-रूपी सर्पिणी मुझे डस लेगी। यदि मेरा विश्वास न हो तो मुझे दण्ड दो। मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूँगा। अपने भुज-पाश में बाँधकर जंघों के तले दबाकर कुच-रूपी भारी पाषाण से मुझे दबा दो और अपने हृदय-रूपी कारागार में रात-दिन बन्द करके रखो। सबसे उचित दण्ड यही होगा।[3] यहाँ

---

१. विद्यापति पदावली, गीत २७-२८।
२. वही, गीत १३४।
३. वही, गीत १३७।

के भागी वे क्यों होते हैं।[1] इस प्रकार कुलकामिनी अपनी मर्यादा को बचाने का प्रयास करती है। यही बात प्रिय से उसका स्वयं का कहना उचित न होता।

प्रेमियों की करुण स्थिति का चित्रण इनकी पदावली में किया गया है। एक प्रवत्स्यत्प्रेयसी अपनी दारुण दशा का चित्रण करते हुए कहती है कि जिस क्षण प्रिय ने गमन किया उस क्षण मेरे नेत्रों में अश्रु भर आए थे, इसलिए उनकी ओर मैं भली प्रकार से देख भी न सकी। पूर्ण दर्शन भी न हो सका। वह प्रिय से प्रार्थना करती है कि आप विदेश न जाएँ। वहाँ जाने में विरहिणी का सर्वस्व चला जाएगा और मिलेगा कुछ भी नहीं। उसे हीरा-मोती और कोई भी मूल्यवान वस्तु नहीं चाहिए केवल उसका प्रिय चाहिए।[2] फिर भी प्रिय ने प्रेयसी की प्रार्थना स्वीकार न की। उसे सोते हुए छोड़कर चला गया। इसलिए अब वह सखियों से अपने लिए अग्नि-चिता सजाने की प्रार्थना कर रही है।[3] मनुष्यों से कोई मदद न मिलने पर वह प्रकृति की शरण लेती है। काकपक्षी से कहती है कि प्रिय के लौट आने का सन्देश तुम्हीं दो मैं तुम्हें कनक-कटोरे में खीर-खाँड का भोजन दूँगी।[4] उसकी दयनीय स्थिति ऐसी हो गई है कि आशा में बँधा प्राण निकलता नहीं है और आँखें फेनयुक्त हो गई हैं। रात-दिन प्रिय का ही स्मरण करने के कारण स्वप्न भी प्रिय का ही देखती है, स्वप्न में भी उसकी इच्छाएँ पूरी न हो पाती हैं।[5] प्रिय की अवधि के दिन गिनते-गिनते नायिका की कोमल अँगुलियों के नख घिस गए हैं और उसकी राह देखते-देखते आँखें पथरा कर अंधी हो गई हैं।[6] पाषाण हृदय प्रवासी प्रिय का सन्देश भी कोई लाने वाला नहीं है फिर भी नायिका उसे आशीर्वाद देती है और उसका अपराध न देखकर अपने भाग्य को ही कोसती है।[7] अब नायिका को अपनी शक्ति पर अविश्वास हो रहा है, इसलिए कहती है कि विरह वारिधि को पार कर पाने की अब मुझे आशा नहीं है। एक-एक क्षण गिनते-गिनते दिन, दिन गिनते-गिनते महीने, महीने गिनते-गिनते वर्ष और अब तो वर्षों को गिनते-गिनते सारा समय ही समाप्त हो गया, फिर कृष्ण से मिलने की आशा क्या रही ? यदि चन्द्रकिरणें ही कमलिनी को जलाने लगें तो माधव-मास क्या कर सकता है ? अर्थात् प्रिय स्वयं सुन्दरी को सताता है तो यौवन का क्या अपराध है ?[8] उसकी दयनीय दशा ऐसी हो गई है कि

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १८७।
२. वही, गीत १८८।
३. वही, गीत १८६।
४. वही, गीत १६०।
५. वही, गीत १६३।
६. वही, गीत १६४।
७. वही, गीत १६७।
८. वही, गीत २०४।

चिन्ता—

सखि हे बालभ जितब विदेसे।
हमे कुल कामिनि कहइते अनुचित तोहहुँ दे हुनि उपदेसे।
ई न विदेसक वेलि।[1]

स्मृति—

सुनु मनमोहन कि कहब तोए, मुगुधिनि रमती तुअ लागि रोए।
निसिदिन जागि जपए तुअ नाम, थर थर काँपि पड़ए सोइ ठाम॥[2]

गुणकथन—

ए सखि पेखल एक अपरूप। सुनइत मानव सपन सरूप॥
कमल जुगल पर चाँदक माला। तापर उपजल तरुन तमाला॥
तापर वेढलि बीजुरि-लता। कालिन्दी तट धिरें धिरें जाता॥
ए सखि रंगिनि कहल निसान। हेरइत पुनि मोर हरल गेआन॥[3]

इसी प्रकार सभी वियोग दशाओं का वर्णन विद्यापति के गीतों में हुआ है। उदाहरणार्थ उद्वेग,[4] प्रलाप,[5] उन्माद,[6] व्याधि,[7] जड़ता[8] के उदाहरण गीतों में देखे जा सकते हैं। विस्तार भय के कारण यहाँ सबको नहीं दिखाया जा रहा है। वियोग की दसवीं अवस्था मृत्यु होती है जो भारतीय साहित्य-शास्त्र में वर्जित मानी जाती है। इसीलिए विद्यापति ने उसका चित्रण नहीं किया है।

आलम्बन-वर्णन :

शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका का शास्त्रीय दृष्टि से विद्यापति ने वर्णन किया है। उदाहरणस्वरूप कुछ पद दिए जाते हैं।

नायक-वर्णन :

दक्षिण नायक—दक्षिण नायक अनेक पत्नियों पर समान अनुराग रखता है।

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १८७।
२. वही, गीत ५२।
३. वही, गीत ३६।
४. वही, गीत १६१, ४६।
५. वही, गीत ५६।
६. वही, गीत २११, ५८।
७. वही, गीत २१४।
८. वही, गीत २१६।

कृष्ण के ऐसे ही स्वरूप का वर्णन करती हुई नायिका कहती है--

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा बिहरत छाती।
गोपी सकल बिसरलन्हि रे जत छल अहिवाती ।।[१]

अनुकूल—कृष्ण के अनुकूलत्व का वर्णन करती हुई दूती राधा से कहती है—

सुन सुन ए सखि कहए न होए, राहि राहि कए तन मन खोए।
कहइत नाम पेम होअ मोर, पुलक कम्प तनु ढारहि नोर ।।[२]

धृष्ट—

कुंज-भवन सएं निकसलि रे, रोकल गिरिधारी।
एकहि नगर बसु माधव हे, जनि करु बट मारी ।।
छाँड़ु कान्ह मोर आँचर रे फाटत नव सारी।
अपजस होएत जगत भरि हे जनि करिअ उघारी ।।[३]

शठ—नायक की शठता का वर्णन करती हुई नायिका कृष्ण की दूती से कहती है--

चानन भरमे सेवल हमे सजनी, पूरत सब मन काम।
कंटक दरस परस भेल सजनी, सीमर भेल परिनाम ।।
एकहि नगर बसु माधव सजनी, परभामिनि बस भेल।
हमै धनि एहनि कलावति सजनी, गुन गौरव दुरि गेल ।।[४]

नायिका-भेद-वर्णन :

विद्यापति के गीतों में नायिका-भेद निरूपण भी स्पष्ट झलकता है। उदाहरण के लिए कुछ गीत इसी ढंग के उद्धृत किए जा रहे हैं— स्वकीया के तीनों भेद मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा के उदाहरण यहाँ देखिए—

मुग्धा—

कुच-जुग अंकुर उतपति भेल, चरन चपल-गति-लोचन लेल।
अब सब खन रह आँचर हाथ, लाजे सखीजन न पुछए बात ।।[५]

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १६० ।
२. वही, गीत ४६ ।
३. वही, गीत ५६ ।
४. वही, गीत १४६ ।
५. वही, गीत ७ ।

अज्ञात यौवना—

> सैसव जौवन दरसन भेल, दुहु दल-बलहि दन्द परि गेल।
> कबहुँ बाँधए कच कबहुँ बिथार, कबहुँ झाँपए अंग कबहुँ उघार ॥[१]

प्रथमावतीर्णमदनविकारा—

> खने-खने नयन कोन अनुसरई, खने-खने बसन-धूलि तनु भरई।
> खने-खने दसन-छटा छुट हास, खने खने अधर आगे गहु वास ॥
> चंउकि चलए खने खने चलु मन्द, मनमथ-पाठ पहिल अनुबन्ध।
> हिरदय-मुकुल हेरि हेरि थोर, खने आँचर देअ खने होए भोर ॥[२]

ज्ञातयौवना (नवोढा)—

> कत अनुनय अनुगत अनुरोधि, पति घर सखि पहुँचाओलि बोधि।
> विमुखि सुतलि धनि समुखि न होए, भागल दल बहुराबए कोए ॥

कवि की इस नायिका को रतिवामा भी कह सकते हैं।

विश्रब्ध नवोढा—

> ए हरि बलें यदि परसब मोहि तिरि-बध-पातक लागत तोहि।
> तोहें रस आगर नागर ढीठ, हमे न बुझिअ रस तीत की मीठ ॥[३]

मध्या—

> प्रथमहि गेलि धनि प्रीतम पास, हृदय अधिक भेल लाज तरास।
> ठाढ़ि भेलि धनि अंगो न डोले, हेम-मुरति सनि मुखहु न बोले ॥[४]

लज्जा और काम की सन्तुलित रस्सा-कशी में नायिका स्वर्णमूर्ति जैसी जड़ बन गई।

प्रौढा—

> निवि-बंधन हरि किए कर दूर, एहो पए तोहर मनोरथ पूर।
> हेरने कओन सुख नञ विचारि, बड़ तुहु ढीट बुझल बनमारि ॥
> कतहु न सुनिअ एहन परकार, करए बिलास दीप लए जार।
> परिजन सुनि-सुनि तेजब निसास, लहु लहु रमह सखीजन पास ॥[५]

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ५।
२. वही, गीत ७५।
३. वही, गीत ८१।
४. वही, गीत ७०।
५. वही, गीत ८३।

प्रौढा की विपरीत रति का भी विद्यापति ने खूब वर्णन किया है—

आकुल चिकुरें बेढ़ल मुख सोभ, राहु कएल ससि-मण्डल लोभ।
बड़ अपरुब दुहु चेतन ोलि, बिपरित रति कामिनि कर केलि ॥[1]

परकीया—ऊढ़ा नायिका—

कुल गुन गौरब सील-सोभाव, सबे लए चढ़लिहुँ तोहरि नाब।
तोहें पर नागर हमे पर नारि, काँप हृदय तुअ रीति बिचारि ॥[2]

नायिका अपने को 'पर नारि' स्वीकार करते हुए 'काँप हृदय तुअ रीति बिचारि' द्वारा अपनी संभोगेच्छा प्रकट कर रही है।

अनूढा नायिका—

कुंज-भबन सएं निकसलि रे रोकल गिरिधारी।
एकहि नगर बसु माधब हे जनि करु बटमारी।
संगक सखि अगुआइलि हे हम एकसरि नारी।
दामिनि आए तुलाएलि हे एक राति अंधारी ॥[3]

गुप्ता नायिका (भूतगुप्ता)—

कुसुम तोरए गेलिहुँ जहाँ, भमर अधर खण्डल तहाँ।
तें चलि अएलिहुँ जमुना तीर, पवन हरल हृदय चीर ॥
तें धसि मजूर जोड़ल झाँप, नरवर गाड़ल हृदय काँप ॥[4]

इस पद के अतिरिक्त विद्यापति पदावली में 'छलना' प्रसंग के सभी गीत भूतगुप्ता नायिका के उत्तम उदाहरण हैं।

विदग्धा (वचनविदग्धा)—

कर धरि करु मोहि पारे, देव भएं अपरुब हरि कन्हैआ।
सखि सबे तेजि चलि गेली, न जानु कओन पथ भेली कन्हैआ।
हमे न जाएब तुअ पासे, जाएब औघट घाटे कन्हैआ ॥[5]

वाक्चातुरी से कवि ने नायिका के प्रेमभरित लालसायुक्त हृदय को 'जाएब औघट घाटे' कहकर स्वाभाविक रूप में खोल कर रख दिया है। अवहित्थ संचारी

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १७० ।
२. वही, गीत ६० ।
३. वही, गीत ५६ ।
४. वही, गीत १२७ ।
५. वही, गीत ५८ ।

भाव का क्या ही सुन्दर चित्रण हुआ है।

क्रिया विदग्धा—

अलखित मोहि हेरि विहुंसलि थोर, जनि रयनी भेल चाँद इंजोर।
कुटिल कटाख लाट पड़ि गेल, मधुकर-डम्बर अम्बर भेल॥
आध नुकाएल आध उगास, कुच कुम्भे कहि गेलि अप्पन आस।
से अब अमिल निधि दए गेल संदेस, किछु नहि रखलन्हि रस परिसेस॥[1]

लक्षिता नायिका—

लक्षिता नायिका के विलास व्यापार को जानकर सखियाँ उससे कहती हैं—

सामरि है झामरि तोर देह, कहँ कहँ का सए लाओल नेह।
नीद भरल अछ लोचन तोर, कोमल वदन कमल रुचि चोर।
निरस धुसर करु अधर पंवार, कौन कुबुधि लुटु मदन-भंडार।
कोन कुमति कुच नख-खत देल, हा हा सम्भु मगन भए गेल॥[2]

प्रोषितपतिका नायिका

लोचन धाए फेधाएल, हरि नहि आएल रे।
सिव सिव जिवओ न जाए, आस अरुझाएल रे॥[3]

प्रवत्स्यत्पतिका नायिका—

माधव, तोहें जनु जाह विदेस,
हमरो रंग रभस लए जएवह लएवह कओन संदेस॥[4]

खण्डिता नायिका—

आध आध मुदित भेल दुहु लोचन, वचन बोलत आध आधे।
रति आलस सामर तनु झामर, हेरि पुरल मोर साधे।
माधव चल चल चलतन्हि ठाम,
जसुपद जावक हृदयक भूषन, अवहू जपह तसु नाम॥[5]

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ३०।
२. वही, गीत ६१।
३. वही, गीत १६३।
४. वही, गीत १८८।
५. वही, गीत १३५।

अभिसारिका (कृष्ण)—

रयनि काजर बम भीम भुअंगम, कुलिस पइए दुरबार।
गरज तरज मन, रोसे बरिस घन, संसअ पड़ु अभिसार ॥[१]

शुक्लाभिसारिका—

अवहु राजपथ पुरुजन जाग, चाँद किरन नभमंडल लाग।
सहए न पारए नव नव नेह, हरि हरि सुन्दरि पड़लि संदेह।
कामिनि कएल कतहु परकार, पुरुषक बेसें कमल अभिसार ॥[२]

दिवाभिसारिका—

तपनक ताप तपत भेलमहितल, तातल बालू दहन समान।
चढ़ल मनोरथ भामिनि चल पथ, ताप तपत नहि जान।
प्रेमक गति दुरबार,
नविन जौबन धनि चरन कमल जनि तइओ कएल अभिसार ॥[३]

दिवाभिसारिका का वर्णन सामाजिक मर्यादाओं के कारण अत्यन्त कठिन होता है, परन्तु विद्यापति ने इस वर्णन में मर्यादा के बाँधों को तोड़ दिया है। नायिका ग्रीष्म की तप्त भूमि पर अपने कमलवत पगों को आगे बढ़ाने में जरा भी संकोच नहीं करती है। उसके 'मदन महोदधि' में सचमुच कुल-मर्यादा विलीन हो गई है। इससे स्पष्ट है कि विद्यापति दिवाभिसरण के भी पक्षपाती थे। आगे के पद में भी दिवाभिसारिका का इन्होंने वर्णन किया है। आगे के पद में तो इन्होंने यहाँ तक कहा है कि दिवाभिसार किसी भी अभिसार से किसी भी प्रकार कम नहीं है—

भनइ विद्यापति कवि कंठहार, कोटिहुँ न घट दिवस अभिसार ॥[४]

विद्यापति के गीतों को नायक-नायिका भेद की दृष्टि से देखने पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने शास्त्रीय दृष्टि भी अवश्य रखी है। जब अभिसार का वर्णन कवि करने लगता है तो सभी प्रकार के अभिसारों का वर्णन कर जाता है, मुग्धाओं के वर्णन में सभी प्रकार की मुग्धाएँ आ गई हैं, वियोगिनी भी विरह-प्रसंग के सभी रूपों में सामने आती है। इन स्थलों को देखकर कवि के शास्त्रीय दृष्टिकोण में सन्देह नहीं किया जा सकता है। यथावसर कवि ने इनका

१. विद्यापति पदावली, गीत ११३।
२. वही, गीत ११६।
३. वही, गीत ११६।
४. वही, गीत १२२।

नाम भी लिया है।[1] कवि की इस दृष्टि की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि भाव-सबलता प्रत्येक गीत में बनी हुई हैं। भावों के प्रवाह में शास्त्रीय और सामाजिक बन्धन टूट गए हैं। भाव बन्धन में नहीं बंधे हैं बल्कि बन्धन को बहा ले गए हैं। यही विद्यापति की सबसे बड़ी विशेषता है।

रूप-वर्णन:

विद्यापति की दृष्टि नायिका के रूप-वर्णन पर विशेष रही है। इन्होंने रूप की मादकता को ललक-भरी दृष्टि से देखा है। शैशव और यौवन के मध्य की स्थिति इन्हें विशेष प्रिय थी। शैशव की एक-एक कदम की प्रगति इनके प्राणों को मोहती थी। इसीलिए यौवन वाटिका में प्रवेश करने वाली किशोरी की प्रत्येक भंगिमाएँ इनके काव्य में चित्रित पाई जाती हैं। बचपन की भोलीभाली बालक्रीड़ा में इन्हें कोई आकर्षण दिखाई नहीं दिया है। यदि उस ओर कवि की दृष्टि पड़ी भी है तो यौवनागमन से परिवर्तित वय:सन्धि की चंचलता को इन्होंने भरपूर देखा है जो उस युग के आश्रयदाताओं को विशेष प्रिय थी। दरबारी कवि होने के कारण सामन्तों की रुचि का इन्हें विशेष ध्यान था। इनके गीतों से ऐसा जान पड़ता है कि नारी के शैशव में इनकी आत्मा यौवन की झलक पाने की प्रतीक्षा कर रही है। इसीलिए यौवन के लक्षणों के दृष्टिगोचर होते ही वह भाव-विह्वल होकर उबल पड़ती रही है। ऐसा जान पड़ता है कि नायिका के अंगों में मदन की खुली हुई आँखों को देखने के लिए वह विकल है। इनके गीतों से यही भाव टपकता दिखाई देता है।[2]

यौवनागमन से स्वरूप में एक प्रकार का उन्मादकारी परिवर्तन होता है, जो नायिका के प्रत्येक क्रियाकलाप को प्रभावित करता है। इस परिवर्तित सौन्दर्य को विद्यापति ने बड़ी ही सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। यही कारण है कि इन्होंने क्षण-क्षण परिवर्तित स्वरूप को अत्यन्त सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। किशोरावस्था की चंचलता का तो मार्मिक चित्र इन्होंने खींचा है।[3] कुचों का क्रमिक विकास मर्मस्पर्शी उपमाओं के द्वारा दिखाया गया है। बेर, नारंगी, बड़ा नींबू तथा श्रीफल की उपमाएँ इसी दृष्टि से दी गई हैं।[4] कटि और नितम्बों ने एक-दूसरे के गुणों की अदला-बदली कर ली है। पगों की चंचलता नेत्रों को प्राप्त हो गई है।[5] इसी प्रकार यौवन के उन्मादकारी स्वरूप की आरम्भिक स्थिति का चित्रण कवि ने किया है। यह चित्रण

१. विद्यापति पदावली, गीत १७८।
२. वही, गीत ५।
३. वही, गीत ६।
४. वही, गीत ८।
५. वही, गीत ६।

वय:सन्धि से लेकर प्रौढ़ावस्था तक का किया गया है। यौवन-श्री का एक भी कण कवि से छूटने नहीं पाया है।

विद्यापति का हृदय वस्तुत: रूप-सौन्दर्य का अक्षय भण्डार रहा है। रूप के जितने भी मनोरम चित्र हो सकते हैं वे सब इनके हृदय में वर्तमान थे और उनका साकार रूप इनके गीतों में देखा जा सकता है। इनकी आत्मा नूतन सौन्दर्य की पुजारिणी थी। अपनी व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए वह अनुपम स्वरूप का सृजन किया करती थी। उसके लिए नए-नए अवसर खोजा करती थी। स्त्री साधारण स्थिति में तो सुन्दर होती ही है, वस्त्रों के अस्तव्यस्त होने पर उनके सँभालने में लज्जा का रंग लेकर विशेष सुन्दर हो जाती है। विद्यापति ने नायिका के ऐसे स्वरूप के चित्रण के लिए अवसर ढूँढ़ निकाला है। पवन-प्रेरित वस्त्रों के हटते ही कवि ने कहा कि मानो नव-जलधर के मध्य विद्युत की रेखा चमक रही है।[1] नायिका ने निरावरण होने पर हाथों से कुचों को ढकने का प्रयास किया जिस पर कवि ने कहा कि कुच-रूपी स्वर्ण शम्भु पर दो कमल तथा दस चन्द्रमा विराजमान हैं।[2] कमल दोनों हाथ तथा नख चन्द्रमा हैं।

नायिकाओं की घबराई मुद्रा पुरुषों को विशेष आकर्षक जान पड़ती है। यदि घबराहट लज्जा के कारण होती है तब तो उनके सौन्दर्य में चार चाँद लग जाते हैं। सद्य:स्नाता नायिका की कल्पना में यही तथ्य है। विद्यापति को भी यह स्वरूप विशेष प्रिय था। नायिका के बिखरे हुए बालों से झरती हुई जल-बूँदें, वस्त्रों के अंगों में सिमटने से उसकी अर्द्ध-नग्न स्थिति, लज्जा के आवरण से शरीर को ढकने का असफल प्रयास, विमल मुखमण्डल की स्वच्छ आभा, प्राय: प्रत्येक कवि को आकृष्ट करती रही है। विद्यापति की तो घोषणा है कि इस स्थिति में नायिका को देखने पर मुनियों के भी मानस में काम जाग्रत हो जाएगा।[3] वस्तुत: कवि का हृदय इस वर्णन से अघाया नहीं है इसीलिए अनेक जगह एक ही वस्तु के लिए उसी प्रसंग में अनेक उपमाएँ मुखरित करता गया है।[4] ये उपमाएँ परम्परित हैं, परन्तु उनका प्रयोग कवि ने अनोखे ढंग से किया है। नायिका के गोरे अंगों पर भीगे श्वेत वस्त्र हिमकण जैसे सुशोभित हो रहे हैं। बर्फ के पड़ने पर जैसे लता आहत हो जाती है वैसी ही स्थिति वस्त्रों के लिपट जाने पर नायिका की लज्जा के कारण हो गई है।[5] इस प्रकार के अनेक वर्णन पदावली में मिलेंगे।

विद्यापति के मानस में अभूतपूर्व रूप की कल्पना थी, उसे व्यक्त करने में

१. विद्यापति पदावली, गीत २६।
२. वही, गीत ३१।
३. वही, गीत २३।
४. वही, गीत २४, २५।
५. वही, गीत २५।

उनकी वाणी अपने को असफल समझती थी। इसीलिए उन्होंने अपरूप रूप इसे कहा है जो अभूतपूर्व रूपवती, मदन की साक्षात् मंगलमयी मूर्ति तथा तीनों लोकों को जीतने वाली थी।[1] कुछ स्थलों पर इन्होंने रूप का विश्वव्यापी प्रभाव भी दिखाया है,[2] परन्तु जायसी की पदावली की भाँति इनकी नायिका आराध्य देवी नहीं है। अपने इस रूप की व्यंजना उन्होंने कई गीतों में की है।[3] अत्युक्ति के कारण रूप-वर्णन कवि ने बढ़ा-चढ़ा कर किया है।

रूप के ऐसे सफल चित्रण का कारण यह जान पड़ता है कि कवि का जीवन-दर्शन और दृष्टि दोनों रूपमय थीं। राज्याश्रयों में रहने के कारण कवि की दृष्टि को अपने दर्शन के अनुकूल प्रवेश पाने के अच्छे अवसर भी मिलते रहे। सम्भवतः अपने शृंगारी गीतों को दरबारों में रानियों को पढ़कर ये सुनाया भी करते थे, इसीलिए इनकी सौन्दर्य-दृष्टि विकसित होती गई।

नखशिख-वर्णन :

रूप-वर्णन की साहित्यिक रूढ़ि नखशिख-वर्णन का भी विद्यापति ने खूब पालन किया है। इनका नखशिख-वर्णन पूरे शरीर के समष्टिगत सौन्दर्य को उद्भासित करने के लिए किया गया है। अकेले किसी अंग का महत्त्व स्थापित करने का एकांगी प्रयास इन्होंने नहीं किया है। अंगों का वर्णन प्रायः पूरे शरीर के साथ किया गया है। एक-एक अंग के लिए अलग-अलग पद नहीं गाए गए हैं। एक ही गीत में प्रायः सभी अंगों का क्रमशः वर्णन कर दिया गया है। इसी कारण सभी अंगों की समन्वित योजना पूरे शरीर की संश्लिष्ट शोभा-वृद्धि करने में पूर्ण सफल हुई है।

इनका नखशिख-वर्णन रूप का ढाँचा नहीं तैयार करता है, बल्कि सौन्दर्य का जीवित स्वरूप सामने लाता है। इसका कारण यह है कि इन्होंने भावावेग में गीत की धारा बहाई है। इसीलिए अनेक अंग जिन पर कवि की दृष्टि नहीं पड़ी है वर्णन में स्थान पाने से वंचित रह गए हैं। उदाहरण के लिए कंठ, चिबुक आदि का वर्णन प्रायः नहीं हो पाया है। मुख का वर्णन करने के बाद अधिकतर कुचों का वर्णन किया गया है। केवल एक गीत में कुचों पर लहराती मौक्तिमाला की शोभा का वर्णन करते हुए गले का भी कवि ने परम्परित ढंग से वर्णन किया है।[4] इससे यह स्पष्ट होता है कि जो अंग कवि को विशेष रुचिकर लगे हैं उन्हीं का वर्णन अपने गीतों में किया है।

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १५।
२. वही, गीत ३५।
३. वही, गीत १८, २६, २६।
४. वही, गीत १२।

युवावस्था की रमणीयता में श्रीवृद्धि करने वाले अंगों पर विद्यापति की दृष्टि अधिक पड़ी है। कटि के नीचे के भाग प्रायः छूट गये हैं और कुच, नेत्र, केशराशि आदि का वर्णन करते कवि अघाया नहीं है। युवावस्था में सर्वाधिक अंग नायिका के कुच होते हैं, इसलिए इनका वर्णन अनेक बार अनेक ढंग से कवि ने किया है। इसी प्रकार नेत्रों, केशों आदि का वर्णन भी अनेक प्रकार से किया गया है। जंघों आदि की उपमा कनक-कदलि से दी गई है, परन्तु ये वर्णन अत्यल्प तथा चलते हाथों किए गए हैं इससे स्पष्ट है कि जो अंग युवावस्था में जितने ही अधिक आकर्षक होते हैं विद्यापति ने उनका उतने ही मनोयोग के साथ वर्णन किया है।

विद्यापति के वर्णन शिखनख अधिक हैं क्योंकि इनके नायक-नायिका देवता-देवी नहीं हैं बल्कि साधारण मनुष्य हैं। इसी कारण उनके यौवन श्रीसम्पन्न अंगों का ही कवि ने विशेष वर्णन किया है। सम्पूर्ण रूप-वर्णन के गीतों में केवल एक गीत में कवि ने नखशिख का क्रम अपनाया है। उसमें भी कवि की आलंकारिकता का स्थान प्रथम है, भावनाओं का नहीं। ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने अपने गीतों में भावनाओं को प्रथम स्थान दिया है। शास्त्रीय दृष्टिकोण उसके सहायक होते रहे हैं। अवसर मिलने पर शास्त्रीय मार्ग का भी अवलम्ब लेने की चेष्टा की गई है। इसीलिए इनके वर्णनों में साहित्य का परम्परित क्रम स्वयं आ गया है।

नायिका के अतिरिक्त नायक का भी नखशिख-वर्णन इन्होंने किया है। नायिका के हृदय पर नायक के रूप का प्रभाव दिखाने के लिए ये वर्णन हुए हैं। राधा पर कृष्ण के स्वरूप का प्रभाव भी वैसा ही पड़ा है।[1] इस अवसर पर रूप-कातिशयोक्ति के माध्यम से नायक का पूरा नखशिख-वर्णन कर दिया गया है। इस वर्णन में वैसा भाव-तारल्य नहीं है जो नायिकाओं के नखशिख-वर्णन में वर्तमान है। इससे कहा जा सकता है कि विद्यापति की रुचि नायिकाओं के रूप-वर्णन में अधिक रमी है।

विद्यापति के नखशिख-वर्णन में उपमानों की नवीनता का अभाव है। रूढ़ उपमानों का ही प्रयोग इन्होंने सर्वत्र किया है। पूरे रूप-वर्णन को शास्त्रीय-ग्रन्थों की उपमाओं से ही सजाया गया है। प्राय. 'अलंकार शेखर' आदि ग्रन्थों से सारी उपमाएँ संकलित की गई हैं। यह बात अवश्य है कि लक्षण-ग्रन्थ लेकर ये कविता करने नहीं बैठे थे लेकिन उन ग्रन्थों का अध्ययन इन्होंने अवश्य किया होगा। उपमानों को प्रयोग करने का ढंग कवि का अपना निराला है। रूढ़ उपमानों के नए ढंग के प्रयोग से इन्होंने अपने गीतों में जान डाल दी है। इनके प्रयोग की अद्भुत शक्ति कवि में रही है। इसी का वह लाभ उठाता रहा है। विद्यापति के नखशिख-वर्णन में एक ही बात बार-बार रीति कवियों की भाँति दोहराई गई है फिर भी पाठक को कुरुचि उत्पन्न नहीं होती है, उसे नवीनता का ही आनन्द मिलता रहता

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ३६।

प्रहार नायक पर होने लगता है।[1] इस प्रकार के चित्रण पदावली में अधिक मिलेंगे।

नायिका के अतिरिक्त नायक के सौन्दर्य का भी उद्दीपनकारी चित्रण विद्यापति ने किया है। कृष्ण के रूप-सौन्दर्य को देखकर राधा पश्चात्ताप करती हुई कहती है कि कृष्ण को देखने की बहुत बड़ी अभिलाषा बनी हुई थी परन्तु उनके दर्शन मात्र से इतना बड़ा प्रमाद फैल गया। चोर मोहन ने न जाने क्या कर दिया। उनके दर्शन मात्र से ही मेरी सद्बुद्धि गायब हो गई।[2] मदन के अविवेक को क्या कहें, आधे नेत्रों से ही कृष्ण का सौन्दर्य-पान करने पर नायिका को इतना अधिक सताया जाना कहाँ तक न्यायसंगत है।[3] इस प्रकार के सौन्दर्यगत उद्दीपन के चित्रण पदावली में अनेक पड़े हुए हैं। इनका सौन्दर्य का इतना अधिक सफल चित्रण हुआ है कि वह अपने-आप उद्दीपन का कारण बन गया है।

चेष्टागत उद्दीपन का वर्णन विद्यापति ने सर्वाधिक किया है। इनके नायक-नायिका एक-दूसरे को आकृष्ट करने के लिए सचेष्ट रहे हैं। प्रतिदिन की दिनचर्या में ये ऐसे अवसर ढूँढ़ते फिरते थे जिससे अपने प्रेमी को आकृष्ट करने का अवसर मिले। इनकी चेष्टाएँ दो प्रकार की होती थीं। एक क्रियागत, दूसरी वार्तागत। क्रियागत चेष्टाओं में वे ऐसे कार्य-व्यापार करते दिखाई देते हैं जिनसे उनका प्रेमी आकृष्ट हो सके। वार्त्तागत चेष्टाओं में मधुर परिहास तथा भंगीभणिति का प्रयोग करते थे। इनके क्रियागत व्यापार-कार्यों की उद्दीपनकारी स्थिति सामने लाते हैं। उदाहरण स्वरूप स्नान करने के लिए आई हुई एक नायिका ने प्रिय को देख लिया। रूप-पान करने के लिए उसकी आत्मा ललचने लगी परन्तु गुरुजनों के साथ होने के कारण वह असमर्थ थी। उसने अपने व्यापार को सफल बनाने के लिए एक युक्ति निकाली। गुरुजनों से अलग होकर उसने अपनी मोती की माला तोड़ दी जिससे सभी दाने बिखर गए और कहा कि मेरा मोती का हार टूट गया। सभी लोग उसके मोतियों को चुनने में लग गए और नायिका को सौन्दर्य-पान करने का उन्मुक्त अवसर मिल गया।[4] इससे नायिका की वर्तमान गुप्त स्थिति भी प्रकट हो जाती है। चेष्टागत, उद्दीपन के लिए नेत्र-कटाक्षों का बहुत बड़ा महत्त्व होता है। विद्यापति ने इनका भी खूब उपयोग किया है।[5]

नायिका के अतिरिक्त नायक की भी चेष्टाओं का उद्दीपन रूप में चित्रण किया गया मिलता है। इस प्रसंग में नायक ने छेड़छाड़ भी की है। नायक की हठवादिता देखकर नायिका उसे वर्जित करती हुई रोकती है। वह कहती है कि एक तो

---

१. विद्यापति पदावली, गीत २३।
२. वही, गीत ४०।
३. वही, गीत ४३।
४. वही, गीत २६।
५. वही, गीत २८, ३०।

अँधेरी रात, दूसरे सखियों का साथ छूट रहा है, तुम मेरा आँचल छोड़ दो, मेरी नई साड़ी फट रही है। सारे संसार में तुम्हारी इस करनी से मेरा अपयश होगा अन्यथा मुझे जाने दो।[1]

उद्दीपन के रूप में प्रेमियों की सरस वार्त्ता के भी अच्छे उदाहरण विद्यापति पदावली में पाए जाते हैं। एक नायिका नायक से अपनी प्रेमाभिलाषा व्यक्त करती हुई कहती है कि कृष्ण, तुम मेरी बाँह पकड़कर मुझे नदी के उस पार करदो, मैं तुम्हें अपना अपूर्व हार पुरस्कार स्वरूप दूँगी। सभी सखियाँ न जाने कहाँ चली गईं मैं अकेली रह गई।[2] अपनी इस असमर्थता को प्रकट करती हुई नायिका मिलन-स्थल की ओर चलने का नायक को संकेत दे रही है। सखियों का साथ छूट जाने से सन्नाटेपन की ओर उसका संकेत है। आगे 'जाएब औघट घाटे' कहकर उसने अपनी पूरी उत्कंठा व्यक्त कर दी है।

उद्दीपन के रूप में हास-परिहास, सखा-सखी, दूत-दूती आदि का वर्णन करने की कवि-परम्परा रही है। विद्यापति ने इन सबका पालन किया है। इनके नायक ने नायिका से परिहास किया जिसके फलस्वरूप वह गद्गद होकर सखियों से अपनी बीती सुनने लगी।[3] सखियों का वर्णन प्रेमोपदेशक के रूप में विद्यापति ने किया है। वह नायिका को नायक के आकृष्ट करने का ढंग सिखाती हैं।[4] नायिका प्रिय से मिलने में जब भय और संकोच का अनुभव करती है तो वह उसे समझाती और धैर्य बँधाती है।[5] इस अवसर पर कामशास्त्र की सारी शिक्षा सखी द्वारा दिलाई गई है। प्रिय मिलन के समय नायिकाओं की व्यावहारिकता तथा प्रिय को आकृष्ट करने की सारी विधियाँ सखियों द्वारा नायिका को बताई गई हैं।[6] नायिका की ही भाँति नायक को भी काम-शास्त्र की शिक्षा सखियों द्वारा दी गई है।[7] इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति की सखियाँ केवल प्रेमभाव उद्दीप्त ही नहीं करती हैं बल्कि उसके भोग का ढंग भी सिखाती हैं मानो कामशास्त्र पढ़ाने का उन्होंने ठेका ले रखा है।

दूती वर्णन :

नायक, नायिका को एक स्थल पर एकत्र करके संयोग कराने वाले दूत और दूती होती हैं। उद्दीपन के क्षेत्र में इनका कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इनका

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ५९।
२. वही, गीत ५९।
३. वही, गीत ४४।
४. वही, गीत ६२।
५. वही, गीत ६७।
६. वही, गीत ६४।
७. वही, गीत ७०।

वर्णन विद्यापति ने खूब किया है। ये दूतियाँ नायक और नायिका दोनों ओर से भेजी गई हैं और दोनों ही दूतियाँ अत्यन्त वाक्पटु, कामकला-प्रवीण तथा अनुभवशील हैं। इनका विभाजन जातीय अथवा सामाजिक स्तर पर विद्यापति ने नहीं किया है, परन्तु इनका कार्य इस ढंग से हुआ है कि जान पड़ता है कि दौत्य-कार्य के प्रशिक्षण के बाद ये व्यवहार में लाई हैं।

कृष्ण की दूती राधा के सम्मुख जाकर पहले राधा की प्रशंसा करना आरम्भ करती है फिर कृष्ण की वियोगावस्था की दयनीय स्थिति का चित्रण करती है। इसके बाद संयोगावस्था की मधुर स्मृति दिलाते हुए कृष्ण का वियोग-वर्णन करके उसे आकृष्ट करने का प्रयास करती है[1] इसीलिए कृष्ण की कारुणिक स्थिति का चित्रण करती है। इस अवसर पर पुलक, कम्प, स्वेद, अश्रु आदि सात्त्विक भावों की योजना द्वारा दूती ने कृष्ण की कामातिशयता का भावसबलता के साथ स्वाभाविक चित्रण कर दिया है।[2] इससे कृष्ण की विकलता पर नायिका को सन्देह नहीं हो सकता है। इसके बाद कृष्ण की अनुकूलता का भी वह वर्णन कर जाती है जिससे नायक की प्रेमपरीक्षा भी हो जाती है।[3]

दूती नायक की सारी बातें स्पष्ट कर लेने के बाद नायिका को थोड़ा धमकाती भी है कि यौवन स्थायी नहीं होता है इसलिए उसका सुख भोग यथासम्भव कर लेना चाहिए अन्यथा पश्चात्ताप ही करना पड़ता है।[4] इस प्रकार थोड़ा भय उत्पन्न कर लेने के बाद पुनः नायिका को प्रेमपूर्वक शिक्षा देना आरम्भ करती है मानो किसी बच्चे को फटकारने के बाद राह पर लाने का कोई प्रयास कर रहा हो।[5] इसी प्रकार कृष्ण की दूती साम, दाम, दण्ड, भेद सभी का उपयोग बड़ी चैतन्यता के साथ करती है। इतनी वाक्पटुता से बात करने पर सरल हृदया नारी का प्रभाव में आ जाना स्वाभाविक है।

कृष्ण की भाँति राधा भी अपनी दूती कृष्ण के पास भेजती है। इससे यह स्पष्ट है कि विद्यापति ने जानबूझकर दोनों प्रकार की दूतियों का वर्णन किया है। राधा की दूती कृष्ण से छल-कपट की बातें नहीं करती है। वह केवल राधा की दयनीय स्थिति का चित्रण करती है। इसका कारण यह है कि कृष्ण को वाक्पटुता अथवा धमकी से बहकाया नहीं जा सकता है। इसीलिए वह नायिका की विरह-व्यथा को बताकर नायक के हृदय में सहानुभूति का भाव पैदा करती है। मुग्धावस्था की नायिका की ब्रि का वर्णन करते हुए वह कहती है कि आधी रात

नायिका की वेदना असह्य हो जाती है जिससे उसकी लज्जा का आवरण विदीर्ण होकर बिखर जाता है। नायिका उन्माद एवं मूर्छा की दशा को प्राप्त हो जाती है।[1] इसी प्रकार के कार्यों के लिए दूती अनेक बार नायक से नायिका के पास और नायिका से नायक के पास आती जाती है। आवागमन के द्वारा दूती दोनों में आकर्षण पैदा करती है।

इस प्रकार विद्यापति ने दूतियों का प्रयोग अत्यन्त चातुरी के साथ दिखलाया है। इनकी दूतियों ने चमत्कार नहीं दिखाया है बल्कि विह्वल हृदय का सहज रूप सामने लाया है। दौत्यकला की कोई चातुरी इनसे अछूती भी नहीं है और स्वाभाविकता का स्रोत भी बराबर बना हुआ है। इनकी दूतियों की यही विशेषता है।

प्रकृति-वर्णन :

उद्दीपन के रूप में प्रकृति-चित्रण विद्यापति ने भी खूब किया है। यह वर्णन संयोग और वियोग दोनों परिस्थितियों में दिखाया गया है। संयोगावस्था में इनकी नायिकाएँ वसंत आगमन के अवसर पर भावविभोर होकर नाचने लगती हैं। उनकी लज्जा समाप्त हो जाती है।[2] मुग्धाओं के मान कामासक्त होकर टूट जाते हैं। काम. उनके मन को भयंकर शत्रु के रूप में देखता है। दिन उन्हें अँधेरा तथा रात्रि उजाली जान पड़ती है, क्योंकि दिन में भौरे नायिका के साथ मँडराते रहते हैं और रात चाँदनी में उजाली हो जाती है। इस ऋतु में राधा और मधुसूदन खुलकर वनविहार करते दिखाए गए हैं।[3] दोनों में शृंगार-भाव प्रकृति के कारण इस मौसम में उद्दीप्त हो गया है।

वियोग की स्थिति में प्रकृति का उद्दीपक स्वरूप अत्यन्त कष्टकर होता है इसलिए कवियों ने प्रकृति का वर्णन प्रायः वियोग के ही अन्तर्गत किया है। विद्यापति ने भी पदावली में प्रकृति को प्रायः इसी रूप में ग्रहण किया है। इनकी नायिका जो संयोगावस्था में वसन्त आगमन पर हर्षोल्लास से आह्लादित हो उठती थी वियोगावस्था में कहती है कि मन्द पवन में चारों तरफ भौरों की गुँजार तथा कोयल की कुहुकार को सुनकर वियोगिनी कैसे जी सकती है।[4] उसे आश्चर्य इस बात का है कि अग्निव-र्पा करने वाले चन्द्रमा को लोग शीतल क्यों कहते हैं।[5] प्रकृति इन उद्दीपनकारी वस्तुओं से बचने का वह उपाय भी करती है। श्रवण तथा नेत्र से दिखाई पड़नेवाली

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ५४।
२. वही, गीत १७८।
३. वही, गीत १८२।
४. वही, गीत १६१।
५. वही, गीत १६२।

इन प्राकृतिक वस्तुओं से बचने के लिए वह आँख-कान बन्द कर लेती है।[1] इतना ही नहीं चन्द्रमा के भय से वह राहु का निर्माण अपने काजल से करती है और उसी की शरण लेकर शान्ति पाती है। मलयानिल को समाप्त करने के लिए अपने नखों से सर्प का निर्माण करती है ताकि सर्प पवन को पी जाय। कामदेव से सुरक्षा पाने के लिए स्वयं शिव का स्वरूप धारण करना चाहती है और शिव की उपासना अपने कमलवत हाथों से कुचरूपी श्रीफल लेकर करती है।[2] इन उपचारों द्वारा वह अपनी प्राण-रक्षा करना चाहती है। उसकी स्थिति प्रकृति ने अत्यन्त दयनीय बना दी है।

बारहमासा एवं ऋतु-वर्णन :

उद्दीपन रूप में ऋतु एवं बारहमासे के वर्णन की रूढ़ परम्परा का विद्यापति ने भी पालन किया है। वसन्त-ऋतु का वर्णन संयोग-शृंगार के अन्तर्गत और बारहमासे तथा चतुर्मासे का वर्णन वियोग के अन्तर्गत इन्होंने किया है। इनके वसन्त ऋतु के वर्णन में प्रकृति का आलम्बन स्वरूप भी पाया जाता है, परन्तु चतुर्मासे और बारहमासे के अन्तर्गत केवल उद्दीपन स्वरूप का ही चित्रण हुआ है।

वर्ष में जो महीने और ऋतुएँ जितनी ही अधिक उद्दीपनकारी होती हैं, विद्यापति ने उनका उतनी ही अधिक भाव-विह्वलता के साथ वर्णन किया है। उदाहरण के लिए वसन्त और पावस का वर्णन इन्होंने सर्वाधिक मनोयोग से किया है, क्योंकि ये दोनों मनोरम ऋतुएँ वियोगावस्था में अत्यन्त कष्टदायक होती हैं। बारहमासे के अतिरिक्त लगभग दो-दो तीन-तीन जगहों पर पावस और वसन्त के वर्णन किए गए हैं।

पावस ऋतु का वर्णन कवि को विशेष प्रिय जान पड़ता है। इसीलिए अलग से इसका वर्णन करने के लिए इन्होंने चतुर्मासे की कल्पना की है जिसमें आषाढ़ से आश्विन तक के महीनों का वर्णन किया गया है। इस वर्णन में कोई नवीनता नहीं है। केवल वर्षा के चारों महीनों की उद्दीपनकारी स्थिति का सामान्य वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में सबसे अधिक स्वाभाविक वर्णन भाद्रपद महीने का किया गया है। विरहिणी नायिका की करुण स्थिति को भादों की घन-घटा के बीच दिखाया गया है। 'छप-छप मूसलाधार वृष्टि' उसे वज्रपात की तरह लग रही है। मतवाले मयूर मग्न हैं, दादुर और डाहुक झंकार कर रहे हैं। उनका मतवालापन नायिका के हृदय को विदीर्ण कर दे रहा है। घने अन्धकार में बिजली रह-रह कर प्रकम्पित हो रही है। इस स्थिति में नायिका का जीवन असह्य हो रहा है।[3] इस वर्णन में स्वाभाविकता तो है परन्तु नवीनता का यहाँ अभाव है। इसी प्रकार का वर्णन वसन्त

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १९२।
२. वही, गीत २१२।
३. वही, गीत १९९।

ऋतु का भी हुआ है, जो बिल्कुल पिटी-पिटाई लकीर पर है।[1] नायिका इस अवसर पर केवल प्रिय का सान्निध्य चाहती है जिसके कारण अपनी मिलनोत्कण्ठा व्यक्त करती है। यही कवि का उद्देश्य भी रहा है।

बारहमासे का वर्णन विद्यापति ने आषाढ़ मास से किया है। इनके बारहमासे वर्णन में कोई नवीनता नहीं है। केवल साल के सभी महीनों को वियोग की स्थिति में स्मरण मात्र किया गया है। एक-एक महीने की प्राकृतिक विशेषताओं के साथ नायिका की दयनीय स्थिति दर्शायी गई है। आषाढ़ के कष्ट का वर्णन करते हुए नायिका कहती है कि आषाढ़ मास में नवीन मेघ घिर आए, मेरा प्रिय न जाने किस देश में है। यदि उसका स्थान ज्ञात हो जाता तो मैं योगिनी बन कर उसके पास पहुँच जाती। इसी प्रकार सावन की रिमझिम में अँधेरी रात की बिद्युत की कौंध नायिका के जीवन को सन्देह में डाल दे रही है। भाद्र मास की उद्दीपनकारी स्थिति में सुहागिन स्त्रियाँ प्रिय की गोद की शरण ले रही हैं, परन्तु बेचारी अभागिनी सन्ताप में पड़ी हुई है। आश्विन की स्वच्छ बेला विरहिणी को वैरी के समान लग रही है। कार्तिक मास में प्रिय की राह देख-देख कर नायिका निराश हो रही है। अगहन में निर्दय कंत प्रिया की सुध नहीं ले रहा है। पूस महीने के छोटे दिन और बड़ी रात में प्रिय की अनुपस्थिति ने सुन्दरी की सारी कान्ति मलिन कर दी। माघ मास का आनन्द पुण्यवती स्त्रियाँ ले रही हैं परन्तु कवि की नायिका के विधाता ही वाम हैं। फाल्गुन मास में मधुकर और कोकिल अधिक कष्ट दे रहे हैं। चैत्र मास में मधुकर मधुपान कर रहे हैं, परन्तु नायिका का प्रिय मूर्ख बना हुआ है। वैसाख मास में गर्मी अधिक पड़ रही है फिर भी नायक नायिका की छाती शीतल नहीं कर रहा है। ज्येष्ठ मास में सारी पृथ्वी श्वेत दिखाई दे रही है और नायिका प्रिय के साथ खेलना चाहती है।[2] इस प्रकार सभी महीनों का वर्णन करके परम्परा का मात्र पालन किया गया जान पड़ता है। कवि की व्यथित आत्मा का स्वरूप इन वर्णनों में अप्राप्त है। जान पड़ता है कि अपने वियोग-वर्णन में शास्त्रीय पूर्णता लाने के लिए कवि ने बारहमासा वर्णन किया है। इसी पद्धति पर चतुर्मास का भी वर्णन किया गया है जिसमें वर्षा के चारों महीने दिखाए गए हैं।

प्रकृति-वर्णन के और भी अनेक साधन विद्यापति ने अपनाये हैं जो अपने स्थान पर विशेष महत्त्व रखते हैं। अभिसार के वर्णन में नायिका की विकट परिस्थितियों को दिखाने के लिए प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है।[3] भोगविलास के वर्णनों में भी प्रकृति के अच्छे चित्र उपस्थित किए गए हैं।[4] कहीं-कहीं प्रकृति का ऐसा

---

१. विद्यापति पदावली, गीत २१५।
२. वही, गीत २०८।
३. वही, गीत ११२-११३।
४. वही, गीत ८७।

सफल चित्रण इन्होंने किया है कि वे चित्र आलंबन-रूप में चित्रित किए गए जान पड़ते हैं।[1] इन वर्णनों को देखकर कहा जा सकता है कि विद्यापति के हृदय में प्रकृति के प्रति अपार प्रेम था जो अवसर पाने पर सरल-प्रवाह के साथ गीतों में स्थान पा गया है।

अनुभाव-संचारीभाव वर्णन :

विद्यापति ने अपने गीतों को अत्यन्त स्वाभाविक बनाया है। शृंगाररस की स्वाभाविकता के लिए हाव-भाव का चित्रण करना आवश्यक होता है। इनके गीतों में इन्हीं का वर्णन प्रायः हुआ है। कोई भी पदावली का गीत ऐसा नहीं है जिसमें हावों-भावों की समुचित योजना न हुई हो। इन्हीं के वर्णन ने पदावली की सरसता में चार चाँद लगा दिये हैं। यद्यपि कवि ने जानबूझकर कवि शिक्षा के लिए इन पदों की रचना नहीं की है फिर भी इनके पदों में सरसता की दृष्टि से अच्छा समावेश हो पाया है। सभी अनुभावों, हावों तथा संचारी भावों का चित्रण उनमें पाया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ पद देखिये—

स्तम्भ—

प्रथमहि गेलि धनि प्रीतम पास। हृदय अधिक भेल लाजतरास
ठाढ़ि भेलि धनि अंगो न डोलै। हेम मुरति सनि मुखहु न बोलै ॥[2]

नायिका ने प्रिय के पास पहुँचने तक का साहस किया परन्तु वहाँ जाने पर वह हेममूर्ति बन गई। प्रथम मिलन के भय ने उसे स्तम्भित कर दिया।

स्वेद—

तनु पसेव पसाहनि भासल, पुलक तइसन जागु।
चूनि चूनि भए कांचुअ फाटलि बाहु बलआ भांगु ॥[3]

कम्प—

नहि नहि करिअ नयन ढरनोर। कांच कमल भमरा झिकझोर।
जइसे डगमग नलिनिक नीर। तइसे डगमड धनिक सरीर ॥[4]

इस पद में अश्रु, कम्प, प्रलय आदि सात्त्विक भावों का चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी इनका वर्णन किया गया है।[5] इनके अतिरिक्त हावों

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १७४।
२. वही, गीत ७७।
३. वही, गीत ३८।
४. वही, गीत ७४।
५. वही, गीत ५२, ७६ आदि।

का चित्रण देखिए—

विलास हाव—

मोड़ि बदन सखि रहव लजाए। कुटिल नयन देव मदन जगाए।।
झांपव कुच दरसाओव आध। खन-खन सुदृढ़ करव निविवांध।।[1]

विच्छित्ति हाव—

आध आंचर खस आध बदन हंस आधिहि नयन तरंग।
आध उरज हेरि आध आंचर तरे तब धरि दगधे अनंग।।[2]

विहृत हाव—

ठाढ़ि भेलि धनि अंगोन डोले, हेम मुरति सनि मुखहु न बोले।।
कर धए लेल पहु पास वहसाए, रहलि अचल धनि बदन झुकाए।।[3]

कुट्टमित हाव—

कर धरि वालमु वइसाओल कोर, एक पए कह धनि नहि नहि बोल।
कोर करइत मोड़ए सव अंग, प्रबोध न मानु जनि वाल भुजंग।
भनइ विद्यापति नागरि रामा, अन्तर दाहिन बाहर वामा।।[4]

किलकिंचित—

जइतहु लागु परम डरना। जइसे सखि कांप राहु डर ना।
जइतहि हार टुटिए गेल ना। भूखन बसन मलिन भेल ना।।
रोए रोए काजर दहाए देल ना। अदकहि सिंदुर मेटाए देल ना।।[5]

इसके अतिरिक्त और भी अनेक पदों में किलकिंचित हाव के उदाहरण देखे जा सकते हैं।[6] हावों के अतिरिक्त संचारी भावों का भी समुचित चित्रण इनकी पदावली में हुआ है। उनके भी कुछ उदाहरण देखिए—

स्वप्न—

सूति रहलिहुं हमे करि एक चीत। दैब-वियाके भेल विपरीत।

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ६२।
२. वही, गीत २८।
३. वही, गीत ७७।
४. वही, गीत ७८।
५. वही, गीत ७२।
६. वही, गीत, ७४, ७५, ७६ आदि।

न बोल सजनि, सुन सम्बाद । हंसए के ओ जनि कए परिवाद ।।
विषाद पड़ल मोर हृदयक मांझ । तुरित घोचओलहुं नीबिक काज ।
एक पुरुष पुनु आओल आगे । कोष अरुन आंखि अधरक दागे ।।[1]

इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी स्वप्न का चित्रण कवि ने किया है ।[2]

अवहित्थ—

कर धरि करु मोहि पारे देब मएं अपरुब हारे कन्हैया ।
सखि सबे तेजि चलि गेली, न जाने कओन पथ भेली कन्हैया ।।
हमे न जाएब तुअ पासे, जाएब औघट घाटे कन्हैया ।।[3]

व्रीड़ा—

तखनुक कहिनी कहल न जाए । लाजे सुमुखि धनि रहलि लजाए ।
कर न मिझाए दूर जर दीप । लाजे न मरए नारि कठजीब ।।[4]

व्रीड़ा के वर्णन और भी अनेक पदों में मिलते हैं ।[5] अन्य भावों के उदाहरण विस्तार भय के कारण यहाँ नहीं दिए जा रहे हैं । लगभग सभी हावों-भावों का चित्रण पदावली में हुआ है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति ने शृंगार के सभी अवयवों का समुचित उपयोग किया है । वस्तुतः इन्हीं के द्वारा शृंगार-वर्णन हुआ ही है ।

अलंकार-वर्णन :

विद्यापति में रीति-कवियों की भाँति अपने काव्य को अलंकृत करने की भी प्रवृत्ति पाई जाती है । इस प्रवृत्ति से आए अलंकार के भार से इनका काव्य बिगड़ने तो नहीं पाया है, परन्तु उसमें चमत्कार अवश्य आया है । यमक, अतिशयोक्ति आदि चमत्कारी अलंकारों तक ही ये सीमित नहीं रहे हैं, वल्कि बुद्धि-विलास के लिए दृष्टकूट पदों की भी इन्होंने रचना की है। इनके चमत्कार दिखाने वाले अलंकारों के चित्रण में भी मनोहर माधुर्य भरा दिखाई देता है । सारंग शब्द को लेकर अनेक कवियों ने यमक का चमत्कार दिखाया है, परन्तु इनके चमत्कार को देखिए—

सारंग नयन वयन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने ।
सारंग उपर उगल दस सारंग, केलि करथि मधु पाने ।।[6]

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १२६ ।
२. वही, गीत २२१ ।
३. वही, गीत ५८ ।
४. वही, गीत ८० ।
५. वही, गीत ७८ ।
६. वही, गीत १२ ।

यहाँ सारंग शब्द का अर्थ क्रमशः हरिण, कोयल, कामदेव, कमल तथा भ्रमर है। सारंग के इन अर्थों की व्यंजना ने रूपवर्णन में अप्रासंगिक बाधा न डालकर बल्कि चमत्कार के साथ भावाभिव्यंजना की है।

अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग इनकी पदावली में सर्वाधिक हुआ है। अधिकांश पदों में किसी न किसी रूप में अतिशयोक्ति आ ही गई है। इसमें भी रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग अधिक हुआ है। निम्नलिखित पद की रूपकातिशयोक्ति की छटा देखिए—

जुगल सैल-सिम हिमकर देखल, एक कमल दुइ जोति रे।
फुललि मधुरि फुल सिंदुर लोटाइलि पांति बइसलि गज-मोति रे।

+ + +

बिपरित कनक-कदलि तर सोभित, थल पंकज अपरूप रे।
तथहु मनोहर बाजन बाजए, जागए मनसिज भूप रे॥[1]

यत्नपूर्वक लाए जाने पर भी नखशिख-वर्णन में अलंकार ने शोभा वृद्धि ही की है बाधा नहीं पहुँचाई है। एक असम्बन्धातिशयोक्ति का उदाहरण देखिए—

कि आरे! नव जौवन अभिरामा।
जत देखल तत कहए न पारिअ, छओ अनुपम एक ठामा।
हरिन इन्दु अरबिन्द करिनि हेम, पिक बूझल अनुमानी।
नयन वदन परिमल गति तन रुचि, अओ अति सुललित बानी।[2]

छः उपमाओं को एक साथ वर्णित कर कवि ने यथासंख्य की भी योजना कर दी है। इसी प्रकार एक-एक पद में एक-एक, दो-दो आलंकारिक चमत्कार दिखाते हुए विद्यापति के गीत भावधारा को आगे बढ़ाते हैं।

अलंकरण की प्रवृत्ति ने बाध्य करके विद्यापति को दृष्टिकूट पद की रचना करने के लिए प्रेरित किया। इनके ये चमत्कारी पद साहित्य लहरी के पदों को भी मात करने वाले हैं। उदाहरण के लिए पदावलि में संकलित एक दृष्टिकूट देखिए—

माधव, आब बुझल तुअ साजे।
पांच दुगुन दस गुन सए गुन पुनि से देलह कोन काजे।
चालिस चारि काटि चौठाई से हम से पिया मोरा।
से निरखैत मुख पेखैत चौदिस करत जनम के ओरा।
साठिहु मह दह, बिन्दु बिबरजित के से सहत उपहासे।
हम अबला अब पहुक दोससं, दुइ बिन्दु करब गरासे।
नव बुन्दा दए नवए वाम कए से डर हमर पराने।
कपटी बालमु हेरि न हेरए, कारन के नहि जाने।

---

१. विद्यापति पदावली, गीत १३।
२. वही, गीत ११।

भनइ विद्यापति सुनु वर जौबति ताहि करथि के बाधा।
अपन जीव दए परक बुझाइअ, नाल कमल दुइ आधा ॥[1]

५×२×१०=१०० शत=शपथ (सौगुन पुनि सौ वार शपथ देने पर भी कोई कार्य न हुआ। ४० - ४=३६÷४=९=नव=नवीन, हे प्रिय तुमने यह भी नहीं समझा कि मैं नवीन हूँ। ६० - १०=५०—बिन्दु विवरजित=५=पंच=पंचों का उपहास कौन सहेगा। अब हमें तो दो बूँद विष खाना है। ००००००००० नव बूँद, नव वाम कर=नव शून्य के बाएं ९ का अंक रखकर=नव पद्म ? इस प्रकार के अनेक दृष्टकूटों की रचना बौद्धिक चमत्कार दिखाने के लिए विद्यापति ने की है।[2]

कुछ अलंकारों की अद्भुत योजनाएं दी जा रही हैं। उदाहरणार्थ देखिए—

ध्वन्यर्थ व्यंजना—

बाजति द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिमिया।
डम डम डंफ डिमिक डिम मादल, रुनु-झुनु मंजिर बोल।
किंकिनि रन रनि बलआ कनकनि निधुबन रास तुमुल उतरोल ॥[3]

सन्देह—

कनक लता अरविन्दा, दमना माझ उगल जनि चन्दा।
केओ कह सैवल झपला, केओ कह भमए भमरा।
केओ बोल नहिं नहिं चरए चकोरा ॥[4]

भ्रम—

हार मनोहर बेकत भेल, उजर उरग संसअ लेल।
तें धसि मजूर जोड़ल झाँप, नखर गाड़ल हृदय काँप ॥[5]

व्यतिरेक—

तोहर बदन सम चान हो अथि नहि, जइओ जतन विहि देला।
कए बेरि काटि बनाओल नव कए तइओ तुलित नहिं भेला ॥[6]

---

१. विद्यापति पदावली, गीत २६० ।
२. वही, गीत २५९-६२ ।
३. वही, गीत १८४ ।
४. वही, गीत १९ ।
५. वही, गीत १२७ ।
६. वही, गीत २२० ।

परिकर—

रति सुविसारद तुहु राखु मान, वाढ़िले जौवन तोहे देव दान।

काव्यलिंग—

पुनु फिरि सोइ नयने जदि हेरवि, पाग्रोव चेतन नाह।
भुजंगिनि डंसि पुनहि जदि डंसए तवहि समय विष दाह॥[1]

इसी प्रकार अनेक अलंकारों के उदाहरण विद्यापति पदावली से प्रस्तुत किए जा सकते हैं जो विस्तार भय के कारण यहाँ नहीं दिए जा रहे हैं।

रीति-कवि अपने काव्य में माधुर्य लाने के लिए उसे गेय वनाने का प्रयास करते थे। गेयता के लिए शब्द-मैत्री, वर्ण-मैत्री तथा सानुनासिकता की विशेष आवश्यकता होती है। विद्यापति की पदावली अपने इन्हीं गुणों के कारण कण्ठहार वनी हुई है। सचमुच अपने गीतों को समय-समय पर गाने के लिए ही विद्यापति ने वनाया था। इसमें उन्हें ऐसी सफलता मिली है कि उनके गीतों के माधुर्य ने आज भी मिथिला और भोजपुर प्रदेशों की महिलाओं को सर्वाधिक आकर्षित किया है। वैष्णव मन्दिरों में उनके गीतों के गाए जाने का भी कारण उनकी गेयता ही है, भक्तिभावना नहीं। रीति-कवियों की भाँति अपने पदों को गाकर दंगल जीतने का विद्यापति का उद्देश्य नहीं रहा परन्तु यदि कोई इनको कवि-सभाओं में गाए तो निःसन्देह वह मैदान मार ले जाएगा।

अपने पदों की गेयता के लिए विद्यापति को आयास भी करना पड़ा होगा। गीतों में संगीत की शास्त्रीयता लाने के लिए शास्त्रीय क्रम अपनाना पड़ा होगा। इसी कारण इनकी पदावली के अधिकांश गीत संगीत के शास्त्रीय नियम से आवद्ध हैं। कुछ गीतों में तो स्पष्ट वाद्य-स्वरों को वैठा कर विद्यापति ने अपने शास्त्रीय ज्ञान का स्पष्ट परिचय दे दिया है।

उदाहरण के लिए यह पद देखिए—

वाजति द्रिगि द्रिगि धौद्रिम द्रिगिया।
नटति कलावति माति स्याम संग, कर करताल प्रवन्धक धुनिया।
डम डम डंफ डिमिक डिम मादल रुनु-झुनु मंजिर वोल।
किंकिनि रन रनि वलआ कन कनि निधुवन रास तुमुल उतरोल।
वीन खाव मुरज स्वर मंडल, सा रि ग म प ध नि सा वहुविधि भाव।
घटिता घटिता धुनि मृदंग गरजनि चंचल स्वर मंडल कर राव।
सम भर गलित लुलित कवरी युत मालति माल वियारल मोति।
समय वसंत रास-रस वर्णन, विद्यापति मति छोभित होति॥[2]

---

१. विद्यापति पदावली, गीत ४६।

२. वही, गीत १८४।

इस पद की ध्वनियाँ वसन्तोत्सव का जीता-जागता चित्र सामने उपस्थित कर दे रही हैं। पदों की शास्त्रीय संगीतात्मकता देखकर डा० सुभद्र झा ने अपने विद्यापति गीत संग्रह में रागवद्ध पदों का ही संकलन किया है। इससे स्पष्ट है कि विद्यापति संगीतशास्त्र के ज्ञाता थे और उनके पदों की संगीतात्मकता रीति कवियों की मधुरता को लज्जित कर देने वाली है।

विद्यापति के संगीत की सबसे वड़ी विशेषता है लोक-पक्ष का मर्मस्पर्शी चित्रण। ऐसे अवसर पर लोकगीत के समान इनके पदों में हृदय-ग्राहिता आ गई है।[1]

ऐसे मधुर गीतों को इतनी लयात्मकता प्रदान करने की शक्ति विद्यापति में ही हो सकती थी। उनके इसी गुण को देखकर इन्हें अभिनव जयदेव की उपाधि उनके समकालीन व्यक्तियों ने दी थी।

प्रशस्ति-वर्णन :

रीति-काव्य की भाँति विद्यापति का काव्य राज्याश्रय में पनपा था। इनकी प्रायः सभी रचनाएँ राज्याश्रय में राजाओं की आज्ञा से लिखी गई हैं। उनकी सूची इस प्रकार है[2]—

१—भूपरिक्रमा—महाराज देवसिंह की आज्ञा से लिखा था।

२—पुरुष परीक्षा—महाराज शिवसिंह की आज्ञा से लिखा गया रीति-ग्रन्थ है।

३—लिखनावली—राज बनौली के रहने वाले राजा पुरादित्य की आज्ञा से सन् १४१८ ई० में लिखा गया चिट्ठी-पत्री लिखने का नियम बताने वाला ग्रन्थ है।

४—शैवसर्वस्वसार—महाराज पद्मसिंह की पत्नी विश्वास देवी की आज्ञा से लिखा गया। इसमें शिव-पूजन-विधि वर्णित है।

५—शैवसर्वस्वसार—प्रमाणभूत पुराण संग्रह—यह ग्रन्थ 'शैवसर्वस्वसार' का समकालीन है।

६—गंगावाक्यावली—गंगा-पूजन के विषय में विश्वास देवी की आज्ञा से लिखा गया ग्रन्थ है।

७—विभागसार—महाराज नरसिंह देव के समय में लिखा गया।

८—दानवाक्यावली—महाराज नरसिंह देव की पत्नी धीरमति देवी की आज्ञा से लिखा गया दान-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

---

१. विद्यापति पदावली, गीत २२१-२२।

२. डा० उमेश मिश्र—विद्यापति ठाकुर, पृ० ६०।

९—दुर्गाभक्ति तरंगिणी—महाराज भैरवसिंह की आज्ञा से लिखा गया।

१०—गयापत्तलक - पता नहीं किसकी आज्ञा से लिखा गया। इसमें गया श्राद्ध सम्बन्धी बातों का विवरण है।

११ —कीर्तिलता —कीर्तिसिंह के लिए लिखा गया ग्रन्थ है। उन्हीं की प्रशंसा भी इसमें खूब की गई है।

१२—कीर्तिपताका—महाराज शिवसिंह के समय में उन्हीं की प्रशस्ति के लिए लिखा गया ग्रन्थ है।

१३ —गोरक्ष विजय — नाम का चार अंकों का नाटक।	आदेश देने वाला राजा अज्ञात है।
१४ —द्वैत निर्णय।	
१५ – गंगा भवतुदय।	
१६— तन्त्रार्णव।	
१७—वर्षकृत्य।	

१८ —पदावली—समय-समय पर गाए गए पदों का संग्रह है। इसमें अधिकांश पद अपने मित्र राजा शिवसिंह तथा उनकी रानी लखिमा ठकुरानी को गाकर सुनाने के लिए लिखे गए हैं। राज-दम्पती महाकवि के पदों को सुन-सुनकर आनन्द-विभोर हो जाया करते थे। इसलिए उनकी इस श्रृंगार-भावना के अनुकूल पदों को बनाने में कवि को प्रोत्साहन भी मिलता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति की रचनाएँ पूर्णतया रीतिकवियों की भाँति राजाओं की अनुकम्पा से बन पाई हैं। इनमें पदावली को छोड़कर अन्य सभी रचनाएँ राजपरिवारों के आदेशानुसार निर्मित हुई हैं। पदावली भी अधिकांश रूप में आश्रयदाता की अभिरुचि का ध्यान रखकर आमोद-प्रमोद के लिए गाई गई है। निःसन्देह इन पदों की रचना करते समय कवि का ध्यान पुरस्कार प्राप्ति की ओर भी रहा होगा। विद्यापति और रीति कवियों में अन्तर केवल यही है कि विद्यापति राजसखा थे, चारण अथवा भाट नहीं। रीति-कवियों में अधिकांश चारण अथवा भाट कोटि के थे। राजसखा का पद पाने का श्रेय इनमें बहुत कम कवियों को प्राप्त हुआ है। विद्यापति ने अपने पदों में लगभग आठ-नौ राजा-रानियों को सम्बोधित किया है, जो प्रायः इनके मित्र ही थे।

रीति-कवियों को मुक्तक छन्द अधिक प्रिय है। उन्हीं की भाँति विद्यापति को भी मुक्तक ही अधिक प्रिय है। मुक्तकों में भी गेयता की दृष्टि से गीत को इन्होंने चुना जिससे कि सामयिक रस अधिक आसानी से उछाला जा सके। रीति-कवियों ने माधुर्य को दृष्टिपथ में रखकर ब्रज भाषा को अपनाया। विद्यापति ने भी उन्हीं की भाँति माधुर्य की ही दृष्टि से मैथिली को अपने गीतों में गुनगुनाया। कहने

की आवश्यकता नहीं है कि ये दोनों भाषाएँ स्थानीय जन-बोली थीं। इसलिए इनमें भावाभिव्यंजना की शक्ति अधिक थी।

इतने विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विद्यापति पूर्णतः रीति-कवि थे। यदि उनका समय सत्रहवीं शताब्दी के बाद हुआ होता तो तर्क द्वारा उन्हें रीति-कवि सिद्ध करने की आवश्यकता ही न हुई होती। वे स्वयं रीति-सिद्ध कवि मान लिए गए होते।

कविवर सूरदास

सूरदास के नाम से प्रचलित प्रायः तीन रचनाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं। उनके नाम हैं 'सूरसागर', 'सूरसारावली' तथा 'साहित्य लहरी'। 'सूरसागर' को प्रायः सभी विद्वानों ने सूरकृत मानने में कोई सन्देह प्रकट नहीं किया है परन्तु 'सूरसारावली' और 'साहित्य-लहरी' को सूरकृत मानने में प्रायः मतभेद है। डॉ० दीनदयालु गुप्त ने इन्हें सूरकृत माना है।[1] डॉ० मोहनलाल गौतम ने इनके कुछ पदों को प्रामाणिक मानकर काम चलाया है।[2] डॉ० हरवंशलाल शर्मा ने सूरसारावली को मुंशीराम शर्मा 'सोम' के स्वर में स्वर मिलाते हुए पूर्णतया सूर की प्रामाणिक रचना माना है तथा 'साहित्य-लहरी' को भी सूरकृत मानते हुए उसमें उन्होंने प्रक्षेपों का अधिक योग माना है।[3] डॉ० व्रजेश्वर वर्मा ने इन्हें सूरकृत मानने में असमर्थता प्रकट की है। उनके कथनानुसार 'सारावली' किसी प्रकार से 'सूरसागर' के पदों की सूचनिका नहीं है। यह कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पड़ती। इसी प्रकार साहित्य लहरी जिसमें सूर की भक्ति-भावना का सर्वथा अभाव है, जिसकी भाषा अत्यन्त असमर्थ, शिथिल और असाहित्यिक है, जिसकी शैली व्यक्तित्वहीन और अस्त-व्यस्त है। जिसमें भक्त कवि सूरदास की प्रकृति के विरुद्ध रीतिकालीन कवियों जैसा असफल और फूहड़ साहित्यिक प्रयत्न है, अष्टछाप के सूरदास की रचना नहीं हो सकती।[4] पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी अत्यन्त सबल तर्कों से यह सिद्ध किया है कि 'साहित्यलहरी' सूरदासकृत रचना नहीं है। सूरसारावली को भी अष्टछाप के सूर की रचना मानने में उन्होंने सन्देह ही प्रकट किया है, कोई सहमति इस विषय में नहीं दी है।[5]

---

१. डॉ० दीनदयालु गुप्त, अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृ० २६०-६४।
२. डॉ० मोहनलाल गौतम, सूर की काव्य कला, पृ० २३।
३. डॉ० हरवंशलाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य, पृ० ६२-६६।
४. डॉ० व्रजेश्वर वर्मा, सूरदास, पृ० ५०।
५. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिन्दी साहित्य का अतीत, प्रथम भाग, पृ० १६३-६६।

यदि 'साहित्यलहरी' और 'सूरसारावली' अष्टछाप के सूरदास की कृतियाँ मानी जायँ तो सूर को शुद्ध रीति कवि मानने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। सारावली की वस्तु के हल्केपन को देखकर डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा ने इसे एक भड़ौआ गाने वाले व्रज-वासी बालक की रचना मानी है।[1] साहित्यलहरी तो अलंकार और नायिकाभेद का ग्रंथ ही है। जैसा बौद्धिक चमत्कार इनमें दिखाया गया है वह रीति कवियों का विशेष गुण था। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने इसे रीतिकाल (सन् १९१७) की रचना माना भी है।[2] अलंकार की योजना और साहित्यिक असफलतापूर्ण प्रयास को देखने पर मिश्रजी की बात सही जान पड़ती है। यदि उपर्युक्त दोनों रचनाएं सूरकृत न मानी जायें तो भी 'सूरसागर' में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ वर्तमान हैं। सूर ने ही रीतिकालीन साहित्य को आलम्बन प्रदान किया, शैली बताई तथा मार्ग प्रशस्त किया। इनके सूरसागर में ही रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ पूर्णरूपेण वर्तमान है।

संयोग शृंगार :

शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का अत्यन्त मार्मिक शास्त्रीय चित्रण सूरसागर में है। सूरसागर की शृंगारी घटनाएँ एवं कल्पनाएँ रीति कवियों ने बार-बार दुहराई हैं। यदि भक्ति के आवरण को हटाकर देखा जाय तो सूरसागर और रीतिकाव्य में कोई अन्तर नहीं है। शृंगार का ऐसा ही व्यापक वर्णन सूर-काव्य में पाया जाता है। प्रेमियों की मधुर लीलाओं के रंगीन चित्र यहाँ दर्शनीय हैं। शृंगार रस का कोई शास्त्रीय कोना इनसे छूटने नहीं पाया है।

संयोग-शृंगार के अन्तर्गत प्रेमियों की लुका-छिपी, आँख-मिचौनी आदि क्रीड़ाओं का वर्णन करने की शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह सूरसागर में पूर्णरूपेण किया गया है। दानलीला, पनघट लीला, चीरहरण आदि प्रसंगों में प्रेमियों की छेड़छाड़ का जैसा स्वाभाविक वर्णन सूर ने किया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कृष्ण की सरस लीलाएँ यहाँ दर्शनीय हैं। छेड़खानी करने के लिए कृष्ण पनघट पर जल भरने वाली गोपियों की प्रतीक्षा करते रहते हैं। अवसर पाने पर धोखे से छिप कर उनकी लट पकड़ लेते हैं। इससे वे चकपका उठती हैं।[3] एक ग्वालिन झुँझलाकर कहती है कि क्या आपको कुचों तथा लटों को स्पर्श करते संकोच नहीं होता। अन्य औरतें आपकी इस घटना को देखकर क्या कहेंगी।[4] नायिकाएँ झुँझलाकर भी कृष्ण की इन लीलाओं से आत्मविभोर हो जाती हैं। कृष्ण उनका मन हर लेते हैं। उनके कार्य-व्यापार भूलते ही नहीं हैं। दोनों एक-दूसरे के प्रति आसक्त हो जाते हैं। इसीलिए कृष्ण के

---

१. डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा, सूरदास, पृ० १०५।
२. हिन्दी साहित्य का अतीत, प्रथम भाग, पृ० १९७।
३. सूरसागर, पद संख्या २०६६।
४. वही, प० सं० २०६७।

गया है। इसी प्रकार नायक के भी आलिंगन का वर्णन कवि ने अनेक पदों में किया है। इन अवसरों पर हावों का अच्छा चित्रण हुआ है।[1] कहीं-कहीं राधा-कृष्ण के परस्पर आलिंगित स्वरूप का अत्यन्त रमणीय वर्णन सूर ने किया है। उनका यह आलिंगित रूप गंगा-यमुना के संगम जैसा सुशोभित हो रहा है।[2] इस प्रकार के आलिंगनों का वर्णन सूरसागर के अनेक पदों में किया गया है।

कहीं-कहीं आलिंगन, चुम्बन, दन्तक्षत, नखक्षत आदि का एक ही पद में अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन सूरदास ने किया है। ऐसे स्थलों पर वे सूफी कवियों से भी आगे बढ़े हुए हैं। इनके नायक-नायिका मानों रणस्थल में एक-दूसरे को घायल करने पर तुले हुए हैं। दोनों किसी से कम नहीं हैं। रण की विकरालता के कारण दन्त-क्षत और नखक्षत से दोनों घायल हो जाते हैं फिर भी युद्ध से हटने की स्थिति किसी की नहीं आती है।[3] इस प्रकार के वर्णन का कारण यह जान पड़ता है कि कवि ने जब श्रृंगार-भाव से प्रेरित होकर संयोगावस्था का चित्रण किया तो उसे चरम सीमा तक अपनी शक्ति भर पहुँचाया। कोई अंश कहीं से छूटने नहीं पाया।

संयोग-श्रृंगार के अन्तर्गत विपरीत रति का वर्णन करने में भी भक्तवर सूरदास अधिक रुचिसम्पन्न दिखाई देते हैं। इनके राधा-कृष्ण विपरीत रति की तैयारी करके एक-दूसरे को मोहते हैं। ऐसा करने के लिए परस्पर विपरीत वस्त्रों को धारण करते हैं। राधा पीताम्बर और लकुटी धारण करती हैं तथा कृष्ण नीली साड़ी पहन कर घूँघट काढ़ते हैं। इस प्रकार राधा पति और कृष्ण पत्नी बन जाते हैं और परस्पर वैसा ही आचरण करते हैं।[4] इस प्रकार के वर्णनों द्वारा कवि ने लीला हाव के अन्यतम उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। कुंज-लीला के लिए छिप कर नगर से निकलने का कृष्ण के लिए सरलतम साधन यही हो सकता है कि वे नारी-रूप धारण करें ताकि कोई उन्हें पहचान न सके। समयानुसार इसी कौशल का पालन कृष्ण ने किया है और राधा उनके साथ रहकर उनकी सहायता करती रही है।[5] स्त्रियों के साथ पुरुष भी स्त्री-वेश में नहीं पहचाना जा सकता है। इसीलिए कहीं-कहीं कृष्ण नारी-रूप धारण करते रहे हैं। ऐसे अवसरों पर प्रेमियों की गुप्त लीलाओं का कवि ने अच्छा वर्णन किया है।

पूर्व-पीठिका के अनुसार किसी कवि की पूर्णता सामने आती है। सूर के विपरीत रति वर्णन के विषय में यह तथ्य बिल्कुल सही है। राधा-कृष्ण की विपरीत रति का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि मानो नव घन पर दामिनी की कला

---

१. सूरसागर, पद सं० ३२४३।
२. वही, पद सं० २७४६।
३. वही, पद सं० ३०७८।
४. वही, पद सं० २७७०।
५. वही, पद सं० २७७२।

लहरा रही है। कृष्ण के मुखचन्द्र पर राधा की बिथुरी आकुल अलकें ऐसी जान पड़ती हैं मानो राहु ने बलपूर्वक चन्द्रमा को ग्रस लिया है। इस अवसर पर नायिका द्वारा सक्रिय स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। संभोग की सारी विधियाँ नायिका द्वारा ही अपनाई गई हैं। चुम्बन, नखक्षत, दंतक्षत आदि सभी का पूर्णरूपेण वर्णन किया गया है।[1] इस प्रकार के वर्णनों में यदि कवि की संप्रदायगत भावनाओं का ध्यान न रखा जाय तो सूर और रीति कवियों के वर्णनों में कोई अन्तर नहीं है।

सूर ने राधा-कृष्ण की विपरीत रति महलों में ही नहीं दिखाई है वल्कि वृन्दावन के घने कुंजों में भी दर्शाया है। कोक-कला की सारी विधियाँ ऐसे वर्णनों में दिखाई गई हैं। रति-प्रसंग की एक-एक विधि का ब्यौरेवार वर्णन किया गया है। बार-बार कृष्ण नायिका का आलिंगन करते हैं। नायिका के बन्धन छूट गए हैं अलकावली भी बिखर गई है, मोतियों की माला टूट गई है। अन्त में विपरीत रति के प्रसंग में नायिका नायक के अंगों में लिपट गई है।[2] इस प्रकार रति की कोई प्रक्रिया सूर के वर्णन से छूटने नहीं पाई है।

संयोग-शृंगार के अन्तर्गत प्रायः तीन प्रकार की क्रीड़ाओं का वर्णन किया जाता है—महल-क्रीड़ा, जलक्रीड़ा तथा कुंजक्रीड़ा। इन तीनों प्रकार की क्रीड़ाओं का सूर ने वर्णन किया है। श्रीकृष्ण के चरित्र में इन तीनों क्रीड़ाओं का वर्णन करने की अच्छी सुविधा कवि को मिली है। इसी कारण उनकी सभी क्रीड़ाओं का अच्छा वर्णन भी हुआ है। महल-क्रीड़ा के वर्णन में वासकसज्जा नायिका का अत्यन्त मार्मिक चित्र उपस्थित किया गया है। राधा अपनी शैया को फूलों और सुगंधियों से सजाकर बार-बार उसका निरीक्षण करती रही है। प्रिय की यह प्रतीक्षा प्रिया के हृदय में कितनी कौतूहलपूर्ण होगी उसको प्रिया ही समझ सकती है। इन प्रेमियों के भाव-विह्वल स्वरूप को व्यक्त कर पाना कवि के लिए अत्यन्त कठिन है।[3] महल के शान्त वातावरण में संयोग के बाद की अलसाई मुद्रा का भी अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन सूरदास ने किया है। रतिरण के बाद दोनों की मुरझाई स्थिति ऐसी जान पड़ रही है मानो रणक्षेत्र में लड़कर दोनों सेनानी पड़े हुए हैं और पुनः उठने में शरमा रहे हैं।[4]

कुंजक्रीड़ा के वर्णन में कुसुमों की शैया सजाई गई है। कुंजक्रीड़ा और महल-क्रीड़ा की शैयाओं में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता है। राधा-कृष्ण के प्रेम-विलास को अनेक ब्रजनारियाँ कुंजों में देखती भी रहती हैं परन्तु उनको कोई व्यवधान कहीं

---

१. सूरसागर, पद सं० २६५१।
२. वही, पद सं० २२६६।
३. वही, पद सं० २६४७।
४. वही, पद सं० २६५५।

नहीं उपस्थित होता है।[1] कुंजक्रीड़ा के मनोहर स्थल वे हैं जहाँ प्रेमियों की छेड़-छाड़ का वर्णन किया गया है। उन स्थलों पर एकान्त वन का उद्दीपनकारी स्वरूप अत्यन्त रमणीय रूप में चित्रित हुआ है। कृष्ण की छेड़खानी से परेशान गोपियाँ कहती हैं कि आपकी यह प्रकृति अच्छी नहीं है जो स्त्रियों को घेरते हैं। जो बातें यहाँ आप हँस-हँस कर कहते हैं वही चारों तरफ फैलती हैं। अन्त में कृष्ण की आसक्त भावनाओं को जानकर कहती हैं कि अब तक तो आप दही का दान माँगते थे और अब कुछ और ही निश्चित कर लिया। मेरा आँचल छोड़िए अन्यथा यह फट जाएगा। मैं आपको अच्छी तरह पहचान गई।[2] कृष्ण गोपियों के लहरीले अंचल को पकड़कर कुंजों में ले जाने में संकोच नहीं करते हैं। वहाँ ले जाकर निर्भय रूप में अपना रास-रंग चलाते हैं। साथ में अन्य ब्रज की युवतियाँ उपस्थित रहती हैं। वन के कुंज राधा तथा कृष्ण की रतिगृह के रूप में काम आते हैं।[3] वनक्रीड़ा में लीन प्रेमियों का ऐसा स्वरूप अन्यत्र पाना दुर्लभ है। सूरसागर का दानलीला, पनघट लीला-सम्बन्धी सारा स्थल इसी प्रकार की क्रीड़ाओं से भरा पड़ा है।

जलक्रीड़ा-वर्णन के प्रसंग में सूरसागर का चीरहरण-वर्णन दर्शनीय है। चीरहरण के अवसर पर गोपियों की ही सक्रियता अधिक दिखाई गई है। कृष्ण जल में प्रविष्ट होकर आनन्द नहीं लेना चाहते हैं बल्कि गोपियों का नग्न स्वरूप देखना चाहते हैं और इसीलिए प्रयास करते हैं। इस प्रसंग के अतिरिक्त जलक्रीड़ा-सम्बन्धी सूरसागर में अनेक ऐसे पद हैं जहाँ राधा-कृष्ण परस्पर जलकेलि में आत्म-विभोर हैं। राधा अपने गोरे हाथों से कृष्ण के ऊपर जब जल उछालती है तो ऐसा जान पड़ता है मानो कनक लता से मकरंद झर रहे हैं और पवन उन्हें झकझोर दे रहा हो।[4] राधा का जल की बूँदों को छिड़कना उनके छबीलेपन को और अधिक विकसित कर देता है। अंगरागहीन उनके शरीर का स्वाभाविक सौन्दर्य प्रिय के हृदय में ललक पैदा करने लगता है।[5] इस प्रकार परस्पर बूँदों के उछालने में ही नायक-नायिका एक-दूसरे का आलिंगन करने लगते हैं। अगाध जल में मनुष्य तिनके का भी सहारा दौड़ कर ग्रहण करता है। यदि प्रिय पास हो तो उसे क्यों नहीं ग्रहण करेगा। प्रेमियों को जल के अन्तर्गत अपनी साध पूरी करने का अच्छा अवसर मिल जाता है और उसका उन्होंने खूब उपयोग किया है। जल में ही आलिंगन, चुम्बन आदि क्रीड़ाएँ वे करने लगते हैं। इस अवसर पर नायक-नायिका दोनों एक-दूसरे पर रीझ कर आत्मविभोर हो जाते हैं।[6] प्रेमियों की यह क्रीड़ा सम्भोग में परिणत होती है। इस अवसर पर

१. सूरसागर, पद सं० ३०४१।
२. वही, पद सं० २०६०।
३. वही, पद सं० १६५६।
४. वही, पद सं० १७७७।
५. वही, पद सं० १७७८।
६. वही, पद सं० १७८२।

राधा ही अधिक सक्रिय दिखाई देती है और प्रिय-प्रेमी दोनों क्रीड़ा में लीन दिखाई देते है ।[1] ऐसे स्थलों पर सूर की काव्य-प्रतिभा का चरमोत्कर्ष लक्षित होता है ।

संयोग शृंगार के अन्तर्गत रति-रण का वर्णन करने की साहित्यिक परम्परा सूरसागर में भी पाली गई है । यथावसर कवि ने इसका अच्छा वर्णन किया है । युद्ध की विभीषिका का भय प्रत्येक मानव को होना स्वाभाविक है । रतिरण के पूर्व इसीलिए सूर ने राधा को भयभीत दिखाया है । इसी कारण नायिका का नवोढ़ा रूप अत्यधिक विकसित हो गया है । युद्ध का भय होने पर भी राधा अस्त्र-शस्त्र से पूर्णरूपेण सजी हुई काम-सेना लेकर डंके की चोट पर रतिरण में लड़ने के लिए तैयार होकर जाती है । उनके अंग-प्रत्यंग शस्त्रास्त्रों की भाँति सुशोभित हो रहे हैं । इस संग्राम में नायिका की लटें छूट जाती हैं और माला टूट जाती है । अन्त में मूर्च्छित होकर रण-शैया पर दोनों सेनानी गिर पड़ते हैं ।[2] यहाँ प्रेमियों के रतिरण में किलकिंचित हाव की योजना करके रूपकात्मक वर्णन सूरदास ने किया है । इस वर्णन के सन्मुख रीति कवियों की चामत्कारिक योजना फीकी है । यदि कवि के भक्ति-सम्बन्धी प्रेरक भाव को ध्यान में न लाया जाय तो इन वर्णनों के आधार पर इन्हें लौकिक शृंगार का प्रधान कवि कहा जा सकता है ।

रण में जिस प्रकार शूरवीर घायल होकर भी शत्रु से मुँह नहीं मोड़ते हैं उसी प्रकार की वीरता का चित्रण रतिरण के प्रसंग में सूरदास ने किया है । दंतक्षत, नखक्षत से पूर्णतया घायल होकर भी इनके प्रेमी एक-दूसरे से दूर नहीं हटते ।[3] उन्हें एक-दूसरे की शक्ति का अभी पूर्ण ज्ञान नहीं है । रणक्षेत्र में अपने अस्त्रों का शक्ति भर प्रयोग करने के बाद भी जब सेनानी थक जाते हैं तो रणभूमि में ही गिर पड़ते हैं । उस समय शत्रु के प्रहार करने का भी भय उसे नहीं रहता है । सूर के प्रेमियों की भी यही स्थिति होती है । आलस्य की स्थिति में रतिरण के दोनों सेनानी शैया पर पड़े हुए हैं । उन्हें एक-दूसरे के प्रहार का भी भय अब नहीं ।[4] इसी प्रकार सम्भोग के बाद अलसाई मुद्रा का अत्यंत स्वभाविक एवं रूपकात्मक वर्णन सूरदास ने किया है । अपनी शक्ति का पूरा उपयोग कर लेने के बाद शूरवीर मूर्च्छित होकर भी प्रसन्न मुद्रा में रहते है । इसी कारण इनके प्रेमी भी 'सेजखेत' में 'मगन मुद्रा' में पड़े हैं ।

रति-संग्राम में विजय करने वाले कृष्ण का भी सूरदास ने वर्णन किया है । उनके केश, मुकुलित है जो मुकुट में समा नहीं रहे हैं, नेत्र अरुणिम हैं, शरीर अलसाया हुआ है, वाणी अविकसित हो गई है । नखक्षत आदि से घायल शरीर पर स्वेद की धारा

---

१. सूरसागर, पद सं० १७८५ ।
२. वही, पद सं० ३०७३ ।
३. वही, पद सं० ३०७८ ।
४. वही, पद सं० २६५३ ।

ने चंदन को विदीर्ण कर दिया है, अधरों पर पीक की लीक ऐसी शोभित हो रही है मानो सन्मुख होने के कारण प्रहार इसी को सहना पड़ा है फिर भी मनसिज का संग्राम कृष्ण ने ही जीता है।[1] इस प्रकार नायक की मुद्रा द्वारा उसकी रण-कुशलता का कवि ने परिचय दिया है। इन वर्णनों के आधार पर सूरसागर साहित्यसागर कहा जा सकता है जिसमें शृंगार के उपयोगी तत्त्व भरपूर मात्रा में वर्तमान हैं। बाद के कवि इन्हीं से प्रेरणा पाकर लिखते रहे हैं।

'सूरसागर' के शृंगार-वर्णन में अनुभव आदि की सुन्दर योजना कवि ने की है। अनुभावों ने ही उनके शृंगार-वर्णनों में तीव्र आकर्षण पैदा किया है। यथास्थान उनका वर्णन किया जाएगा।

विप्रलम्भ शृंगार :

सूरदास का वियोग-वर्णन शास्त्रीय पद्धति पर हुआ है। वियोग का शास्त्रीय दृष्टि से क्रमबद्ध वर्णन तो सूरदास ने नहीं किया है परन्तु सर्वेक्षण करने पर उनमें सारी शास्त्रीय पद्धतियाँ पालन की हुई जान पड़ती हैं। पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करुण दशाओं का अत्यन्त सजग बुद्धि से वर्णन किया गया मिलता है।

पूर्वराग :

गोपियों का पूर्वराग कृष्ण के बाल्यकाल से ही आरम्भ हो जाता है। बालक कृष्ण के अनुपम सौंदर्य को देखकर वे मोहित हो जातीं हैं और अपने परिवार के परम्परित सम्बन्ध-सूत्र को कच्चे तागे की भाँति तोड़ने को तैयार हो जाती हैं।[2] कृष्ण के बड़े हो जाने पर उनका प्रेम अधिकाधिक प्रगाढ़ होता जाता है। जब वे मक्खन चुराने लगते हैं तब उनकी लीलाओं को देखकर उनके साथ क्रीड़ा करने की भावना गोपियों में जग पड़ती है। कृष्ण के रूप-दर्शन मात्र से उनमें ऐसा हर्षोद्रेक होता है कि स्तम्भ, रोमाँच आदि कई संचारी भाव एक साथ ही जगकर उनकी वाणी को भी मूक कर देते हैं।[3] वे कृष्ण से मिलने की अभिलाषाएँ व्यक्त करने लगती हैं और ईश्वर से करबद्ध प्रार्थना करती हैं कि नन्दकुमार उन्हें पुरुष रूप में मिलें।[4]

कृष्ण की रूप-माधुरी की ऐसी तृषा गोपियों में जगती है कि वे यशोदा को उलाहना भी इसीलिए देने जाती हैं कि सम्भवतः कृष्ण के दर्शन मिल जाएँ। उलाहना

---

१. सूरसागर, पद सं० ३०७६।
२. सूरसागर, पद सं० ७५४।
३. वही, पद सं० ८८४।
४. वही, पद सं० ८९१।

आने की कृष्ण की हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने दूती से काम लिया। राधा के मान की स्थिति देखकर दूती की भी हिम्मत जाती रही।[1] परन्तु चतुर दूती ने साम, दाम, दण्ड, भेद की रीति से काम लिया। यहाँ दूती द्वारा नीतिपूर्ण तर्क देने की साहित्यिक परम्परा का पालन सूर ने भी किया है।

साम-नीति अपनाते हुए दूती कहती है कि आपने मान करके अच्छा किया। इसके बिना कृष्ण को समझ में भी नहीं आएगा। अब कभी भी उनकी ओर न ढलिएगा। मैं तो यमुना-तट से ब्रज की ओर जा रही थी तभी कृष्ण की यह बात एक सखी द्वारा सुनी। यह सुनकर मुझ से घर रहा न गया। क्या कृष्ण की सचमुच ऐसी ही प्रकृति है? परन्तु एक बात है। अब तो श्याम दरवाजे से हटते भी नहीं हैं। शपथ खाकर कहते हैं कि अब ऐसा कार्य न करूंगा, किसी के घर न जाऊँगा। परन्तु तुम उनसे मान न छोड़ना, मैं यही कहने आई हूँ।[2] इसी नीति द्वारा दूती ने राधा के मान की जड़ हिला दी। कृष्ण की स्मृति दिलाकर उसने राधा के हृदय को गुदगुदा दिया।

दूती की दाम-नीति के अन्तर्गत वे प्रसंग आते हैं जहाँ वह कहती है कि कृष्ण स्वयं तुम्हारे वियोग में तड़प रहे हैं। उठते-बैठते, चलते-फिरते, गाय चराते प्रति-क्षण तेरी ही लीला गाते रहते हैं। तुम्हारे एक-एक अंग से समता रखने वाले तत्त्वों से आजकल उन्हें विशेप प्रेम हो गया है। तुम्हारे गौर वर्ण को याद करके पीत धातु को अंग में लगाते हैं, तुम्हारे चन्द्रानन को याद करके मोर चन्द्रिका का मुकुट धारण करते हैं, राधा तुम कहाँ हो, कहकर कुंज-कुंज में दौड़ते-फिरते हैं, तुम्हारा चित्र बनाकर उसे देखते रहते हैं।[3] इसी प्रकार कई पदों में कृष्ण के वियोग का वर्णन दूती ने किया है।[4] दूती की इन बातों से राधा को यह भावन होने लगा कि सचमुच कृष्ण मेरे ही प्रति आसक्त हैं। इस प्रकार की बातों द्वारा राधा को आकृष्ट करने के लिए एक प्रकार का घूस दिया गया है।

दण्ड-नीति को अपनाकर दूती ने राधा को फटकारा है। दूती की बातों पर जब राधा ने खरा उत्तर दिया कि 'तू को है री, कौन पठाई, कह तेरी को मानै' तो दूतिका को दण्ड-नीति का सहारा लेना पड़ा और उसने फटकारा।[5] इससे अधिक

---

१. सूरसागर, पद सं० ३१८४।
२. वही, पद सं० ३१८५-८६।
३. वही, पद सं० ३१९७।
४. वही, पद सं० ३२०२।
५. तऊ गंवारि अहीरी।

+ + +

कहा कहीं हरि सों व तोसी कों मुंह लगाई,
वारों तोहि पिय इक रोग पै ही री। —सूरसागर, पद सं० ३२१४

मर्मान्तिक बात और क्या कही जा सकती है।

भेद-नीति अपनाते हुए दूती ने राधा को ऊँचा-नीचा समझाया है कि यौवन का गर्व न करो यह अल्पकालिक वस्तु है। तुम्हारे ही जैसा स्वभाव सभी स्त्रियों का होता है। चतुराई की बात इसी में है कि चढ़ती अवस्था में कृष्ण से हिल-मिल कर रहो।[1] यह यौवन क्रमशः क्षीण होने वाला है इसका उपयोग करो अथवा न करो परन्तु रजनी की चन्द्रकला की भाँति यह क्षीण होगा ही।[2]

नीति-कुशल दूती के प्रयास से राधा का मान टूट गया। उन्होंने क्रियाविदग्धा नायिका का आचरण करके कृष्ण को स्वयं आमन्त्रित किया और कुँजों में दोनों ने सुरत-विहार का आनन्द लूटा। दूती बीच-बीच में कृष्ण से भी मिलती रही और कृष्ण की ओर से राधा के यहाँ और राधा की ओर से कृष्ण के यहाँ तत्क्षण वकालत करती रही। इन प्रसंगों से सूर के वर्णनों में प्रबन्धात्मकता आ गई है।

गुरु मान :

एक दिन राधा प्रातःकाल अपनी सखियों को यमुना-स्नान के लिए बुलाने गई। संयोग से जिस सखी को राधा बुलाने गई उसी के यहाँ कृष्ण सारी रात वर्तमान थे। परिणाम यह हुआ कि सखी के बुलाने पर कृष्ण ही घर से निकल आए। अचानक एक-दूसरे को देखकर दोनों चकित हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। राधा को स्नान करने की सुधि जाती रही और वे मान की ज्वाला में जलने लगीं।[3] राधा के मान करने पर कृष्ण की अत्यन्त दयनीय स्थिति हो गई। कृष्ण की व्याकुलता को देखकर सखियों ने राधा के लाख रूठने पर भी समझा-बुझाकर अनुकूल बना लिया और कृष्ण को लाकर उनसे मिला दिया। इसके बाद नव-दम्पती प्रसन्न मुद्रा में वर्षाऋतु के झूले पर आनन्द लूटने लगे। इस मान-वर्णन में कोई नवीनता नहीं है।

गुरु मान का एक और प्रसंग सूरसागर में बड़ी मान-लीला के नाम से आया है। इस मान का भी कारण वही था जो उपर्युक्त गुरु मान का। राधा यमुना-स्नान के लिए सखी को बुलाने गई तो कृष्ण वहाँ वर्तमान थे और सखी की जगह वे ही बाहर निकल आए। बाहर राधा को देखते ही वे चकित रह गए। उधर राधा ने मान किया इधर कृष्ण की व्याकुलता बढ़ी।[4] राधा के इस मान को भंग करने के लिए दूती और सखी दोनों ने समान प्रयास किया। अन्य मान-वर्णनों की अपेक्षा इस प्रसंग में कोई नवीनता नहीं है। एक बात अवश्य है कि इस प्रसंग में कृष्ण को भी

---

१. सूरसागर, पद सं० ३२१५।
२. वही, पद सं० ३२१६।
३. वही, पद सं० ३२२१।
४. वही, पद संख्या ३३५३।

स्वयं नारी-रूप धारण करके राधा को मनाने के लिए दूती बनना पड़ा है[1] परन्तु राधा-मोहन मिलन कृष्ण और दूती के संयुक्त प्रयास से ही हो पाया है।

उपर्युक्त मान-वर्णनों के अतिरिक्त सूरसागर में और कई स्थलों पर मान वर्णन हुआ है। मानलीला तथा दम्पति-विहार, खंडिता प्रकरण, राधा का मान आदि कई छोटे-छोटे स्थलों में मान-वर्णन सूरसागर में संकलित हैं। सभी जगह मान का कारण प्रायः एक-सा दिखाया गया है। मान-मोचन भी प्रायः एक ही तरीके से किया गया है। इसलिए कथात्मक दृष्टि से ये वर्णन पुनरुक्ति मात्र हैं परन्तु सूर की सरस शैली में यह दोष खटकता नहीं है।

प्रवास-वर्णन :

सूरदास द्वारा प्रवास-वर्णन उस समय किया गया है जब कृष्ण ब्रज से मथुरा चले गए। कृष्ण बचपन से गोपियों के साथ खेले-खाए थे। इसलिए उनके जाने के बाद वियोगिनी गोपियों की अत्यन्त दयनीय दशा हो जाती है। गोपियों के इस वियोग का विशद् वर्णन सूरसागर में किया गया है। यह वर्णन सूरसागर का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं विशाल अंग है। सूर की काव्य-प्रतिभा एवं तर्क बुद्धि का अनुपम चमत्कार यहाँ देखने को मिलता है। प्रेम की सूक्ष्मतम अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण जिस रूप में हुआ है वह सूर के ही सामर्थ्य की बात है। कृष्ण के साथ रहने पर गोपियों की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होकर आनन्द-विभोर थीं इसलिए वे अप्रकाशित सी थीं परन्तु कृष्ण के हटते ही नारी-वृत्तियाँ बहिर्मुखी होकर अपने प्रेमी की खोज में भटकने लगीं इसीलिए वियोगिनी गोपियों की पीड़ा असह्य हो उठी।

दूसरों को पीड़ित देखकर दुनिया वाले समझा-बुझाकर उसे सांत्वना देते हैं। गोपियों को भी इसी प्रकार लोग समझाते हैं परन्तु उन्हें सन्तोष कहाँ ? उनकी इन्द्रियाँ तो कृष्ण-संसर्ग का ही सुख भोगना चाहती हैं।[2] कृष्ण ने उनसे प्रेम करके अच्छा नहीं किया बल्कि गले पर छुरी घुमा दी। प्रेमिकाओं के साथ उनका व्यवहार बधिक के समान था जो कपट के दाने चुगाकर पक्षियों को मारता है। यही रूप कृष्ण का था। उनका कपटी प्रेम पात्र पर किए गए स्वर्णिम कलई के सदृश था जो समय आते ही स्पष्ट हो गया। सचमुच श्याम को ऐसा नहीं समझा गया था।[3] इसी प्रकार के अत्यन्त दीन एवं निरीह भाव वियोगिनी गोपियों द्वारा व्यक्त किए गए हैं। वे असहाय अवस्था में बिलखती हैं। उनके सामने कोई चारा नहीं। अन्त में असहाय

---

१. तब हरि रच्यौ दूती-रूप।
गए जहँ मानिनी राधा, लिया स्वाँग अनूप।
जाइ बैठे कहत मुख यह तू इहाँ बन स्याम। —सूरसागर, पद संख्या ३४३१।

२. सूरसागर, पद संख्या ३८०१।

३. वही, पद संख्या ३८०३-५।

होकर कहती हैं कि इन अनाथों की सुधि लीजिए तथा कम-से-कम एक बार तो पत्री लिख दीजिए ।[1] अपने को अनाथ कहकर नाथ का सहारा लेने वाली गोपियों को जब अपने प्रेमाकर्षण पर विश्वास नहीं रह गया तो वे ग्वाल, गाय और गोसुत की स्मृति दिलाती हैं जो कृष्ण को प्यारे थे । इतने पर भी न रहा गया तो प्रार्थना करती हैं 'बारक हूँ पतिया लिखि दीजे ।'

वियोग में संयोग की सुखदायिनी वस्तुएँ और अधिक कष्ट देने लगती हैं । इस बात का वर्णन करने की परम्परा साहित्य में रही है । सूर की गोपियों ने भी ऐसी भावनाएँ व्यक्त की हैं । वे कहती हैं कि सुखदायी वस्तुएँ भी कृष्ण के न रहने पर सताने लगीं । संयोगावस्था की काली रात तथा पावस की गर्जनाएँ अधिक डराने लगी हैं । मोर का शोर, कोकिल की कूक, भौंरों की गूंज, सब की सब दादुरों की नीरस टर्र-टर्र की तरह जान पड़ रही हैं । चन्दन और चन्द्रमा अग्नि की तरह भस्म करने वाले हो गए हैं । कालिन्दी और कमल को तो देखने मात्र से ही पीड़ा होने लगती है । सभी सुखदायी ऋतुएँ विपरीत स्थिति में दिखाई दे रही हैं ।[2] ऐसी स्थिति में बेचारी विरहिणी रात-दिन तड़पती रहती है ।

सुख के बाद यदि कष्ट झेलना पड़ता है तो उसकी पीड़ा तीव्रतम होती है । उसी प्रकार मिलन के बाद यदि वियोग होता है तो बहुत ही कष्ट देता है । उसे केवल भुक्तभोगी ही समझ सकता है । ऐसे जीवन से मरण ही अच्छा होता है । इसीलिए वह कहती है कि यदि इसी प्रकार घुला-घुला कर मारना था तो ऐसी निर्दयता उसी समय क्यों नहीं की कि जब केसी, तृणावर्त, वृषभासुर, इन्द्र आदि से व्रज को बचाया ।[3]

वियोग में प्रिय की छोटी से छोटी क्रियाएँ भी स्मृति-पटल में रह-रह कर घनीभूत होकर असहनीय पीड़ा देती हैं और मधुर लीलाओं की स्मृति तो किसी भी प्रकार जाती ही नहीं, निरन्तर हृदय को टीसती रहती हैं ।[4]

विरहिणी को अपनी मानलीला की मधुर स्मृति भूल नहीं रही है । अपनी दुःखद स्थिति में प्रकृति की प्रसन्न वस्तुएँ उसे ऐसी जान पड़ रही हैं मानो प्रिय के अभाव में उसे चिढ़ा रही हों इसीलिए पपीहे की पी-पी की पुकार सुनकर उसे

---

१. नाथ अनाथनि की सुधि लीजै ।
गोपी ग्वाल गाइ गोसुत सब दीन मलीन दिनहिं दिन छीजें ।
+ + +
इतनी बिनती सुनहु हमारी, बारक हूँ पतिया लिखि दीजै ॥
—सूरसागर, पद सं० ३८०८ ।

२. सूरसागर, पद संख्या ३८१६ ।

३. वही, पद संख्या ३८२६ ।

४. वही, पद संख्या ३८२१ ।

फटकारती है।[1] पपीहे ने न जाने कौन सा पाप पूर्व जन्म में किया था जिसके फलस्वरूप उसे जीवन-भर अपने पी की रट लगानी पड़ती है। इतने पर उसे समझ न आई। अब वियोगिनी गोपियों को सता कर अपना अगला जीवन भी बिगाड़ रहा है परन्तु उसका यह कार्य वीरों का नहीं कायरों का ही है। इसी प्रकार मधुवन को भी हरा-भरा देखकर गोपियाँ फटकारती हैं कि तुम हरे क्यों हो।[2] वियोग की स्थिति में घिरे बादलों की घटा देखकर कहती हैं कि बदली वध करने आई है।[3] वियोगिनी की मनःस्थिति में विपरीत परिवर्तन होने के कारण प्रतिकूल दिखाई देने वाली वस्तुओं पर उसका झल्लाना स्वाभाविक ही है। उसे अपने आप पर भी क्रोध आता है कि उसका अस्तित्व अभी भी बना हुआ है।[4] कृष्ण के न रहने पर हृदय फट क्यों नहीं गया, जीवन समाप्त क्यों नहीं हो गया। अब तो ब्रज में रहना तीर की नोक के सामने खड़ा होना है। अपनी विकल वेदना से विह्वल नायिकाएँ कृष्ण को पाने के लिए हठयोगियों की भाँति योग साधने के लिए भी तैयार हैं।[5]

स्वप्न-वर्णन :

प्रेमी के हृदय में प्रिय का स्वरूप प्रतिक्षण मँडराया करता है। व्यक्ति चाहे जिस स्थिति में हो उसका हृदय-पटल उसके प्रिय से खाली नहीं रहता। सोते-जागते, चलते-फिरते प्रतिक्षण वह प्रिय के ही विषय में सोचा करता है। इसीलिए सुषुप्तावस्था में भी वह उसी का रूप देखता रहता है जिसको स्वप्न कहा जाता है। सूर की गोपियाँ कृष्णमय हो गई थीं इसलिए स्वप्न में भी उन्हें कृष्ण ही दिखाई देते हैं। उनकी क्रीड़ाएँ ही याद आती हैं। विचित्र घटनाएँ स्वप्न में उनके साथ घटा करती हैं। एक दिन उसे ऐसा हुआ कि कृष्ण उसके घर आए और हँसकर ज्योंही उन्होंने उसकी बाँह पकड़ी कि दुष्ट नींद ने अपसरण कर दिया। क्षण-भर उससे और न रुका गया। बेचारी गोपी की ऐसी ही स्थिति हुई जैसे चकई ने जल में अपनी परछाई देखकर आनन्द का अनुभव किया कि अब प्रिय आ गया त्यों ही चंचल पवन ने जल में हिलोरें पैदा करके उसका भ्रमजन्य सुख नष्ट कर दिया।[6] प्रिय के स्वप्न में आने पर नींद का खुलना प्रेमिका को अत्यन्त कष्टप्रद लगता है इसीलिए उसे वह शत्रु तथा सौत कहती है।[7] स्वप्न में वह प्रिय का दर्शन करती है परन्तु

१. सूरसागर, पद सं० ३९५६।
२. वही, पद सं० ३८२८।
३. वही, पद सं० ३९२४।
४. वही, पद सं० ३८३८।
५. वही, पद सं० ३८४४।
६. वही, पद सं० ३८८६।
७. वही, पद सं० ३८७९।

जागते ही वह आनन्द विनष्ट हो जाता है। ऐसी स्थिति में उसे ऐसा जान पड़ता है मानो उसके हाथ का हीरा नींद ने ढोल बजा कर ठग लिया। बेचारी हाथ मलकर पछताती रह जाती है।[1] उसे विशेष कष्ट इस बात से है कि नींद ने धोखे से नहीं बल्कि ढोल बजाकर उसे ठग लिया और वह उसका कुछ भी न कर सकी। इसी प्रकार के अनेक मनोहर चित्र सूरसागर में स्वप्न-वर्णन में उपस्थित किए गए हैं।

संदेश-वर्णन :

प्रवास की स्थिति में प्रेमी अपने प्रिय को संदेश भेजकर बुलाना चाहता है। गोपियों ने भी कृष्ण को बुलाने के लिए संदेश भेजा परन्तु कोई उत्तर उन्हें न मिला।[2] संदेशवाहकों को या तो कृष्ण ने समझा-बुझाकर रोक लिया या कहीं उनकी मृत्यु हो गई। उनके वापस न आने से विरहिणी गोपियाँ हताश हो जाती हैं।

वियोग की असह्य स्थिति में ही कृष्ण का सन्देश लेकर ऊधव आते हैं। उद्धव ने गोपियों को निर्गुण उपदेश देना आरम्भ किया। वस्तुत: उद्धव को अपने निर्गुण ज्ञान का अधिक अभिमान था। उसी को नष्ट करने के लिए कृष्ण ने उद्धव को गोपियों के पास भेजा था। गोपियों के अथाह प्रेम-प्रवाह में उद्धव का ज्ञान विलीन हो गया और उन्हें भी प्रेमा भक्ति को स्वीकार करना पड़ा। सूरसागर में यह प्रसंग भ्रमरगीत के नाम से प्रसिद्ध है। यह प्रवास-वर्णन के अन्तर्गत आता है। वियोग की मार्मिक अनुभूतियों के अकाट्य अनुपम चित्र इस अंश में पाए जाते हैं।

कृष्ण ने उद्धव को इस रूप में भेजा जिससे गोपियों ने दूर से आते हुए रथ को देखकर यही समझा कि कृष्ण आ रहे हैं। कृष्ण के आगमन की सूचना मिलते ही सभी व्रजनारियाँ उनके दर्शनार्थ दौड़ पड़ीं। जब यह ज्ञात होता है कि ये कृष्ण नहीं उद्धव हैं तो कोमलांगी बालाएँ मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।[3] उनकी दयनीय स्थिति हो गई। मानो स्वप्न में वे राजधानी को पाकर पुन: रंकिणी हो गई हों। इसके बाद उद्धव का निर्गुण संदेश सुनाना जले पर नमक लगाना था। गोपियाँ उनकी बातों से जल-भुन गईं। उन्होंने झुँझला कर कहा कि 'उद्धवजी आप तुरन्त यहाँ से चले जाइए। अपने जोग की पूँजी का व्यापार वहीं कीजिए जहाँ से आपको लाभ हो। आपका मूलधन बचा रहे और लाभ के हिस्से से आप खाया करें, हम वियोगिनी नारियों को कृष्ण के अतिरिक्त और कुछ रुच नहीं सकता। यह अपना व्यापार आप नगर-नारियों में चलाइए, वहाँ अच्छा चलेगा।'[4]

---

१. सूरसागर, पद सं० ३८८३।
२. वही, पद सं० ३६१८।
३. वही, पद संख्या ४०८६।
४. वही, पद संख्या ४१३५।

कृष्ण ने उद्धव को व्रजवासियों के नाम से एक पत्र दिया था। पत्र देने की सूचना पाकर गोपियाँ विह्वल हो उठीं। उनके अश्रु-प्रवाह से पत्र की स्याही फैल गई। उसे वे बार-बार यही कह कर छाती से लगाती हैं कि हे बाल संघाती कृष्ण, पुनः कब मिल पाओगे।[1] विकल होकर गोपियाँ उद्धव का मखौल उड़ाती हैं। 'उद्धव तुम बुद्धिहीन व्यक्ति हो। स्त्रियों को योग सिखाते तुम्हें शर्म भी नहीं आती, अबलाओं को दिगंबर स्थिति में लाना चाहते हो। यह बात हम लोगों से तुमने कह दी सो सह लिया गया अन्यत्र न कहना। वस्तुतः कृष्ण ने तुम्हें मूर्ख बनाया है। सत्य बताओ, तुम्हें यहाँ भेजते समय कृष्ण मुस्कराए तो नहीं थे।'[2] सचमुच उन्होंने तुम्हें मूर्ख बनाया है। तुमको यहाँ भेजा ही नहीं गया है। तुम अपना मार्ग भूल आए हो। इसी प्रकार प्रेम की जो अबाध सरिता गोपियों ने बहाई उसमें उद्धव का ज्ञान भी बह गया। उद्धव भी कृष्ण के पास प्रेमी ही बनकर लौटे।

सूर के प्रवास-वर्णन में नायिका की कहीं-कहीं अत्यन्त दयनीय प्रेमपूर्ण स्थिति का भी वर्णन किया गया है। राधा कृष्ण के वियोग में व्याकुल होकर माधव-माधव जपते-जपते भृंगी-कीट न्याय से माधव बन जाती हैं और माधव बनकर राधा के वियोग में जलने लगती है। परिणाम यह होता है कि राधा के एक ही तन में राधा और कृष्ण दोनों की वियोगाग्नि संगठित होकर प्रज्ज्वलित होने लगती है। उनके प्राणों की वही स्थिति होती है जैसे किसी लकड़ी के दोनों सिरे पर आग लगी हो और बीच में पड़ा असहाय कीट छटपटा रहा है।[3]

वियोग-वर्णन के प्रसंग में ऋतु-वर्णन करने की साहित्यिक परम्परा रही है। सूरदास जी ने पावस ऋतु का इसी प्रसंग में पर्याप्त वर्णन किया है। अन्य ऋतुओं की भी चर्चा की गई है परन्तु अत्यन्त संक्षेप में इस विषय पर आगे ऋतु-वर्णन के प्रसंग में विचार किया जाएगा।

सूर के वियोग-वर्णन में कुछ ऊहात्मक वर्णन भी पाए जाते हैं। यद्यपि उन वर्णनों की अतिरंजना हास्यास्पद नहीं हो पाई है कि फिर भी अत्युक्ति तो है ही। उदाहरण के लिए वियोग में गोपियों की अंगुलियाँ इतनी तप्त दिखाई गई हैं कि उनके स्पर्श से पत्र को जल जाने की आशंका है मानो वे आग हो गई हैं।[4] फिर भी इनके वियोग से न सारा गाँव भस्म होता है और न लू चलती है।

कामदशा :

वियोग के अन्तर्गत काम की दस दशाओं का भी सूरसागर में वर्णन पाया

---

१. सूरसागर, पद संख्या ४१०५।
२. वही, पद संख्या, ४१३६।
३. वही, पद संख्या ४७२४।
४. सूरसागर, पद सं० ४१०८।

जाता है। यद्यपि यह वर्णन सूरदास ने रीति कवियों की भाँति उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए नहीं किया है। डॉ० व्रजेश्वर वर्मा के अनुसार कवि का उद्देश्य काम-दशाओं का उल्लेख करना कदापि नहीं जान पड़ता। वह तो गोपियों के उस अनन्य उत्कट प्रेम की व्यंजना करता है जो अब उस अवस्था में पहुँच गया है जहाँ संसार के, शरीर के, मन के समस्त इतर सम्बन्धों और विचारों का सर्वथा उपराम हो जाता है। अब वे मनसा वाचा कर्मणा सूर श्याम के ही ध्यान में संलग्न हो गई हैं।[1] काम-दशाओं का सूरदास जी ने जानबूझकर उल्लेख नहीं किया यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। जो व्यक्ति चमत्कार दिखाने के लिए अथवा साहित्यिक प्रभाव में आकर दृष्टकूटों की रचना कर सकता है वह साहित्यिक परम्परा के प्रभाव में काम-दशाओं का भी वर्णन कर सकता है। काम की दशाओं का नाम तो उन्होंने अपने पदों में लिया ही है।[2] यह बात अवश्य है कि सूरदास जी ने अपने भाव में साहित्यिक अथवा सामाजिक किसी भी प्रकार के बंधन को स्वीकार नहीं किया है। उनके काव्य की मूल धारा भाव-प्रधान है। उनकी भाव-भागीरथी और कला-कालिंदी का मेल स्वाभाविक है, बनावटी नहीं। उस संगम में भाव और कला दोनों का प्रत्येक तत्त्व विद्यमान है। इसी कारण एक-एक वियोग-दशा का एक नहीं अनेक बार वर्णन सूरसागर में पाया जाता है। डॉ० व्रजेश्वर वर्मा के अनुसार पद संख्या ३२३८-६५ के ही बीच मरण को छोड़कर और सभी दशाओं का कई-कई बार वर्णन हो गया है।[3] श्री मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने अपने ग्रंथ में सूरसागर से सभी कामदशाओं का उदाहरण प्रस्तुत किया है।[4] डॉ० हरवंशलाल शर्मा ने भी अपने प्रबंध में सूरसागर से से ही सारी कामदशाओं का स्वरूप दर्शाया है।[5] विस्तार-भय के कारण संक्षेप में कुछ कामदशाओं के उपयुक्त उदाहरण यहाँ भी प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

अभिलाषा—

> सखी मोहिं हरि दरस कौ चाउ।
> सांवरे सौं प्रीति बाढ़ी लाख लोग रिसाउ।
> स्याम सुन्दर कमल लोचन अंग अगनित भाउ।
> सूर हरि के रूप राँची, लाज रहौ कि जाउ ॥[6]

---

१. डा० व्रजेश्वर वर्मा, सूरदास, पृ० ४६६।
२. सूरसागर, पद संख्या २२५३।
३. डा० व्रजेश्वर वर्मा, सूरदास, पृ० ४६६।
४. डा० मुंशीराम शर्मा 'सोम', सूर सौरभ, तृतीय संस्करण, पृ० ५२८-३०।
५. डा० हरवंशलाल शर्मा, सूर और उनका साहित्य, पृ० ५०६-८।
६. सूरसागर, पद संख्या २०७४।

चिंता—

कब देखौं इहिं भांति कन्हाई।
मोरनि के चंदवा माथे पर, कांध कामरी लकुट सुहाई।
बासर के बीतैं सुरभिन संग, आवत एक महा छवि-पाई।
कान अंगुरिया घालि निकट पुर, मोहन राग अहीरी गाई।
क्यों हुँ न रहत प्रान दरसन बिनु अब कित जतन करैं री माई।
सूरदास स्वामी नहिं आए वदि जु गए अवध्यौऽव भराई ॥[1]

स्मृति—

उपर्युक्त चिन्ता के उदाहरण में स्मृति की दशा भी निहित है। फिर भी स्मृति का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

एकहि बेर दई सब ठेरी।
तब कत डोरि लगाइ चोरि मन मुरलि अधर धरि टेरी।
बाट घाट बीथी-ब्रज घर बन संग लगाए फेरी ॥[2]

गुण-कथन—

ते गुन बिसरत नाहीं उर तैं।
जे ब्रजनाथ किए सुनि सजनी, सोचि कहति हौं धुर तैं।
मेघ कोपि ब्रज बरषन आयो, त्रास भयौ पतिसुर तैं।
+ + +
सूरदास-प्रभु सबै बधे रन, कछु नहिं सर्‌यो असुर तैं ॥[3]

उद्वेग—

ब्रज में वै उनहार नहीं।
ब्रज सब गोप रहे हरि बिनहीं, स्वाद न दूध दही।
+ + +
सूरदास हम तब न मुई, अब ये दुख सहन रहीं।[4]

प्रलाप—

गोपालहिं पावौं धौं किहिं देस।
सिंगी मुद्रा कर खप्पर लैं करिहौं जोगिनि भेस।

---

१. सूरसागर, पद सं० ३८३५।
२. वही, पद सं० ३८०६।
३. वही, पद सं० ३८२२।
४. वही, पद सं० ३८३७।

कंथा पहिरि विभूति लगाऊँ, जटा बंधाऊँ केस।

+ + +

सूर स्याम बिनु हम हैं ऐसी जैसे मनि बिनु सेस ॥[1]

उन्माद—

सुनहु स्याम यह बात और कोउ क्यों समुझाइ कहै।
दुहुँ दिसि कौ अति विरह विरहिनी, कैसैं कै जु सहै।
जब राधा तबहीं मुख माधौ, माधौ रटत रहै।
जब माधौ ह्वै जात सकल तन राधा विरह दहै ॥[2]

व्याधि—

हरि जू, सुनहु वचन सुजान।
विरह व्याकुल छीन तन-मन हीन लोचन कान।

+ + +

करि जतन कछु सूर के प्रभु ज्यों जियै ब्रज बाल ॥[3]

जड़ता—

यह कहि क्रोध मगन भई।
रही इकटक साँस बिनु, तनु विरह-बिबस भई।
बार बारहिं सखि बुलावति कहा भई दई।
नारि नौमी दसा पहुँची, ह्वै अचेत गई ॥[4]

मूर्च्छा—

सखियन मिलि राधा घर लाई।
देखहु महरि सुता अपनी कौं, कहुँ इहिं कारैं खाई।
हम आगैं आवति यह पाछैं, धरनि परी महराई।
सिर तैं गई दोहनी ढरि कै, आपु रही मुरझाई ॥[5]

मरण दशा का उदाहरण सूरसागर से डॉ० हरवंशलाल शर्मा, मुंशीराम शर्मा

---

१. सूरसागर, पद सं० ३८४४।
२. वही, पद सं० ४७२४।
३. वही, पद सं० ४७१९।
४. वही, पद सं० ३३७५।
५. वही, पद सं० १३६१।

ने अपने ग्रंथों में प्रस्तुत किया है जो कि उपयुक्त नहीं जान पड़ता। वस्तुतः मरण की दशा का उपयुक्त उदाहरण मर्यादा का उल्लंघन करता है।

सूर के वियोग-वर्णन की सफलता के कारण :

साहित्यिक परम्परा के अनुसार वियोग-वर्णन मुक्तक का क्षेत्र पाने पर अत्युक्ति कर जाता है। प्रवंध के वन्धन और विस्तार से वह जमकर बैठ नहीं पाता है। छिटपुट विखरा रह जाता है। मुक्तक का क्षेत्र उसके अनुकूल पड़ता है इसलिए अपनी पूर्ण शक्ति से वह उसमें बैठता है। इसी कारण मुक्तक लिखने वाले सूर और बिहारी का वियोग-वर्णन तुलसी और केशव से अधिक प्रभावशाली वन पड़ा है। उनके वियोग की उक्तियों की चुभन-शक्ति तीव्रतर होती गई है।

मुक्तकों में भी यदि वियोग को गीत का माध्यम मिल जाय तो वह अवश्य ही पराकाष्ठा तक पहुँच जाएगा। गीतों के माध्यम से अनुभूतियाँ सहज प्रवाह में अभिव्यक्त होती हैं। उनमें संवेग लगातार तीव्रतर होता जाता है। सूरसागर संगीत का भी अनुपम ग्रंथ है। उसमें गीत ही गाए गए हैं।

नारी का वियोग-वर्णन पुरुष की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। पुरुष अपनी पुरुषता के कारण वियोग-प्रवाह में उतनी सहजता के साथ नहीं प्रवाहित हो पाता है जितनी कोमल नारियाँ। सूरसागर में नारी का ही वियोग-वर्णन अधिक किया गया है। इसीलिए उसमें मर्मस्पर्शिता अधिक आ पाई है। कृष्ण का वियोग जो वर्णित भी है वह गोपियों के वियोग के सम्मुख फीका-सा है।

नारी का वियोग प्रायः दो प्रकार का होता है। एक प्रिय से मिलने के पूर्व का उसे पाने के लिए, दूसरा मिलनोपरान्त इससे विछोह होने से। पहले को काम-विरह, दूसरे को प्रेम-विरह कह सकते हैं। काम-विरह में इतना वेग नहीं हो सकता जितना प्रेम-विरह में। काम-विरह में पूर्व-परिचय के अभाव में हृदय साथ नहीं देता है परन्तु प्रेम-विरह में वह सदैव साथ लगा रहता है। सूर की गोपियों का विरह, काम-विरह नहीं प्रेम-विरह है। वे कृष्ण के साथ वचपन में खेली-खाई थीं। इसलिए उनके प्रेम में अधिक गहराई आ गई थी। इसी साहचर्यजन्य प्रेम के कारण उनका विरह अधिक अत्युक्ति कर गया है।

पति-पत्नी-सम्बन्धी धर्मगत प्रेम की अपेक्षा प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम अधिक बढ़ा-चढ़ा रहता है। प्रेमी-प्रेमिका को समाज का विरोध करने के कारण उनकी प्रेम-प्राप्ति में अधिक कष्ट लगा रहता है। इसीलिए उनकी वियोग की पीड़ा भी अधिक वेगवान होती है। स्वकीया की अपेक्षा परकीया की प्रेम-पीड़ा इसलिए अधिक पीड़क होती है। सूर की गोपियाँ परकीया हैं। यही कारण है कि उनका वियोग-वर्णन अधिक भनशील हो पाया है।

वियोग यदि एक व्यक्ति का हो तो वह कभी कम भी हो सकता है। परन्तु

सूर का वियोग-वर्णन तो असंख्य गोपियों का है इसलिए असंख्य विरह-प्रवाह के स्रोत मिलकर अथाह सागर का निर्माण कर दें तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

सूरदास जी ने अपने वर्णनों में बाधक साहित्यिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का परित्याग कर दिया है। इसलिए उनकी भावाभिव्यक्ति सहज रूप में हो पाई है। इसी कारण उनका वियोग-वर्णन भी अधिक प्रभावशाली हो पाया है।

आलम्बन वर्णन :

सूरदास के 'शृंगार के आलम्बन कृष्ण और गोपियाँ हैं। कृष्ण एक हैं गोपियाँ असंख्य। अध्यात्मिक दृष्टि से गोपियाँ आत्मा की प्रतीक हैं और कृष्ण परमात्मा के। यदि आध्यात्मिक दृष्टि को अलग रखकर केवल साहित्यिक दृष्टि से देखा जाय तो कृष्ण एक रसिक गोपाल के रूप में सामने आते हैं और गोपियाँ कमनीय रमणी के रूप में। कृष्ण का चरित्र एक रस-लोलुप विलासी नायक की तरह दिखाई देता है और गोपियों का कामासक्त प्रेम-विह्वल भोली-भाली नारियों की तरह। इन पात्रों का निर्माण सूर ने आध्यात्मिक धरातल से कम, साहित्यिक धरातल के लिए नहीं किया है। इनके चरित्र को साहित्यिक नायक नायिकाओं की दृष्टि से देखने पर सारी बातें स्वयं स्पष्ट हो जाती हैं।

सूर ने कृष्ण को परम ब्रह्म परमात्मा मानकर भी उनका ललित आचरण साहित्यिक कारणों से भी दिखाया है। शृंगारी नायक के जितने भी स्वरूप हो सकते हैं उन सबका समन्वित स्वरूप उन्होंने कृष्ण में ही केन्द्रित कर दिया है। उसके उदाहरण सूरसागर में भरे पड़े हैं। उदाहरण के लिए कुछ पद दिए जा रहे हैं जो विभिन्न नायकों के एक-एक उदाहरण हैं :—

अनुकूल नायक—

स्याम भए वृषभानु सुता-बस, और नहीं कछु भावै (हो)।
जो प्रभु तिहूँ भुवन कौ नायक, सुर-मुनि अंत न पावै (हो)।
जाकौ सिव ध्यावत निसि वासर, सहसानन जिहिं गावै (हो)।
सो हरि राधा-बन्दन-चन्द कौं, नैन-चकोर बसावै (हो)।
जाकौ देखि अनंग अनंगत, नागरि छवि भरमावै (हो)।
सूर स्याम स्याम बस ऐसें ज्यौं संग छाँह डुलावै (हो)।।[1]

दक्षिण—

अब जुवतिन सौं प्रगटे स्याम।
अरस परस सबहिनि यह जानी, हरि लुबधे सबहिनि कै धाम।

---

१. सूरसागर, पद संख्या २६३८।

जा दिन जाकें भवन न आवत, सो मन मैं यह करति विचार ।
आजु गए औरहि कहूँ कै, रिस पावति कहि बड़ लबार ।
यह लीला हरि के मन भावत, खंडित वचन कहत सुख होत ।
साँझ बोल दै जात सूर प्रभु, ताकैं आवत होत उदोत ।।[1]

धृष्ट—

स्याम हंसे प्यारी मुख हेरौ ।
रिसनि उठी झहराइ, कह्यौ यह वस कीन्हौ मन मेरौ ।
जाइ हंसौ पिय ताही आगें, मैं रीझी अति भारी ।
ऐसैं हंसि हंसि ताहि रिझावहु, देहु कहा अब गारी ।
होत अबार गवन अब कीजै, धरनी कहा निहारत ।
सूर श्याम मन की मैं जानी, ताके गुनहिं विचारत ।।

शठ—

आइ गई ब्रजनारि तहाँ ।
सौंह करत प्रिय प्यारी आगे आनन्द विरह महाँ ।
प्यारी हंसी देखि सखियन कौं, अंतर रिस है भारी ।
नैन सैन दै अंग दिखावति, पिय सोभा अधिकारी ।
स्याम रहे मुख मूंदि सकुचि कै, जुवति परस्पर हेरैं ।
सूरदास प्रभु अंग अनूप छबि कहँ पायी किहि केरै ।।[2]

वचन चतुर—

आजु रैनि हरि कहाँ गंवाई ?
लटपटी पाग उनींदे लोचन, छाँड़ि कुंवर हम सौं चतुराई ।
नंद बवा की गाइ चरावत एक धेनु सो या नहि आई ।
ढूंढ़त ढूंढ़त सब ब्रज ढुंढ्यौ भोर भए बृन्दावन पाई ।
मोर मुकुट मुरली पीताम्बर, एक वरन की बीस बनाई ।
सूरदास प्रभु प्रिया मिलन कौं, अकथ कथा गोपाल सुनाई ।।[3]

क्रिया चतुर—

तब हरि रच्यौ दूती रूप ।
गए जहँ मानिनी राधा त्रिया स्वाँग अनूप ।

---

१. सूरसागर, पद सं० ३०९४ ।
२. वही, पद सं० ३१७९ ।
३. वही, पद सं० ३२५० ।

जाइ बैठे कहत मुख यह तू इहाँ बंन स्याम ।
... ...
सुनति है कछु बचन राधा सूर प्रभु वन धाम ।।[1]

इसी प्रकार के अनेक पद जो विभिन्न नायकों के उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं, सूरसागर में भरे पड़े हैं ।

नायिका-भेद :

सूरसागर के प्रधान स्त्री पात्र राधा और गोपियाँ हैं । इन्हीं को सूर ने इस प्रकार अपने सागर में दर्शाया है कि साहित्यशास्त्र की सभी प्रकार की नायिकाओं का स्वरूप चित्रित हो जाता है । नायिका-भेद का उदाहरण प्रस्तुत करना तो उनका लक्ष्य नहीं था परन्तु नायिका-भेद की सारी जानकारी उन्हें थी और उसका सही उपयोग भी उन्होंने किया है । कुछ पदों की तो रचना ऐसी की गई है मानो वे नायिका-भेद के उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किए गए हों । कुछ ऐसे ही उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

वासकसज्जा—

राधा रचि रचि सेज संवारति ।
तापर सुमन सुगंध बिछावति बारम्बार निहारति ।
... ...
ईंहि अभिलाखहि मैं हरि प्रगटे, निरखि भवन सकुचानी ।
वह सुख श्री राधा माधौ को सूर उनहि जिय जानी ।।[2]

उत्कंठिता—

साँझहि तैं हरि-पंथ निहारै ।
ललिता रुचि करि धाय आपनै सुमन सुगंधनि सेज संवारै ।
कबहुँक होति वारनै ठाढ़ी कबहुँक गनति गगन के तारे ।।[3]

अथवा

ललिता तमचुर-टेर सुन्यौ ।
वै बहुनायक अनत लुभाने, नहिं आए जिय कहा गुन्यौ ।
बिनु कारन दै आस गए पिय वार वार तिय सीस धुन्यौ ।
... ...

१. सूरसागर, पद सं० ३४३१ ।
२. वही, पद सं० २६४७ ।
३. वही, पद सं० ३०९७ ।

सूर स्याम यातैं नहिं आए, मातु पिता को त्रास धर्‌यौ ॥[1]

गुप्ता—

ग्वालिनि उरहन कैं मिस आई।
नंदनंदन तन मन हरि लीन्हौ, बिन देखे छिन रह्यौ न जाई।
सुनहु महरि अपने सुत के गुन, कहा कहौं किहि भाँति बनाई।
चोली फारि हार गहि तोर्‌यौ, इन बातनि कहौ कौन बढ़ाई ॥[2]

वचन-विदग्धा—

नन्द बवा की बात सुनौ हरि।
मोहि छाँड़ि जौ कहूँ जाहुगे ल्याऊँगी तुमकौं धरि।
भली भई तुम्हें सौंपि गए मोहिं, जान न दैहौं तुमकौं।
बाँह तुम्हारी नैकु न छाँड़ौं, महर खीझिहैं हमकौं।
सूर स्याम नागर नागरि सौं करत प्रेम की घातैं ॥[3]

क्रिया-विदग्धा—

चली बन मौन मनायौ मानि।
अंचल ओट पुहुम दिखरायौ धर्‌यौ सीस पर पानि।
ससि तन चितैं, नैन दोउ मूंदे, मुख महँ अंगुरी आनि।
यह तौ चरित गुप्त की बातैं, मुसुकाने जिय जानि।
रेखा तीनि भूमि पर खाँची, तृन तोर्‌यो कर तानि।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बिलसहु स्याम सुजान ॥[4]

खंडिता—

ऐसो कहौ रंगीले लाल।
जावक सौं कहं पाग रंगाई, रंगरेजिनी मिली कोउ बाल।
वंदन रंग कपोलनि दीन्हौ अरुन अधर भए स्याम रसाल।
माला कहाँ मिली बिनु गुन की उर इत देखि भई बेहाल ॥[5]

---

१. सूरसागर, पद सं० ३०६८।
२. वही, पद सं० ६२१।
३. वही, पद सं० १२६६।
४. वही, पद सं० ३२२१।
५. वही, पद सं० ३१०३।

विप्रलब्धा—

राधा चकृत भई मनमाहीं।
अबहीं स्याम द्वार ह्वै झाँके, ह्याँ आए क्यों नाहीं।
आपु न आइ तहाँ जो देखैं, मिले न नन्दकुमार।
आवत ही फिरि गए स्याम-घन अति भयौ विचार।
... ...
इक अभिमान हृदय करि बैठी एते पर झहरानी।
सूरदास प्रभु गए द्वार ह्वै, तब व्याकुल पछतानी ॥[१]

इसी प्रकार सूरसागर में प्राय: सभी प्रकार की नायिकाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं है। वस्तुतः नायिका-भेद का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए सूरसागर रीतिकालीन ग्रंथों से सभी दृष्टियों से उत्तम पड़ेगा। सूरसागर जैसे काव्य के प्रणेता सूरदास-सदृश कलायुक्त भावयुक्त भावप्रवण पद रीतिकाल के कवियों के पास कहाँ है।

रूप-वर्णन :

सूरदास जी ने स्त्री और पुरुष दोनों का रूप-वर्णन किया है। इनके प्रिय पात्र राधा कृष्ण रहे हैं। इसलिए जगह-जगह अवसर निकाल कर उनका रूप-चित्रण करने में ये लग जाते रहे हैं। रूप-वर्णन में राधा-कृष्ण की अपने मानस की मूर्ति को इन्होंने सार्थक किया है। यहाँ इनका उद्देश्य रीति-कवियों की भाँति किसी सामन्त की भोगवृत्ति को न जगाना रहा है, न धन कमाना और न अपनी अतृप्त भोग-वासनाओं को इसी बहाने तृप्त करना। इनका उद्देश्य अपने आराध्य देव की लोक-लीलाओं को इस ढंग से व्यक्त करना रहा है जिसमें अनुपम साहित्यिक सर्जना हो। इसी कारण साहित्य के जिस पक्ष को इन्होंने ग्रहण किया उसका पूर्ण रूप प्रस्तुत किया। शृंगार का कोई कोना इनसे अछूता न रहा।

सूर के रूप-वर्णन की विशेषता यह रही है कि पुरुष के सौन्दर्य को इन्होंने स्त्री की आँखों से और स्त्री के सौन्दर्य को पुरुष की आँखों से देखा है। रीति-कवियों की भी यही विशेषता रही है। राधा को कृष्ण कैसे लगते रहे हैं और कृष्ण को राधा कैसी लगती रही है, ये ही भाव इनके रूप-वर्णन में अति प्रधान है। कृष्ण का रूप-वर्णन करते हुए आरम्भ में ही कवि कहता है—

स्याम हृदय वर मोतिन माला। विथकि भई निरखि व्रज बाला ॥[२]

इसी प्रकार राधा के रूप को देखकर कृष्ण भी कहीं विमोहित, कहीं लज्जित,

---

१. सूरसागर, पद सं० २६६३।
२. वही, पद सं० १२४३।

कहीं विह्वल हो जाया करते हैं।

पुरुष के रूप-वर्णन में सूर ने कृष्ण का रूप-वर्णन किया है जिससे रूप के चित्रण पर कवि की दृष्टि कम रही है उसके प्रभाव-प्रदर्शन पर अधिक। कृष्ण को परमात्मा का प्रतिरूप मानने के कारण कवि ने ऐसा किया है। इसी कारण ऐसा जान पड़ता है कि मानो कृष्ण के अंग-अंग में सूर्य इस प्रकार उदित हो गए हैं कि शशि एवं काम भी उनकी शोभा देखकर लज्जित हो रहे हैं। आँख, कान, नाक आदि की उपमाएँ तो कवि ने परम्परा से ही ग्रहण करके दी है परन्तु उनका प्रभाव ऐसा दिखाया है कि विमोहित होकर चल, अचल और अचल चल हो गए। देवगण उन्हें देखकर पुष्पांजलियों की वर्षा करने लगे।[1] मोहन के श्याम रंग पर पीला पीतांबर अत्यधिक शोभायमान है। ऐसा जान पड़ता है कि कृष्ण के श्याम शरीर-रूपी अगाध सिन्धु के मध्य पीली-पीली तरंगें तरंगायमान हैं। इधर-उधर देखते उनका चलना ऐसा जान पड़ता है मानो शरीर-सिंधु में सर्वत्र भँवरें पड़ी हों। उनके नेत्र मीन के समान, कुँडल मकर के समान और भुजाएँ भुजंग के सदृश हैं। गले में लहराती मौक्तिकमाला सुरसरि-सी मिल गयी हों। मणियों से जटित कनकाभूषण शरीर की शोभा और अधिक बढ़ा रहे हैं। मुखमंडल पर झलकते श्रमकण ऐसे जान पड़ रहे हैं मानो सागर को मथकर शशि और सुधा निकाल बाहर लाए गए हों।[2] कृष्ण के रूप-वर्णन में उनकी विभिन्न मुद्राओं का कवि ने अत्यंत मनोहारी चित्रण किया है। उनके चरवाहे स्वरूप पर कवि की आत्मा रीझती रही है इसलिए उनके इस स्वरूप का स्वाभाविक वर्णन बड़ा ही हृदयग्राही है। कृष्ण का लाठी में पैर लपेट कर एक पैर से खड़ा होना तथा कभी कंधे पर लाठी रखकर उस पर से दोनों हाथों को झुलाना कवि की ग्रामीण जीवन की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचायक है।[3]

कृष्ण के रूप-वर्णन में कवि ने सर्वाधिक रुचि उनके मुरलीधर स्वरूप के चित्रण में दिखाई है। कृष्ण के मुरली धारण करते ही विधि का सारा विधान ही अव्यवस्थित हो उठता है। परन्तु यह प्रभाव मुरली के स्वर का होता है। मुरली के धारण करने पर उनका सर्वोत्तम स्वरूप त्रिभंगी मुद्रा का होता है। उनके इस स्वरूप पर गोपियों की व्याजोक्तियाँ सूरसागर की एक अनुपम निधि हैं।

कृष्ण के रूप-वर्णन में कवि ने अवस्थानुसार धारण करने वाले उनके आभूषणों का भी वर्णन किया है। बचपन में वे नूपुर और किंकिणी पहनते हैं तो बड़े होने पर पीतांबर, कानों में कुंडल, कंठ में कठुला और मोती की माला, भाल पर तिलक, सिर पर मयूर मुकुट, भुजाओं पर चंदन खौर, उंगुलियों में मुद्रिका आदि आभूषण

---

1. सूरसागर, पद सं० १२४४।
2. वही, पद सं० १२४६।
3. वही, पद सं० १२५०।

धारण करते हैं। रूप के प्रभाव को प्रदर्शित करने का लक्ष्य होने के कारण कवि अतिशयोक्ति का सहारा अधिक लेता है जिससे कहीं-कहीं बिम्ब ग्रहण की ओर पाठक का ध्यान नहीं भी जाता है, वह कवि की कल्पना में ही उलझा रह जाता है।

नारी-रूप-वर्णन में सूरदास ने गोपियों का रूप-वर्णन किया है। इन गोपियों में सर्वसुन्दरी राधा का स्थान सर्वोपरि है। राधा ही कृष्ण की सर्वश्रेष्ठ प्राणप्रिया है इसलिए उन्हीं की रूप-चर्चा सूरसागर में सर्वाधिक हुई है। राधा के रूप की जैसी आभा कवि द्वारा व्यक्त की गई है वह उसी के सामर्थ्य की बात है। वस्तुतः ब्रह्मा ने उसका निर्माण भी ऐसा ही किया था। रूप-सागर को मथकर निकाले हुए नवनीत से उस अनुपम सुन्दरी का निर्माण हुआ था। स्वर्णाभा-सी उसकी देह-द्युति की समता चन्द्रमा कभी भी नहीं कर सकता। खंजन, मीन तथा मृग से उसके नेत्रों की तुलना की ही नहीं जा सकती। वस्तुतः उसके किसी भी अंग की सही उपमा अप्राप्य है। उसका सौन्दर्य उसी के समान है।[1] उसकी अलकावली और केसर के तिलक के बीच सिन्दूर-बिन्दु ऐसा सुशोभित होता है मानो पूर्ण चन्द्र केशरूपी स्वरभानु से रणभूमि में लड़कर घायल होकर गिर पड़ा हो। कवि ने सिन्दूर-बिन्दु की उपमा घायल चन्द्रमा से देकर उसके गीलेपन को व्यक्त किया है। इसी प्रकार नायिका के कानों की वीरें काम के रथ-चक्र जैसी जान पड़ रही हैं। सीस फूल ऐसे जान पड़ रहे हैं मानो सर्प की मणि हों जो नायिका के सुहाग के लिए छत्र ताने हों। बाँकी भौंहें, चंचल नेत्र तथा मुक्ता-युक्त वेसर ऐसी जान पड़ रही हैं मानो मृगों ने पात्र में भरकर अमृत पीया, परन्तु न पी सकने पर ढरका दिया हो। अधर दंतावली एवं चिबुक के मध्य छोटा-सा तिल ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो भृंगी ने मुखमंडल को प्रकाशित कमल जानकर अपने बच्चे को सुला दिया हो। नगयुक्त सुगंधित काली कंचुकी ऐसी जान पड़ रही है मानो भवन में दीपक प्रज्ज्वलित होने पर अन्धकार उसकी शरण में आ गया हो। भुजाओं में नीले आभूषण ऐसे लग रहे हैं मानो भ्रमरावलियाँ हों।[2] इन वर्णनों में सूर ने रूप की अनुपम झाँकी प्रस्तुत की है।

स्त्री के सौन्दर्य का सर्वाधिक आकर्षक स्वरूप उसके शैशव और यौवन के संधिस्थल पर दिखाई देता है। सूरदास ने उसका भी बड़ा मनोहर चित्रण किया है। कृष्ण की क्रीड़ा-सरोवरी राधा में शैशव-जल लबालब भरा हुआ था परन्तु कुच-रूपी पर्वतों से यौवन सूर्य में प्रकट होकर उसे भरपूर सुखा दिया।[3] अर्थात् किशोरी राधा का चांचल्य कभी-कभी कुचों के प्रकट होने पर यौवन की गरिमा में परिवर्तित हुआ है।

रूप की सुकुमारता का भी सूर ने बहुत अच्छा वर्णन किया है। कृष्ण राधा के चरणों की सुकुमारता को समझ कर उनके लिए मार्ग में पुष्प-शैया बिछाते हैं और

---

१. सूरसागर, पद सं० १८१५।
२. वही, पद सं० ३२२९।
३. वही, पद सं० ३२३१।

उनमें से कलियों को चुन-चुन कर इस भय से निकाल देते हैं कि ये कहीं प्यारी के कोमल पदों में चुभ न जायँ।[1] इन वर्णनों में सूर ने राधा के रूप को कृष्ण की आँखों से देखा है। सौन्दर्याभिव्यक्ति की कवि की अटूट पिपासा इन वर्णनों से कभी तृप्त नहीं हुई है इसीलिए जगह-जगह अवसर पाते ही रूप का अनुपम चित्र खींच दिया है।

नखशिख-वर्णन :

रूप-वर्णन के प्रसंग में सूर ने राधा और कृष्ण दोनों के प्रायः शिखनख-वर्णन किए हैं। अंगों के वर्णन में कवि ने परम्परित उपमानों का ही सहारा लिया है। पूरे सूरसागर में कवि ने सौन्दर्य का समन्वित स्वरूप चित्रण करने की अपेक्षा क्रमशः अंगों का शिखनख-वर्णन अधिक किया है। रूप-वर्णन में प्रसंगतः कवि ने अंगों को गिनाना आरम्भ किया है। इस प्रवृत्ति के कारण पुनरावृत्ति अधिक हुई है फिर भी अलग-अलग पदों की अपनी अलग-अलग अद्वितीय विशेपताएँ हैं। किसी भी अंग के वर्णन में कवि ने नए उपमान का प्रयोग तो नहीं किया है परन्तु पुराने उपमानों द्वारा ही नया प्रभाव व्यक्त किया है। कृष्ण और राधा दोनों के एक-एक अंगों के वर्णन के लिए कई-कई पद लिखे गए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि अपनी अभिव्यक्ति से कवि तृप्त न होकर सुन्दर से सुन्दरतर स्वरूप चित्रण की बार-बार चेष्टा की है। कृष्ण की रोम-राजि, भुजाओं, मुखमंडल आदि के लिए अनेक पद लगातार कवि ने लिखे हैं।[2] इसी प्रकार राधा के एक-एक अंग के लिए अनेक पद लिखे गए हैं।[3]

राधा के अंगों में सर्वाधिक आकर्षक उसके चंचल नेत्र दिखाए गए हैं। वे इतने विशाल तथा नोकीले हैं कि कृष्ण के हाथों में आँखमिचौनी के समय समाते तक नहीं हैं।[4] कवि ने अनेक उपमानों से उसे व्यक्त किया है परन्तु उसे अपनी अभिव्यक्ति से सन्तुष्टि न हो पाई। इसीलिए कहीं कहता है 'राधे तेरे नैन किधौं मृगवारे' तो कहीं कहता है 'राधे तेरे नैन किधौं री बान' और पुनः कहता है 'राधे तेरे नैन किधौं बटपारे।'[5] राधा का घूँघट-पट यदि कभी अनायास ही हट जाता है तो भी अनहोनी घटनाएँ होकर रहती हैं। मृगों की चौकड़ी भूल जाती है, कमल संकुचित हो जाते हैं, कमलिनी फूल उठती है, उसकी भौंहों को देखकर लज्जा के मारे कामदेव का मन कम्पित हो उठता है, हाथ से धनुप छूटकर गिर जाता है, उसको धारण करने वाली उसकी भुजाएँ लूली हो जाती हैं, रति का सारा गर्व चूर हो जाता है और वह राधा

१. सूरसागर, पद सं० ३२३४।
२. वही, पद सं० १२४२-६२।
३. वही, पद सं० ३२२८-३८।
४. वही, पद सं० १२६३।
५. वही, पद सं० ३२२८।

का पाँव पलोटने लगती है।[1] इसी प्रकार नेत्रों के वर्णन में कवि ने अनूठी कल्पनाएँ की हैं।

राधा के शिखनख-वर्णन की सूर की कुछ उक्तियाँ बड़ी ही मार्मिक हैं जो हिंदी संसार में अपना अनुपम स्थान रखती हैं। नेत्रों की चंचलता का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि मुखमंडल-रूपी सरोवर में नेत्र-रूपी चंचल मीन विहार करते हुए कर्णफूल को चारा समझ कर बार-बार उसी ओर लपक रहे हैं।[2] इस प्रकार सरस नेत्रों का श्रवणों की ओर विस्तार तो व्यक्त होता ही है साथ-ही-साथ युवती के चंचल नेत्रों की लहरियाँ भी झलकती हैं जो सर्वाधिक आकर्षक हैं।

चिबुक का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नायिका के मुखरूपी चन्द्रमा से सुधा द्रवित होते-होते बूंद-रूप में रुक गया है वही उसकी ठोड़ी है जो कि सौन्दर्य का सार है।[3] इसका तात्पर्य है कि मुखचन्द्र में सुधा इतनी अधिक भर गई है कि नीचे की ओर चूना ही चाहती है।[4]

नायिका के आभूषण में लगी हुई मुक्ताएँ ऐसी जान पड़ रही हैं मानो प्रभात-कालीन ओस-कण हों। वस्तुतः नायिका के अधरामृत के लिए मुक्ता ने अपने को बेच डाला। इस पर भी लक्ष्य की प्राप्ति न हुई तो तदुपरान्त अपने हृदय में छिद्र करवा कर अधोमुख होकर उसकी प्राप्ति के लिए तपस्या कर रही हो।[5] मुखमंडल में दन्तावलियों की शोभा दिखाते हुए कवि ने कहा है कि मानो चन्द्रमा के मध्य वंदन में जटित सौदामिनी के बीज बोए गए हों।[6]

नारी का अस्त-व्यस्त स्वरूप पुरुषों को विशेष आकर्षित करता है इसलिए सूर ने उसका भी अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है। इसके अच्छे उदाहरण जल-विहार-प्रसंग में दर्शनीय है।[7] राधा के बिखरे हुए केशों से कुचों पर टपकती हुई जल-बिन्दु ऐसी जान पड़ रही है मानो राहु कनक-गिरि से अमृत की धारा गिरा रहा हो।[8] इसी प्रकार कंदुक-क्रीड़ा के समय राधा की फटी हुई कंचुकी पर कवि कहता है—'कुचों से सटी हुई फटी श्याम कंचुकी से अनियारे कुच झाँक रहे हैं मानो नव जलद ने चन्द्रमा को बाँध रखा हो और अनियारी नभ कसली निकल पड़ी हो।'[9] इसी

---

१. सूरसागर, पद सं० ३३५९।
२. वही, पद सं० ३२२८।
३. वही।
४. वही, पद सं० ३२२८।
५. वही, पद सं० ३२३१।
६. वही, पद सं० ३२३१।
७. वही, पद सं० १७७६-८५।
८. वही, पद सं० १७८४।
९. वही, पद सं० १८१२।

प्रकार सर्वत्र सूर के नखशिख-वर्णन में परम्परित उपमानों का ही प्रयोग होते हुए भी भाव-प्रवणता की कमी नहीं है।

नायिका के रूप-वर्णन में उसकी सौन्दर्य-वृद्धि के लिए उसके अनुकूल वस्त्राभूषणों का भी वर्णन कवि ने किया है। गोरे रंग पर नीला वस्त्र विशेष अच्छा लगता है इसलिए नीली कंचुकी, नीली साड़ी को कवि ने अधिक प्रयोग में दिखाया है। इसके अतिरिक्त रेशमी, पीली, श्वेत, अरुणिम आदि साड़ियों और लंहगों का भी प्रयोग कवि ने किया है।[1] आभूषणों के वर्णन में सिर पर सीसफूल, कानों में कर्णफूल तथा वीरी, नासिका में मुक्तायुक्त केसर, मुख में तमोल, गले में गजरा, मोती की माला, कंठश्री, कुचों पर नगयुक्त कंचुकी, कुंकुम, कमर में किंकिणी, फूंदा, भुजाओं में कंकन, वाजूबंद, पगों में नुपूर आदि का वर्णन कवि ने किया है। इन आभूपणों की शोभा नायिका के शृंगार के अवसरों पर तो दिखाई ही गई है इसके अतिरिक्त सम्भोग के वाद की अलसाई स्थिति में इनका अत्यंत आकर्षक स्वरूप चित्रित किया गया है, जहाँ सारी अस्त-व्यस्त, कंचुकी फटी, कुच घायल, माला विदीर्ण तथा अंग शिथिल दिखाए गए हैं।

उद्दीपन :

सूरसागर में उद्दीपन-वर्णन के अन्तर्गत सौन्दर्यगत, चेष्टागत, प्रकृतिगत एवं दूतीगत सभी प्रकार के सरस वर्णन किए गए हैं।

सौन्दर्यगत—सौन्दर्यगत उद्दीपन के वर्णन सूरसागर में कम नहीं हैं। राधा-कृष्ण की चेष्टाओं में उनका सौन्दर्यगत आकर्पण निहित है। फिर भी सूर के सागर में ऐसे वर्णनों की कमी नहीं है जहाँ विना किसी प्रकार की चेष्टा के ही केवल प्रिय के सौन्दर्य-मात्र से ही आश्रय में शृंगार भाव उद्दीप्त हो उठा है। माखन चोरी के अवसर पर कृष्ण के चंचल स्वरूप को देखकर गोपियों का प्रेम प्रकट करना ऐसे ही वर्णनों के अन्तर्गत आएगा। कृष्ण ने ग्वालिनों के घर चोरी से मक्खन खाना आरम्भ कर दिया है। उनके इस स्वरूप पर गोपियों में खीझ नहीं रीझ ही पैदा होती है। गोपियाँ उनके इस स्वरूप को देखने के लिए ललचती रहती हैं।[2] इतना ही नहीं कृष्ण की माखन-चोरी की प्रवृत्ति जानकर गोपियाँ मन-ही-मन यह अभिलाषा करती हैं कि यदि मेरे घर माखन खाने आते और उनको अचानक पा जाती तो उनकी भुजाओं से अपने वक्ष:स्थलों का स्पर्श कराती और माखन खाने की पूरी छूट दे देती।[3] एक नायिका कृष्ण के रूप पर मुग्ध होकर सूने घर में पाकर अपने कठोर कुचों के

---

१. सूरसागर, पद सं० १४०२।
२. वही, पद सं० ८९२।
३. वही, पद सं० ८९०।

बीच उन्हें दबा लेती है जिससे उसकी कंचुकी दरक जाती है।[1]

मुरली के प्रसंग में कृष्ण के स्वरूप पर गोपियाँ रीझी हुई दिखाई देती हैं। उनके एक-एक अंग पर वे अपने को न्योछावर करती हैं।[2] क्षण-क्षण में कृष्ण का रूप उन्हें बदलता दिखाई देता है। उस रूप-सौन्दर्य की सीमा आँकने के लिए उनके साथ लगकर गोपियाँ प्रयास करती हैं परन्तु असमर्थ हो जाती हैं। वस्तुतः करोड़ों अनंग को मात करने वाले कृष्ण के रूप की सीमा वाणी व्यक्त नहीं कर सकती है।[3] इसी रूप पर आसक्त होकर गोपियाँ अपनी कामना व्यक्त करती हैं कि यदि विधाता मेरे अनुकूल होते तो अपने रोम-रोम में दृष्टि माँगती और सभी दृष्टियों से एकटक कृष्ण का रूप-पान करती रहती।[4] कृष्ण की रूप-स्मृति आने पर राधा मूर्तिवत हो जाती है, इस पर सखियाँ कहती हैं कि राधा न जाने किस अंग पर दृष्टि इस समय लगाए हुए है।[5] कृष्ण के रूप की लोभी गोपियों की आँखें स्वप्न में भी कृष्ण को देखती रहती हैं। उनकी मोहक मुद्रा उनके मानस में छाई रहती है। इसलिए वे उसे कभी भुला नहीं सकतीं। सूरसागर में ऐसे वर्णनों की मात्रा इतनी अधिक है कि यहाँ सबको समेटा नहीं जा सकता।

नायिका के सौन्दर्य का उद्दीपनकारी स्वरूप सूरसागर में अधिक है। कृष्ण भी स्वयं स्त्रियों के रूपामृत के प्यासे दिखाए गए हैं। यदि कहीं माखन चुराने जाते हैं और गोपी के स्वाभाविक सौन्दर्य पर दृष्टि पड़ जाती है तो उनका मन स्वयं गोपी द्वारा हर लिया जाता है।[6] ब्रज की गलियों में कृष्ण खेलने के लिए निकलते हैं अचानक उनकी दृष्टि अल्पवयस्क गोपी राधा पर पड़ गई जो नीला वस्त्र, कमर में फरिया पहने, वेणी को पीठ पर लहराते लड़कियों के साथ आ रही थी। रूप की ऐसी अनुपम झाँकी पाते ही कृष्ण उस पर रीझ गए। दोनों के नेत्रों ने एक-दूसरे को ठग लिया।[7] इस प्रकार नायिका के सुरूप मात्र से ही आकृष्ट होने की अनेक घटनाओं का वर्णन सूरसागर में किया गया है।

चेष्टागत—चेष्टागत उद्दीपन के अन्तर्गत नायक-नायिका के परस्पर प्रयत्नों का वर्णन किया जाता है जो एक-दूसरे से हृदय में रस-संचार करते हैं। सूरसागर में ऐसे वर्णनों की भरमार है। कृष्ण गोपियों को जितना अधिक छेड़ते हैं गोपियाँ उससे भी

---

१. सूरसागर, पद सं० ६१८।
२. वही, पद सं० १२५५।
३. वही, पद सं० १२५८।
४. वही, पद सं० १४६५।
५. वही, पद सं० २३८२।
६. वही, पद सं० ६१६।
७. वही, पद सं० १२६०।

अधिक उसका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए विह्वल रहती हैं, इसलिए चेष्टाएँ दोनों ओर से की गई हैं।

कृष्ण यमुना के किनारे युवतियों से छेड़-छाड़ करने के लिए बैठे रहते हैं। एक दिन एक सुन्दरी जल भरने के लिए आई। उसके रूप-सौन्दर्य से विमोहित होकर कृष्ण ज्योंही उसकी ओर बढ़े कि वह झमक कर चल पड़ी। कृष्ण ने पीछे से उसकी चोटी पकड़ ली, कुचों को स्पर्श कर आलिंगनपाश में आबद्ध कर लिया। युवती घबड़ा उठी। उसने भाई की दुहाई देकर भौंहें टेढ़ी करके कहा कि कोई दूसरी युवती देख लेगी। कृष्ण ने तो उसे छोड़ दिया परन्तु उसका मन हर लिया। वह ठिठकती अपनी लटों को बार-बार झटकती किसी प्रकार आगे बढ़ी परन्तु मार्ग ही भूल गई। किसी प्रकार घर तो पहुँच गई, परन्तु उस पर कृष्ण की मोहिनी लग गई। कृष्ण उसके चित्त से टलते ही नहीं थे।[१] उसने अपनी इस कहानी को सखियों को भी सुनाया। इसी प्रकार कभी-कभी कृष्ण ग्वालिनों को छेड़कर उनसे यौवन-दान माँगते थे।[२] ऐसे अवसरों पर उनका लम्पट स्वरूप सामने आता है। नायिका से यौवन-दान माँगते हुए कहते है कि यौवन-धन के ही आधार पर तुम किसी को कुछ नहीं समझती हो। ऐसा धन रख कर भी दान देने में इतराती हो तुम्हारे कंचन-कलश-रूपी कुच महारस से आपूरित हैं, उनसे बिना दान लिए मैं जाने न दूँगा।[३] इसी प्रकार कृष्ण कभी उनका आंचल पकड़ते हैं, कंचुकी फाड़ते हैं, मोती की माला विदीर्ण कर दिया करते हैं जिससे युवतियाँ कामासक्त हो जाती हैं। कृष्ण की सर्वाधिक उद्दीपनकारी चेष्टाएं जल-क्रीड़ा के समय देखने को मिलती हैं। स्नान करती हुई युवतियों की वे जाकर पीछे से पीठ मलने लगते है तथा चीर-हरण करते हैं।

जल-क्रीड़ा के समय नायक-नायिका दोनों की चेष्टाएँ दिखाई गई हैं। राधा और कृष्ण दोनों एक-दूसरे पर जल की बूँदें छिड़कते हैं।[४] अपने अंबुज-कर में भर-भर कर राधा कृष्ण पर जल फेंकती हैं जो ऐसा जान पड़ता है मानो कनकलता से मकरंद झर रहा हो। इस पर कृष्ण विमोहित होकर राधा को पकड़ लेते हैं।[५] राधा के शृंगार शिथिल हो जाते हैं फिर भी वे जल की बूँदें छिड़कती रहती हैं। कभी वे जंघे तक जल में ठिठक जाते हैं कभी दोनों प्रेमी अंक भरे अगाध जले तक चले जाते हैं। कभी कृष्ण राधा को और राधा कृष्ण को अपनी बाँहों में आबद्ध करते रहते हैं।[६] इस प्रकार जल-क्रीड़ा में परस्पर एक-दूसरे की चेष्टाएँ रस उद्दीप्त करती

१. सूरसागर, पद सं० २०६५-६६।
२. वही, पद सं० २०७६-६६।
३. वही, पद सं० २०८७।
४. वही, पद सं० १७७६।
५. वही, पद सं० १७७७।
६. वही, पद सं० १७७७-८५।

रहती हैं।

राधा की चेष्टाओं का वर्णन कवि ने अन्य-प्रसंगों में भी किया है। वह कृष्ण को गाय दुहने के लिए कभी सचेष्ट करती है अथवा अपने साथ खेलने के लिए रोकती है।[1] ऐसे अवसरों पर नायक-नायिका दोनों की वचन-चातुरी युक्त परस्पर चेष्टाओं का सरस वर्णन पाया जाता है। राधा का संकेत पाते ही कृष्ण भोजन छोड़कर ब्याई गाय का बहाना करते हुए चल पड़ते हैं।[2] अपनी साध की पूर्ति के लिए ही राधा कृष्ण के पास गाय दुहवाने जाती है। राधा की इस गुप्त भावना को कृष्ण भी अच्छी तरह जानते हैं इसीलिए किसी न किसी बहाने से उसके साथ तुरत हो लेते हैं। गाय दुहते समय दूध की एक धार राधा पर और एक दोहनी में कृष्ण मारते हैं। दुह लेने पर राधा की दोहनी ही कृष्ण नहीं देते। वह 'हा-हा' करती है। यह हा-हा की ध्वनि कृष्ण को इतनी प्रिय लगती है कि जब तक बार-बार उससे हा-हा नहीं करा लेते तब तक दोहनी नहीं देते हैं। इस प्रकार की परस्पर क्रीड़ाओं से दोनों के मन एक-दूसरे में उलझ जाते हैं।[3] इसी प्रकार पूरे सूरसागर में संयोग और वियोग दोनों के चेष्टागत उद्दीपन के वर्णनों की भरमार है। चेष्टा करने के लिए प्रेमियों को अनुकूल परिस्थितियाँ भी वन उपवन, नदी-तट आदि स्थानों पर मिल जाया करती रही हैं। सूर के इन वर्णनों से रीति कवियों को बहुत अधिक प्रेरणा मिली है।

दूती—प्रेमियों को मिलाने के लिए सूरदास ने दूतियों का भी प्रयोग किया है। इनकी दूतियाँ प्रायः नायिका की सखियाँ ही रही हैं जो दौत्य-कर्म में दक्ष दिखलाई गई हैं। ये सखियाँ प्रेमियों की मनःस्थिति को जानकर स्वयं दूती बन जाती रही हैं। वे कृष्ण को दुखी देखकर स्वयं राधा को मनाने चल देती रही हैं। बहुत कम स्थलों पर कृष्ण द्वारा ये भेजी गई हैं। राधा-कृष्ण को मिलाना ये अपना परम कर्त्तव्य समझती रही हैं। इसीलिए कृष्ण का गुण-गान राधा से और राधा का गुण-गान कृष्ण से कराना अपना पुनीत कर्त्तव्य मानती रही हैं। इन प्रेमियों की लीलाओं को देखकर उन्हें आनन्द मिलता रहा है इसीलिए वे ऐसा करती रही हैं।

दूतियों का स्वच्छंद प्रयोग कवि ने मान-वर्णन के प्रसंग में किया है। राधा के मान करते ही सखियाँ स्वयं दौत्य-कार्य में लीन हो जाती रही हैं। सखियों का झुकाव इनको संयुक्त करने की ओर सदैव रहा है क्योंकि इनके वियुक्त होते ही उनका भी आनन्द विलुप्त हो जाता रहा है। ये दूतियाँ इतनी नीति-कुशल होती थीं कि साम, दाम, दंड, भेद की सारी नीतियों को अपना कर प्रेमियों को मिलाने का कार्य करती थीं। इनके इन कार्यों का वर्णन भी मान-वर्णन में किया जा चुका है।

---

१. सूरसागर, पद सं० १२९४-९९।
२. वही, पद सं० २६००-३।
३. वही, पद सं० १३४६-५६।

सूर की दूतियों को अधिक श्रम राधा को मनाने में करना पड़ता रहा है। इसलिए कृष्ण द्वारा ही दूतियाँ अपनाई गई हैं, राधा द्वारा नहीं। राधा सदैव मान ही करती रही है। एक स्थल पर सखियों के निर्देश से कृष्ण को स्वयं नारी-रूप धारण करके दूती बनकर राधा को प्रसन्न करना पड़ा है।[1] इसी प्रकार सूर ने दूतियों का उन्मुक्त प्रयोग शृंगार के क्षेत्र में किया है।

प्रकृति-वर्णन—उद्दीपन के अन्तर्गत प्रकृति का चित्रण भी किया जाता है। सूर ने भी उद्दीपन के रूप में प्रकृति का वर्णन किया है परन्तु उनका वर्णन मात्र परम्परा के पालन के लिए नहीं बल्कि भाव-विस्तार के लिए किया गया है। कवि-परम्परा में प्रकृति संयोग में सुखदायिनी और वियोग में दुखदायिनी दिखाई जाती है। वर्षा ऋतु में राधा अलग कुंजों में उन्मुक्त विहार कृष्ण के साथ करती थी। उनके प्रेमाकर्षण को पावस की एक-एक बूँद उद्दीप्त करती रहती थी।[2] कृष्ण के दूर हो जाने पर वही पावस वियोगाग्नि को भयंकर रूप में प्रज्ज्वलित करने वाला हो जाता है।[3] जिस मधुवन के कुंजों में राधा-कृष्ण एक होकर क्रीड़ा किया करते थे। कृष्ण वृक्षों की शाखाओं के सहारे खड़े होकर वांसुरी बजाया करते थे उनके न रहने पर उनको हरा-भरा देखकर भी पीड़ा हो रही है।[4]

ऋतु-वर्णन—उद्दीपन के रूप में केवल वर्षा, शरद् और वसन्त ऋतुओं का वर्णन किया गया है। ये ही तीन ऋतुएँ भारत में सर्वाधिक सुखदायी होती हैं इसलिए सूर के वर्णनों के अनुकूल भी ये ही पड़ी हैं। इन ऋतुओं में भी वर्षा की ओर कवि की दृष्टि विशेष रही है। इन वर्णनों में कवि के प्राचीनकाल के ग्रामीण जीवन का सजीव चित्र खींचा है। एक बार काली घटा घिर आई, पवन झकझोरने लगा, विजली चमकने लगी इसलिए भयावह स्थिति देखकर नन्द जी ने राधा से कृष्ण को घर तक साथ ले जाने को कहा। युगल प्रेमियों को अच्छा अवसर मिल गया। घने वन में पहुँचते ही उनके अंग पुलकित हो उठे, मदन जग पड़ा।[5] इसका कारण यह था कि नए प्रेमियों का प्रेम नया था। इनके वस्त्र पीताम्बर और चूनरी नई, वन का कुंज नया, वर्षारम्भ की बूँदें नई और यमुना के पावन जल की उद्दीपनकारी शीतल लहरियाँ सभी ने एक साथ इकट्ठे होकर उनके मानस को झकझोर दिया।[6] वर्षा की उद्दीपनकारी स्थिति का ज्ञान कृष्ण की दूती भी राधा का मान दूर करने के लिए कराती है। वह राधा को समझाती है कि यह ऋतु मान करने का नहीं है। पृथ्वी के प्रेम के कारण मेघ वर्षा कर रहा है, ग्रीष्म ऋतु की तप्त लताएँ हरी-भरी होकर तरुवरों से लिपट गई हैं

---

१. सूरसागर, पद सं० ३४३१।
२. वही, पद सं० १३०३।
३. वही, पद सं० ३६२४।
४. वही, पद सं० ३८२८।
५. वही, पद सं० १३०२।
६. वही, पद सं० १३०३।

जल-विहीन सरिताएँ उमड़ती हुई सिंधु में विलीन होने के लिए जा रही हैं, तुम्हारा यह क्षणिक यौवन बादल की छाया की तरह शीघ्र ही विनष्ट हो जाएगा अतः इस ऋतु का आनन्द उठा, मान न कर।[1] वर्षा की मनोरम स्थिति को देखकर प्रिया-मिलन के लिए कृष्ण ने कुँजों में स्वयं कुटी का निर्माण करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने देखा कि घटाएँ घिर आईं, बक-पंक्ति चमकने लगीं, इन्द्र-धनुष अपना रंग दिखाने लगा, बिजली इस प्रकार चमकने लगी मानो काम-विकल कामिनी हो, चातक-मोर शोर करने लगे इसीलिए स्वयं प्रेम-कुटी का निर्माण करने लगे।[2]

राधा-कृष्ण के एक साथ रहने पर उनकी उन्मुक्त लीलाओं को वर्षा ऋतु अत्यधिक मनोहारी बना देती है। युगल प्रेमियों का प्रेमाकर्षण बहुत अधिक बढ़ जाता है। ऐसी परिस्थिति के अद्भुत चित्र सूरसागर में मिलते हैं। एक बार वनभूमि में राधा-कृष्ण विचरण कर रहे थे। अचानक पुरवा हवा के साथ बादल इधर-उधर दौड़ पड़े, शीतल बूँदें टपकने लगीं, अमराइयों से भी बूँदें टपकने लगीं। राधा को भींगते और काँपते देखकर कृष्ण ने अपनी कमरी ओढ़ा कर उन्हें गले से लगा लिया। मेघा-डंबर को देखकर राधा अकुलाती थीं फिर भी दोनों हँस-हँस कर एक-दूसरे पर रीझे हुए पीताम्बर के नीचे बैठे रहे।[3] जैसे-जैसे बूँदें राधा की चूनरी पर पड़ती थीं वैसे-वैसे उसका सौन्दर्य निखरता जाता था इसलिए कृष्ण बार-बार रीझ कर उन्हें गले लगाते थे। दोनों प्रेमी एक-दूसरे पर ऐसे रीझे थे कि जब पवन का झकोर आता वृक्ष तिरछे से हो जाते तो कृष्ण अपना पीताम्बर राधा को और राधा अपनी चूनरी कृष्ण को ओढ़ा देती थीं।[4] इसी प्रकार वर्षा में संयोग की उद्दीपनकारी स्थिति का बड़ा मनोहारी वर्णन सूरसागर में किया गया है।

वर्षा ऋतु का वर्णन संयोगावस्था की अपेक्षा वियोगावस्था में पावस प्रसंग के अन्तर्गत अधिक हुआ है। वस्तुतः वियोग में पावस ही सर्वाधिक कष्टकारी होता है। राधा कहती है कि शरद्, शिशिर तथा वसन्त बीत गए। प्रिय के पास आने की अवधि भी बीत गई, नेत्रों में दुःख के बादल घिर-घिर कर बरस रहे हैं, सजल धार प्रवाहित है, काजल और कुंकुम कीचड़ बन कर बह रहे हैं फिर भी कृष्ण नहीं आए। वस्तुतः वर्षा ऋतु रूठने की नहीं है जब कि काली घटा दुष्ट पवन के साथ लता-वृक्षों को झकझोर रही हो, दादुर, मोर, चकोर, पिक, मधुप गुंजार कर रहे हों उस समय प्रिय का रूठना अच्छा नहीं है।[5] काली घटा वियोगिनी को काम-नृपति की

१. सूरसागर, पद सं० ३३६३।
२. वही, पद सं० १८०६।
३. वही, पद सं० १६०८-९।
४. वही, पद सं० २६१०।
५. वही, पद सं० ३६१५-१६।

सुसज्जित सेना की भाँति जान पड़ रही है जो समस्त ब्रज का विनाश करने के लिए चढ़ाई कर रही है।[1] वियोग की असह्य अवस्था में राधा को निराशा में भी आशा हो रही है इसीलिए काली घटा को देखकर वह सोचती है कि सम्भवत: अपने दुखी जनों की सन्तुष्टि के लिए कृष्ण स्वयं मेघ बनकर गगन में छा गए हैं।[2] झुँझलाकर नायिका कहती है कि क्या कृष्ण के देश में बादल नहीं गरज रहे होंगे ? क्या पावस के सहयोगी पशु-पक्षी उस देश में मार डाले गए हैं ? क्या सखियाँ वहाँ झूला भी नहीं झूलती होंगी ? यदि इस ऋतु में भी कृष्ण नहीं आए तो वे बाद में हमारे किस काम आवेंगे ? अपनी असहाय अवस्था में नायिका क्षण-क्षण घर के भीतर-बाहर झाँका करती है, तारे गिनते सारी रात बिताती है, हमेशा प्रिय का नाम ही जपा करती है अब तो उसका अस्थिपंजर मात्र ही शेष रह गया है। फिर भी कृष्ण न जाने क्यों नहीं आते हैं।[3] पावस को पसन्द करने वाले प्रसिद्ध पक्षी मोरों की शोर सुनकर नायिका कहती है कि ये मोर विरहिणियों को पावस की बीहड़ सेना से सावधान होने के लिए पर्वत की चोटियों से पुकार रहे हैं कि 'विरहिन सावधान ह्वै रहिया, सजि पावस दल आयौ।'[4] इनसे खीझकर फिर नायिका कहती है कि इन मोरों को कोई मना भी नहीं करता है ये मेरे वैर पड़े है।[5] पपीहे की पी-पी की ध्वनि उसे इतनी प्रिय लगती है कि वह कहती है 'सखी री चातक मोहिं जियावत'। उसे आशीर्वाद देती है कि 'बहुत दिन जिवौ पपीहा प्यारौ।' उसकी दर्दनाक आवाज सुनकर उसे भ्रम होता है कि यह पपीहा नहीं है कोई विरहिणी पी-पी पुकार रही है।[6] इस प्रकार वर्षा ऋतु का उद्दीपन के रूप में अत्यन्त मार्मिक चित्र सूर ने खींचा है।

वर्षा के बाद शरद् ऋतु का आगमन होता है। इस समय आकाश स्वच्छ रहता है जिससे चाँदनी की शोभा सर्वाधिक रमणीय होती है। शिशिर के आगमन की सूचना शरद् चाँदनी की शीतलता से होती है। इसलिए यह ऋतु अत्यन्त सुहावनी हो जाती है। इस ऋतु का भी उद्दीपन के रूप में सूर ने वर्णन किया है। शरद् की शुभ्र चाँदनी में यमुना के तट पर जब शीतल मंद-सुगन्ध पवन का स्पर्श राधा-कृष्ण के अंगों में हुआ तो वे आत्मविभोर होकर आलिंगनपाश में आबद्ध होकर नाच उठे। उनकी इस शोभा का वर्णन अकथनीय है।[7] जब कभी घने वृन्दावन से शरद् की रात्रि कृष्ण को बाँसुरी का आनन्द लेने के लिए बाध्य करती थी तो व्रजांगनाएँ कामातुर होकर

---

१. सूरसागर, पद सं० ३६२२।
२. वही, पद सं० ३६२६।
३. वही, पद सं० ३६२७-२८।
४. वही, पद सं० ३६४६।
५. वही, पद सं० ३६४७-४८।
६. वही, पद सं० ३६५२-५५।
७. वही, पद सं० १७५६।

उसी ओर दौड़ पड़ती थीं ।[1] उनका धैर्य समाप्त हो जाता था ।

शरद् का उद्दीपनकारी वर्णन गोपियों की वियोगावस्था में भी कवि ने खूब किया है । शरद् ऋतु में आकाश स्वच्छ हो गया, कास फूल उठी, सर-सरिताओं के निर्मल जल में कमल फूल गए, उन पर भौंरे गुंजार करने लगे, स्वच्छ चाँदनी निखर उठी जो नायिका को वियोग के कारण सूर्य से भी अधिक तप्त जान पड़ रही है फिर भी कृष्ण नहीं आए । उनके पैरों पर गिरने तक की पूर्व स्मृति उसे और अधिक सता रही है ।[2] इस प्रकार नायिका को शरद् किसी भी ऋतु से कम कष्टकर नहीं है । शरद् के चन्द्रमा को उपालंभ देती हुई कहती है—

छूटि गई ससि सीतलताई ।
मनु मोहिं जारि भसम कियौ चाहत साजत सोइ कलंक तनु काई ।।[3]

फिर चिढ़ कर कहती है कि 'यह ससि सीतल काहै कहियत ।' इस प्रकार संयोग और वियोग दोनों स्थितियों का शरद् की उद्दीपनकारी स्थिति का वर्णन सूर ने किया है ।

शरद् के वाद वसंत का मादक वातावरण गोपियों के शृंगार भाव को उद्दीप्त करता रहा है । वसंत-वर्णन के लिए कवि ने लगभग सौ पदों को लिखा है ।[4] इनमें फाग, होली आदि का भी सरस वर्णन किया गया है । इस ऋतु में फूलने वाले वेला, केतकी, चमेली आदि पुष्पों तथा मादक पवन का भी कवि ने वर्णन किया है । वसंत के आने पर मदन जोर पकड़ने लगा, चन्द्रमा अपनी सोलहों कला के साथ उदित हो गया, कोयल और भौंरे गुँजार करने लगे, शीतल मंद-सुगंध पवन संचरित होने लगी ऐसी स्थिति में काम के संताप से राधा रानी ही कृष्ण को वचा सकती है ।[5] इस प्रकार वसंत में काम जगने के अनेक पद सूर ने गाए हैं ।[6]

वसंत के प्रसंग में होली का सरस वर्णन कवि ने किया है । युवक और युवतियाँ आनन्दमग्न होकर मृदंग, झाँझ, डफ, ढोल आदि वजाती और गाती हैं । केसर, कुंकुम और अवीर का खिलवाड़ खूव करते हैं । गोपियों को फाग के वहाने कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करने का अवसर मिल जाता है ।[7] होली के अवसर पर होने वाली हुल्लड़वाजी का भी अत्यन्त ध्वन्यात्मक ढंग से कवि ने चित्र खींचा है ।

---

१. सूरसागर, पद सं० ३४६१-३५३६ ।
२. वही, पद सं० ३६६१-६२ ।
३. वही, पद सं० ३६६६ ।
४. वही, पद सं० ३४६१-३५३६ ।
५. वही, पद सं० ३४६४ ।
६. वही, पद सं० ३४६५-७० ।
७. वही, पद सं० ३४७८ ।

हो हो हो हो हो हो होरी ।
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ, बीच-बीच बाँसुरि-धुनि थोरी । हो० ।
गावत दै-दै गारि परस्पर, उत हरि इत वृषभानु किसोरी ।
... ...
सूरदास सारदा सरल मति सो अवलोकि भूलि भई भोरी ।। हो हो० ।।[१]

इन पंक्तियों की ध्वनि से ही अर्थ इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है मानो सचमुच होली इसी समय हो रही है ।

सूर के प्रकृति एवं ऋतु-वर्णन के देखने से स्पष्ट है कि इनमें वर्णन की विविधता का अभाव है। इन्होंने प्रकृति को अपने भावों एवं कल्पनाओं को विस्तार प्रदान करने के लिए ग्रहण किया है। मात्र प्रकृति-वर्णन करने या प्रकृति को केवल नायिका के काम को उद्दीप्त करने के उद्देश्य से इन्होंने नहीं अपनाया है। प्रकृति भाव-साम्य एवं उसकी गहराई को दिखाने के लिए सामने लाई गई है जिसमें सूर की सफलता अद्वितीय है । प्रकृति का जो स्वरूप इन्होंने दिखाया है उसकी जितनी भी सराहना की जाय, कम ही होगी ।

अनुभावादि वर्णन :

सूर-साहित्य में अनुभाव एवं संचारी भावों के भी सुन्दर चित्र मिलते हैं । राधा-कृष्ण के प्रेमालाप एवं विविध क्रीड़ाओं में अनुभाव के मनोहर चित्र वर्तमान हैं । गुप्ता राधा-कृष्ण को संकेत द्वारा आमन्त्रित करती है। नायिका का आमन्त्रण उसकी भंगिमाओं को व्यक्त करता है—

तब राधा इक भाव बतावति ।
मुख मुसुकाइ सकुचि पुनि सहजहि चली अलक सुरझावति ।
... ...
सूरज प्रभु वितपन्न कोक गुन तातें हरि-हरि ध्यावति ।।[२]

मुस्करा कर कुछ संकोच करते हुए अलकों को सुलझाते आगे बढ़ जाना नायिका के संकेत को स्पष्ट सूचित कर रहा है । इसी के आधार पर दोनों प्रेमी एक-दूसरे के मन की बातें समझ कर निश्चित स्थान पर मिल जाते हैं ।

कृष्ण द्वारा व्यंजित अनुभाव का सुन्दर नमूना दानलीला के प्रसंग में देखने को मिलता है । कृष्ण नायिका से यौवन-दान माँगते हैं । इस पर नायिका कहती है—

कहा कहत तू नन्द ढुटौना ।

---

१. सूरसागर, पद सं० ३४८६ ।
२. वही, पद सं० २६८२ ।

सखी सुनहु री बातैं जैसी करत अतिहिं अचभौना।
वदन सुकोरत भौंह मरोरत नैननि में कछु टौना।
... ...
सूर स्याम गारी कह दीजै, यह बुधि है घर खोना ॥[1]

इन पंक्तियों में वदन सिकोरने और भौंह-मरोरने से कृष्ण का क्रोध एवं नेत्रों में टोना भरने से मोह व्यंजित हो रहा है।

कृष्ण के बाल-रूप को भी देखकर गोपियों में अनेक सात्त्विक भाव एक साथ जग जाते हैं। एक गोपी की ऐसी ही स्थिति देखिए—

फूली फिरति ग्वालि मन में री।
पूछति सखी परस्पर बातें, पायौ पर्‌यौ कहू कहुँ तैं री ?
पुलकित रोम-रोम गद-गद, मुख बानी कहत न आवै ॥[2]

नायिका ने कृष्ण का अनुपम रुख देख लिया था इसलिए उसमें पुलक, रोमाँच, स्तंभ आदि अनेक सात्त्विक भाव एक साथ जग पड़े जिससे उसकी गतिविधि में भी परिवर्तन आ गया।

एक ही पद में अनेक संचारी भावों की योजना सूर ने की है। एक बार राधा कृष्ण के पास से घर वापस आईं। घर आते ही उनकी विचित्र स्थिति हो गई। श्याम ने उन पर अपनी मोहिनी डाल दी। उनका चित्त चंचल हो उठा, खान-पान की सुधि जाती रही, कभी विहँसती और कभी विलाप करती और कभी संकुचित होकर लज्जित हो उठती थीं। इस प्रकार एक ही पद में प्रलाप, उन्माद, अपस्मार अनेक संचारी भावों का चित्रण किया गया है।[3]

सूर ने हावों का भी अच्छा वर्णन किया है। एक ही पद में राधा और कृष्ण दोनों के विभ्रम हाव का एक वर्णन देखिए—

आजु राधिका भोरहीं जसुमति कै आई।
महरि मुदित हँसि यौं कह्यौ मथि भान-दुहाई।
आयसु लै ठाढ़ी भई कर नेति सुहाई।
रीतौ माठ विलोवई चित्त जहाँ कन्हाई।
उनके मन की कह कहौ, ज्यौं दृष्टि लगाई।
लैया कोई वृषभ सौं गैया बिसराई।
चैननि मैं जसुमति लखी दुहुँ की चतुराई।
सूरदास दंपति दसा, कापै कहि जाई ॥[4]

---

१. सूरसागर, पद सं० २०८८।
२. वही, पद सं० ८८४।
३. वही, पद सं० १२६६।
४. वही, पद सं० १३३३।

राधा-कृष्ण एक-दूसरे के स्मरण में ऐसे भूल गए कि राधा रीता माठ विलो रही है और कृष्ण गाय नहीं बैल दूहने जा रहे हैं। इससे भी मनोरंजक स्थिति मुरली की ध्वनि सुनने पर ब्रजनारियों की हो जाती है। यहाँ विभ्रम हाव का एक सुन्दर उदाहरण है।

मुरली सब्द सुनि ब्रजनारि।
करत अंग-सिंगार भूलीं काम गयौ तनु मारि।
चरन सौं गहि हार बाँध्यौ नैन देखति नाँहि।
कंचुकी कटि साजि, लहंगा धरति हिरदय माँहि॥[1]

मुरली की ध्वनि से विह्वल होकर गोपियाँ तन-मन की सुधि-बुधि खो कर चल देती हैं। यहाँ तक कि वस्त्राभूषणों को ऊटपटाँग धारण कर लेती हैं। हार को चरणों में, कंचुकी को कमर में और लहंगा को हृदय पर रख कर चल देती है।

आगे सूर की राधा कृष्ण का रूप धारण करती है और कृष्ण राधा का। ऐसी स्थिति में इन युगल प्रेमियों का स्वरूप विशेष मनोरंजक हो जाता है। इस स्थिति में लीला हाव का एक प्रसंग देखिए—

नागरि-भूषन स्याम बनावत।
श्री नागरि नागर सोभा अंग, कियौ निरखि मन भावत।
स्यामा कनक-लुकुट कर लीन्हें पीतांबर उर धारै।
उत गिरिधर नीलाम्बर-सारी-घूंघट ओट निहारै।
वचन परस्पर कोकिल बानी, स्याम नारि पति राधा।
सूर सरूप नारि पति काछे, पति तनु नारी साधा॥[2]

सूर ने रीति कवियों की भाँति उदाहरण प्रस्तुत नहीं किया है परन्तु किसी भी जगह लीला हाव का यह उदाहरण देखा जा सकता है। इतना ही नहीं इसके आगे कृष्ण राधा बन कर मान करते हैं और राधा उनका मान भंग करने का प्रयास करती है। कृष्ण और राधा दोनों स्त्री-वेष धारण करके दो बहनों की तरह मार्ग में भी चलते दिखाई देते हैं और आगे अन्य सखियों से राधा इनका परिचय भी देती है कि यह मेरी सहेली है।[3]

बोधक हाव का भी इसी प्रकार कवि ने सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। राधा की सांकेतिक भाषा में सभी कुछ स्पष्ट हो जाता है।

सैननि नागरी समुझाइ।
खरिक आवहु दोहनी लै, यहै मिस छल लाइ।

... ...

---

१. सूरसागर, पद सं० १६१६।
२. वही, पद सं० २७७०।
३. वही, पद सं० २७७२-७३।

गुप्त प्रीति न प्रगट कीन्ही ? हृदय दुहुनि छिपाइ ।
सूर प्रभु के वचन सुनि-सुनि रही कुँवरि लजाइ ।।[1]

राधा ने कृष्ण को खरिक में आमंत्रित किया। कृष्ण उनकी भाषा समझ गए। दोनों ने एक-दूसरे से गुप्त वार्ता संकेतों के माध्यम से कर ली। बोधक हाव के और भी अनेक उदाहरण सूरसागर में भरे पड़े हैं।

अनुभाव योजना के अंतर्गत सूर ने नेत्रों के माध्यम से अधिक काम लिया है। व्रजांगनाएँ नेत्रों के संकेत से कृष्ण का मन चुरा लेती थीं।[2] राधा कभी नेत्रों के ही माध्यम से अपना गुप्त प्रेम कृष्ण को जता देती थी[3] कभी मिलन-स्थान पर उनको बुला लेती थीं। इस प्रकार इन प्रेमियों के नेत्रों की भाषा अत्यन्त सशक्त दिखाई गई है। वस्तुतः राधा के सभी अंगों में उनके नेत्र ही सर्वाधिक आकर्षक भी थे।

संचारी भावों की भी सुन्दर योजना सूरसागर में पाई जाती है। संयोग के पश्चात् अलसाई स्थिति का एक स्वाभाविक चित्र देखिए—

राज दोउ रति रंग भरे ।
सहज प्रीति विपरीत निसा बस आलस सेज परै ।।

अथवा

करि सिंगार दोऊ अरसानै ।
प्रथम बोल तमचुर सुनि हरषै, पुनि पौढ़े दोऊ लपटाने ।।[4]

प्रथम समागम के पूर्व नायिका की भयातुर स्थिति का वर्णन कवि की सजीव भाषा में देखिए—

नाहिंन नैन लगे निसि इहिं डर ।
जव तैं जाइ कह्यौ हँसि हरि सों, समर सोच उनकैं जिय धर-धर ।।[5]

जब से सखी ने कृष्ण को राधा से मिलाने की सूचना दे दी है तभी से राधा की यह गति हो गई है। राधा के वियोग में कृष्ण की व्याकुलता स्वर-भंग, कंप, स्वेद, अश्रु आदि की स्थिति का एक ही पंक्ति में सूर का वर्णन दर्शनीय है—

चलौ किन मानिनि कुंज कुटीर ।

... ...

गद गद स्वर संभ्रम अति आतुर स्रवत सुलोचन नीर ।
क्वासि क्वासि वृषभानु-नन्दिनी विलपत विपिन अधीर ।।[6]

---

१. सूरसागर, पद सं० १२९४।
२. वही, पद सं० ६१६।
३. वही, पद सं० १२९२।
४. वही, पद सं० २६५३-५५।
५. वही, पद सं ३०७३।
६. वही, पद सं० ३०७०।

कृष्ण की बेहाल स्थिति का चित्र अनेक संचारी भावों को व्यक्त करते हुए दिखाया गया है। कृष्ण और राधा जब साथ-साथ रहते हैं तब भी अनेक हाव-भाव एक साथ ही व्यक्त होते रहते हैं। उनकी स्थिति उस प्यासे के सदृश हो जाती है जो पानी का नाम मात्र सुनने पर उसकी होती है—

जद्यपि राधिका हरि संग।
हाव भाव, कटाच्छ लोचन करत नाना रंग।
हृदय व्याकुल धीर नाहीं, बदन कमल बिकास।
तृषा मैं जल नाम सुनि ज्यों अधिक अधिकहिं प्यास ॥[1]

यहाँ प्रेमियों की अटूट काम-पिपासा का भी चित्र खींचा गया है। संयोग के बाद श्रम संचारी का एक चित्र देखिए—

पिय भावती राधा नारि।
उलटि चुम्बन देति रसिकनि, सकुच दीन्हीं डारि।
परस्पर दोउ भरे स्रम जल, फूँकि-फूँकि झुरात ॥[2]

श्रम से उद्दीप्त स्वेद को प्रेमी जन परस्पर फूँक से सुखा रहे हैं क्या ही स्वाभाविक चित्र है।

राधा की क्रीड़ा का एक उदाहरण देखिए—

वह छवि अंग निहारत स्याम।
कबहुंक चुम्बन देत उरज धरि, अति सकुचति तनु बाम।
सनमुख नैन न जोरति प्यारी निलज भए पिय ऐसे।
हा-हा करति चरन कर टेकति कहा करत ढंग नैसे ॥[3]

कृष्ण राधा के सहवास का उन्मुक्त आनन्द लेना चाहते हैं। इस पर राधा की लज्जाशील स्थिति को कवि ने दिखाया है। राधा की क्रीड़ा का इससे भी अधिक सरस वर्णन संभोग की स्थिति में सूर ने दिखाया है—

सकुचि तन उदधि-सुता मुसुकानी।
रवि सारथी सहोदर तापति अंबर लेत लजानी।
सारंग पानि मूंदि मृगनैनी मनि मुख माँझ समानी।
चरन चापि गहि प्रगट करी पिय सेस सीस सहिदानी।
सूरदास तब कह करै अबला जब हरि यह मति ठानी।
भुज अंकम भरि चाप कठिन डारे स्याम कंठ लपटानी ॥[4]

---

१. सूरसागर, पद सं० २७४०।
२. वही, पद सं० ३०७७।
३. वही, पद सं० ३२४३।
४. वही, पद सं० ३२४२।

आलंकारिक चित्रण :

सूरदास में अपने साहित्य को अलंकृत करने की भी प्रवृत्ति पाई जाती है। जिस कोटि तक इनके काव्य में भाव-प्रधानता पाई जाती है लगभग उसी कोटि के आलंकारिक चमत्कार भी पाए जाते हैं। इनकी अलंकरण की प्रवृत्ति के दो कारण जान पड़ते हैं। एक तो जब कवि अपनी अत्यधिक भाव-संकुल कल्पनाओं को सहज भाषा में व्यक्त करने में असमर्थ हुआ है तो अलंकार का सहारा लिया है अर्थात् इसके भावों के भार को सहज भाषा व्यक्त करने में असमर्थ हुई है तब उसे बाध्य होकर अलंकारों का प्रयोग करना पड़ा है। यह स्थिति प्रायः रूप-वर्णन के प्रसंग में आई है। दूसरे, अपने भावों को जानबूझ कर दृष्टकूटों के माध्यम से व्यक्त किया है जो जन-साधारण की समझ के बाहर की वस्तु हो गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी भावनाओं को सजाने के लिए तो इन्होंने अलंकारों का प्रयोग किया ही है साथ ही जानबूझ कर बौद्धिक चमत्कार दिखाने अथवा गूढ़ भावों को अगम्य बनाने के से भी इन्होंने अपने साहित्य को अलंकृत किया है।

राधा और कृष्ण के रूप की जो कल्पना कवि के मानस में रही है उसे व्यक्त करके वह संतुष्ट न हो पाता था इसलिए इन युगल प्रेमियों के रूप-वर्णन का प्रसंग आते ही उसकी वाणी अत्युक्ति कर जाया करती थी। कृष्ण के मुरलीधर स्वरूप की अभिव्यक्ति कवि की चमत्कारपूर्ण शैली में देखिए—

नंद नंदन मुख देखौ माई।
अंग अंग छवि मनहु हर्ष रवि ससि अरु समर लजाई।
खंजन मीन, भृंग बारिज, मृग पग दृग अति रुचि पाई।
श्रुति मंडल कुंडल मकराकृत विलसत मदन सदाई।
नासा कीर कपोल ग्रीव छवि दाड़िम दसन बुलाई।
द्वै सारंग-बाहन पर मुरली आई देति दुहाई।
मोहे थिर चर विटप विहंगम व्योम विमान थकाई।
कुसुमांजलि बरसत सुर ऊपर सूरदास बलि जाई॥[1]

इस पद की दो पंक्तियों में जहाँ खंजन, मीन, भृंग, वारिज मृग दृगों से अति रुचि पाते हैं और दो सारंग वाहन पर मुरली दुहाई देती है, में रूपकातिशयोक्ति और 'स्रुति मंडल के कुंडलों पर मदन सदैव विलास करता है' की उक्ति में सम्बन्धातिशयोक्ति है। इसके अतिरिक्त द्वितीय पंक्ति के मनहु हर्ष में उत्प्रेक्षा तथा शशि अरु समर लजाई में प्रतीपालंकार है।

राधा के नेत्र-वर्णन में कवि का प्रतीपालंकार का चमत्कार देखिए—

तब तै मृगनि चौकरी भूली।

---

१. सूरसागर, पद सं० १२४४।

उर्यौ वदन सहज घूँघट पट सकुचे कमल कुमुदिनी फूली।
निरखि भौंह मनमथ मन काँप्यौ, छूट्यौ धनुष भुजा भई लूली।
सूरदास रति पाइँ पलोटति हुती जो गरब हिंडोरे झूली॥[1]

इस पद में में सर्वाधिक दुर्गति कामदेव की हुई है। नायिका की भौंहों को देखकर उनका धनुप लज्जित ही नहीं होता है वल्कि उनकी भुजाएँ भी लूली हो जाती हैं। नेत्रों के वर्णन में कवि द्वारा एक रूपक का चित्रण भी देखिए—

राधे तेरे नैन किधौं मृग वारे।
रहत न जुगल भौंह जूये तें, भजत तिलक रथ डारे।
जदपि अलक अंजन कहि बांधे तऊ चपल गति न्यारे।
घूंघट पट वांगुर ज्यौं विहरत जतन करत ससि हारे।
खुटिला जुगल, नाक मोती मनि, मुक्तावलि गर हारे।
दोउ रुख लिये दीपिका मानौ किये जात उजियारे।
मुरली-नाद सुनत कछु धीरज जिय जानत चुचकारे।
सूरदास प्रभु रीझि रसिक पिय उमंगि प्रान धनवारे॥[2]

इस पद में रूपक अलंकार का सांगोपांग वर्णन किया गया है परन्तु नायिका के मुखमंडल की आकर्षक स्वाभाविक स्थिति का चित्रण उपस्थित करने में कोई कसर नहीं रह गई है। इसका मात्र कारण यही है कि कवि अपने मानस की मूर्ति को विना अलंकारों के प्रकट ही नहीं कर सकता था। कवि की राधा-कृष्ण के रूप-सम्बन्धी कल्पना इतनी गहन होती थी कि साधारणतया वह व्यक्त न हो पाती थी। कहीं-कहीं जान-बूझकर भी कवि ने शब्द-चमत्कार रूप-वर्णन के प्रसंग में दिखाया है। इनका प्रसिद्ध पद देखिए—

अद्भुत एक अनूपम वाग।
जुगल कमल पर गज वर क्रीड़त, तापर सिंह करत अनुराग।
हरि पर सरवर सर पर गिरिवर गिरि पर फूले कंज-पराग।
रुचिर कपोत वसत ता ऊपर, ता ऊपर अमृत-फल लाग।
फल पर पुहुप पुहुप पर पल्लव तापर सुक पिक मृग-मद काग।
खंजन धनुप चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर इक मनिधर नाग।
अंग अंग प्रति और और छवि, उपमा ताकी करत न त्याग।
सूरदास प्रभु पियौ सुधारस मानौ अधरनि के वड़ भाग॥[3]

नायिका का सौन्दर्य-वर्णन करती हुई एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि

---

१. सूरसागर, पद सं० ३३५६।
२. वही, पद सं० ३३५८।
३. वही, पद सं० २७२८।

हे सखि-नायिका तो वस्तुतः एक अनुपम एवं अद्भुत वाटिका है। उसके कोमल कमल-रूपी चरणों पर मन गयंद की चाल है और उस मत्त गयंद के ऊपर सिंह अनुरागपूर्वक विराजमान है। सिंह के ऊपर नाभि-रूपी सरवर, सरवर के ऊपर कुच-रूपी पर्वत, पर्वतों के ऊपर मेंहदी-रूपी पराग से युक्त विकसित हस्त-कमल, कमल के ऊपर ग्रीवा-रूपी कपोत, कपोत के ऊपर आम जैसी चिबुक, चिबुक पर अधर-रूपी पुष्प, पुष्प पर ओष्ठ-रूपी पल्लव, पल्लव पर नासिका-रूपी शुक एवं पिक-सी वाणी, उसके ऊपर मृगमद (कस्तूरी) की बिन्दी-रूपी काग, काग के ऊपर नेत्र-रूपी खंजन, खंजन के ऊपर भाल-रूपी अर्द्ध चन्द्र, चन्द्रमा के ऊपर शीशफूल युक्त वेणी-रूपी मणिधारी नाग विराजमान है। इस प्रकार रूपकातिशयोक्ति द्वारा कवि ने नायिका का नखशिख-वर्णन चामत्कारिक ढंग से किया है। कोमल कमल पर विशालकाय मतवाले हाथी की चाल और हाथी के ऊपर उसके शत्रु सिंह के अनुरागयुक्त आसन आदि की कल्पना से कवि ने विशेष चमत्कार उत्पन्न किया है।

रूपकातिशयोक्ति का एक और चमत्कार देखिए--

विराजति एक अंग इति बात।
अपनें कर करि धरे विधाता पट खग नव जलजात।
द्वै पतंग ससि बीस एक फनि, चारि विविध रंग धात।
द्वै पक बिंब बतीस बज्र-कन एक जलज पर घात।
इक सायक इक चाप चपल अति चितवत चित्त बिकात।
द्वै मृणाल मालूर उभै द्वै कदलि-खंभ बिनु पात।
इक केहरि इक हंस गुप्त रहे, जिहिं लायौ यह गात।

स्थलों पर बौद्धिक चमत्कार ही कवि का सामने आता है। शब्दों को खींचतान कर जितनी भी दूरी से हो सका है कवि ने अर्थ को ध्वनित किया है। नायिका की वियोगावस्था के वर्णन का एक पद देखिए—

> कहत कत परदेसी की बात।
> मन्दिर अरध अवधि बदि हमसौं, हरि अहार चलि जात।
> ससि रिपु बरस, सूर रिपु जुग बर, हररिपु कीन्हौ घात।
> मघ पंचक लै गयौ साँवरौ, तातैं अति अकुलात।
> नखत, वेद, ग्रह जारि अर्ध करि, सोह बनत अब खात।
> सूरदास बस भई विरह के कर मीजै पछितात॥[1]

वियोगिनी गोपी कहती है कि किस परदेशी की बात कहती हो? मन्दिर अरध=घर का आधा भाग=पाख, अर्थात् एक पक्ष की अवधि दे कर कृष्ण गए थे और अब हरि अहार=सिंह का भोजन=मांस, अर्थात् एक मास बीत रहा है। ससि रिपु=दिन, वर्ष के समान और सूर रिपु=रात्रि, युग के समान बीत रही है और हर रिपु=शिव का शत्रु=कामदेव घात करता फिरता है। मघ पंचक=मघा से पांचवाँ नक्षत्र=चित्रा=चित्त नायिका का स्याम लेकर चले गए हैं इसीलिए उसे और घबड़ाहट होती है, क्योंकि उसका चित्त ही उसके हाथ में नहीं है। नखत २७+ वेद+४+ ग्रह १३=४० का आधा=२० अर्थात् विष खाने से अब नायिका को कौन रोक सकता है। वियोग की इन्हीं परिस्थितियों में नायिका हाथ मल-मल कर पछताती रहती है। इस पद से स्पष्ट है कि कवि ने शब्दों के अर्थ को खूब खींच-कर लगाया है।

सूरसागर को देखने पर ऐसा जान पड़ता है कि चित्रकाव्य को छोड़कर कोई भी अलंकार ऐसा न होगा जिसका उदाहरण सूर ने न प्रस्तुत कर दिया हो। छायावाद के सर्वाधिक प्रिय अलंकार मानवीकरण की भी योजना सूरसागर में कई जगह हुई है। कहीं यमुना को विरहिणी नायिका[2] के रूप में चित्रित किया गया है तो कहीं पावस को आक्रामक राजा के रूप में।[3] कभी वियोगिनी राधा 'मधुवन तुम कत रहत हरे' कहती है तो कहीं 'बदरिया बवन विरहिनी आई।' इसी प्रकार अनेक स्थल मानवीकरण के मिलते हैं।

जिस प्रकार रीतिकाव्य में अनुप्रास-योजना एवं तुक पर अधिक ध्यान दिया जाता था, वैसी ही सूर काव्य में भी अनुप्रासत्व एवं तुकबन्दी मिलती है। गेयता में लय लाने के लिए अनुप्रासत्व अनिवार्य होता है। सूर के कुछ अनुप्रासों की योजना देखिए—

---

१. सूरसागर, पद सं० ४५६४।
२. वही, पद सं० ३८०६।
३. वही, पद सं० ३९८२।

अहि सायी अहि अंग विभूषन अमित दान बल विष हारी।

... ...

अज अनीह अविरुद्ध एक पत यहै अधिक ये अवतारी ॥[1]

अथवा

राधे छिरकति छींट छवीली।

कुच कुंकुम कंचुकि वंद छूटे लटकि रही गोली।[2]

अन्त्यानुप्रास की योजना सूरसागर में अधिक पाई जाती है। कुछ उदाहरण देखिए—

घरनि पग पटकि, कर झटकि, भौंहनि मटकि, अटकि मन तहाँ रीझे कन्हाई।
तव चलत हरि मटकि, जहीं जुवति भटकि, लटकि लटकनि छटकि छवि विचारै ॥[3]

अथवा

मध्य व्रज-नागरी रूप-रस-आगरी घोष-उज्जागरी स्याम प्यारी।
वदन दुति इन्दुरी, दसन छवि कुँद री, काम तनु दुँदरी करन हारी।
अंग-अंग सुभग अति, चलति गजराज गति, कृष्न सौं एक मति जमुन जाही ॥[4]

इस प्रकार अनुप्रास की कम या अधिक योजना प्रायः सूर के सभी पदों में पाई जाती है।

अनुप्रास-योजना से ध्वन्यत्व व्यंजना की शक्ति भाषा में आती है। सूरदास में भी यह गुण पाया जाता है। दावानल का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

भहरात-झहरात दावानल आयौ।
घेरि चहुँ ओर, करि सोर अंदोर वन धरनि अकास चहुँ पास छयौ।
वरत वन वाँस, थरहरत कुल काँस, जरि उड़त है भाँस, अति प्रवल धायौ।
झपटि फपटत लपट, फूल-फल चट चटकि फटत लटलटकि द्रुम द्रुमनवायौ।
अति अगिनि-झार भंभार धुंधार करि उचटि अंगार झंझार छायौ।
वात वन पात भहरात झहरात अररात तरु महा, धरनी गिरायौ ॥[5]

इन पंक्तियों से स्पष्ट जान पड़ रहा है कि उसी समय वन में अग्निकाण्ड हो रहा है।

इन्द्रकोप के समय भयंकर वादलों का भयंकर दृश्य देखिए—

मुनि मेघवर्त सजि सैन आए।

---

१. सूरसागर, पद सं० ७८९।
२. वही, पद सं० १७७८।
३. वही, पद सं० १६५९।
४. वही, पद सं० २३६६।
५. वही, पद सं० १२१४।

बलवर्त्त, वारि वर्त्त, पौन वर्त्त, व्रजि अग्नि वर्त्तक, जलद संग लाए।
घहरात, गररात, दररात, हररात, तररात, झहरात माथ नाए।[१]

मेघों की भयंकरता शब्दों से ही ध्वनित हो रही है।

सूर के काव्य में तुकबन्दी पर दृष्टि रही है। पदों की पंक्तियों के अंतिम शब्दों के तुक को प्रायः सूर ने मिलाने की कोशिश की है। उदाहरण के लिए कुछ पदों पर दृष्टिपात कीजिए—

हरैगो, टरैगो, बरैगो, जरैगो, करैगो, जरैगो।[२]
लाजन, काजन, राजन, माजन, भाजन, साजन, ताजन, गाजन।[३]
मधुवनियाँ, जोबनियाँ, कनियाँ, मनियाँ, तनियाँ, चिकनियाँ।[४]
कियौ, पियौ, लियौ, दियौ, हियौ, जियौ।[५]

इस प्रकार की तुक-योजना सूरसागर के प्रायः सभी पदों में मिलेगी।

एक ही शब्द की पुनरुक्ति भी अनुप्रासत्व के लिए सूर के पदों में पाई जाती है। उदाहरण के लिए नंद के घर के उत्सव का वर्णन करते हुए फूले शब्द की बार-बार पुनरुक्ति हुई है।[६] इसी प्रकार लगातार तीन-तीन पदों में 'सुन्दर' शब्द की बार-बार पुनरुक्ति हुई है।[७] होली के प्रसंग में भी शब्दों की पुनरुक्ति हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा को अलंकृत करने में जो गुण आना स्वाभाविक है इससे सूरदास जी बच नहीं पाए हैं।

छंद-योजना :

सूर का सारा साहित्य मुक्तकों में रचा गया है। यही पद्धति रीति-कवियों ने भी अपनाई थी। इनके मुक्तक किसी भी कवि-दंगल की शोभा बढ़ाने योग्य हैं। कृष्ण की लीलाओं को मुक्तकों में व्यक्त करके वस्तुतः सूर ने ही रीति कवियों को मार्ग दिखा दिया था। सूर के राधा-कृष्ण की लीलाओं को प्रेमी-प्रेमिकाओं की लीलाओं के रूप में मानकर रीति-कवि-दंगलों में अपने मुक्तकों के द्वारा बाजी मारने लगे थे।

सूर के छंदों में उनकी गेयता पर कवि की विशेष दृष्टि रही है। शास्त्रीय नियम ढीले पड़ गए हैं। 'सूरसागर' को राग-रागिनि का सागर कहा जाय तो कोई

---

१ सूरसागर, पद सं० १४७१।
२. वही, पद सं० ३६८६।
३ वही, पद सं० ३६८८।
४ वही, पद सं० ३६६५।
५. वही, पद सं० ४००३।
६. वही, पद सं० ६५२।
७. वही, पद सं० १०६१-६३।

अन्याय न होगा। प्रत्येक पद के साथ इसके राग का भी नाम लिखा गया है। जिस प्रकार रीति कवि समय-समय पर अपनी रचनाएँ गाया करते थे उसी प्रकार सूर भी अपने पदों को गाने के ही लिए बनाते थे और समय-समय पर गाया करते थे। इसी कारण रीति-काव्य में और सूर-काव्य में भी विषय की पुनरावृत्ति अनेक बार होती गई है।

सूर ने अपने पूर्व-प्रचलित सभी राग-रागिनियों को तो अपनाया ही है प्रायः प्रचलित सभी छन्दों को भी अपनाया है परन्तु अपनी गेय शैली का उन पर भी आवरण डाल दिया है। वीरगाथाकाल के छप्पय तथा रीतिकाल के कवित्त, दोहा, सवैया आदि छन्दों को भी इन्होंने गाया परन्तु उनमें अपनी शैली की छाप लगा दी है। कविता और छन्द के सम्बन्ध आदिकाल से चोली-दामन की तरह रहे हैं। सूर ने काव्य के इस सिद्धान्त को भी निभाया है। परन्तु यह बात अवश्य है कि छन्दों को गीत के समानान्तर बनाने के लिए उनके बन्धनों को कुछ ढीला कर दिया है। उनमें अपनी ओर से कुछ गेय ध्वनियाँ जोड़ ली हैं जैसे दोहा का रूप देखिए—

मन रे माधव सौं करि प्रीति।
काम क्रोध मद लोभ तू, छाँड़ि सबै बिपरीति।
भौंरा लोभी बन भ्रमे (रे) मोद न मानै ताप।
सब कुसुमनि मिलि रस करै (पै) कमल बँधावै आप।
सुनि परिमिति पिय प्रेम की (रे) चातक चितवन बारि।
घन-आसा सब दुःख सहै (पै) अनत न जाँचै बारि॥[1]

इस लम्बे पद को सूरसागर में डेढ़ पृष्ठ में गाया गया है जो लिखा तो दोहा छन्द में गया है परन्तु गेयता की विशेष लय लाने के लिए प्रथम और द्वितीय चरणों के मध्य प्रत्येक पंक्ति में 'पै' और 'रे' लगा दिया गया है। जिससे 'रे' और 'पै' को स्वर के माध्यम से विशेष खींचा जा सके। इसी प्रकार का एक और 'री' से युक्त दोहा का उदाहरण देखिए—

ठाढ़ौ हो ब्रज खोरी, ढोटा कौन को।
... ...
मोर मुकुट कछनी कसे (री) पीताम्बर कटि सोभ।
नैन चलावै फेरि कै (री) निरखि होत मन लोभ॥
... ...
पुनि हा हा करि मिलत है (री) नाना रंग बनाइ।
नन्द सुवन के रूप पर (री) सूरदास बलि जाइ॥[2]

---

१. सूरसागर, पद सं० ३२५।
२. वही, पद सं० ३४९२।

दोहा छंद को कवि ने अनेक रूपों में ग्रहण किया है। कहीं-कहीं उसकी प्रत्येक पंक्ति में एक अर्द्धाली जोड़कर उसे गीत बना दिया है—

खेलत सकल गुवालिनी घर-घर खेलत फाग। मनोरा झूम करो।
तिनमैं राधा लाड़िली जिनकौ अधिक सुहाग ॥

... ...

सूर गुपाल कृपा बिना, यह रस लहै न कोई। ,,
श्री वृषभानु कुमारिका स्याम मगन मग होई।[1] ,,

इस लम्बे पद की पंक्तियों में से 'मनोरा झूम करो' निकाल कर पढ़िए तो शुद्ध दोहा है।

दोहे के चार चरणों में से कहीं-कहीं एक-एक चरण को क्रमशः कवि ने एक-एक पंक्ति में रख कर गीत में विलीन कर दिया है। उदाहरण के लिए देखिए—

निकसि कुँवर खेलन चले। रंग होरी।
मोहन नंद किसोर, लाल रंग होरी।
कंचन माँट भराइ कै, रंग होरी।
सौंधै भर्‌यौ कमोर, लाल रंग होरी ॥[2]

इन पंक्तियों में से 'लाल रंग होरी' को निकाल कर इस प्रकार पढ़ा जा सकता है जो दोहे का सही रूप है—

निकसि कुंवर खेलत चले, मोहन नंद किसोर।
कंचन-माँट भराइ कै, सौंधै भर्‌यौ कमोर ॥

इस प्रकार की पद्धति के अनेक उदाहरण सूरसागर में मिलते हैं।[3]

बिना किसी प्रकार का विकार लाए ही सामान्य रूप में भी इन्होंने दोहा छंद लिखा है।

गैल न छांड़ै सांवरौ, क्यों करि पनघट जाउँ।
इहि सकुचनि डरपति रहौं, धरे न कोऊ नाउँ ॥

... ...

जमुना-जल भरि गागरी, जब सिर धरौं उठाइ।
ज्यौं कंचुकि अंचरा उड़ै, हियरा तकि ललचाइ ॥

... ...

जब लगि मन मिलयौ नहीं, नची चोप के नाच।
सूर स्याम संग ही रहौ, करौं मनोरथ सांच ॥[4]

---

१. सूरसागर, पद सं० ३४८२।
२. वही, पद सं० ३४८४।
३. वही, पद सं० ३४८०-८१।
४. वही, पद सं० २०६१।

सूर ने दोहा और रोला को मिलाकर एक नया छंद बनाया है—

नंद राइ-सुत लाड़िले, सब-ब्रज-जीवन प्रान। बार-बार माला कहै, जागहु स्याम सुजान॥	दोहा
जसुमति लेति बलाइ, भोर भयौ उठौ कन्हाई। संग लिए सब सखा, द्वार ठाढ़े बल भाई॥[1]	रोला

यह पद ढाई पृष्ठों में लिखा गया है जिसमें दोहे और रोले का क्रम इसी प्रकार है। इस प्रकार का प्रयोग सूर ने अनेक पदों में किया है। अपने पूर्व-प्रचलित दोहा छंद को सूर ने अनेक रूपों में अपनाया है। उसे उलट-पलट जैसे इच्छा हुई वैसे गाया है।

घनाक्षरी का प्रयोग भी सूरसागर में किया गया है। प्रातःकाल का घनाक्षरी में एक वर्णन देखिए—

झाईं न मिटन पाई, आए हरि आतुर ह्वै,
जान्यौ जब गज ग्राह लिए जात जल मैं।
जादौपति जदुनाथ छाँड़ि खग-पति साथ,
जानि जस विह्वल, छुड़ाई लीन्हों पल मैं।
नीरहूँ ते न्यारौ कीनौ, चक्र वक्र-सीस छीनौ,
देवकी के प्यारे लाल ऐंचि लाए थल मैं।
कहैं सूरदास, देखि नैननि की मिटी प्यास,
कृपा कीन्ही गोपी नाथ, आए भुव तल मैं॥[2]

घनाक्षरी के और भी उदाहरण सूरसागर में मिलते हैं। कहीं-कहीं चार के स्थान पर छः-छः चरण की घनाक्षरी इन्होंने लिखी है।[3] दो चरण अपने मन से जोड़ दिये हैं। ऐसे स्थलों पर कवि ने छन्द-बन्धन का ध्यान न कर अपने भावों को व्यक्त करने का प्रयास किया है। इसी कारण अनेक स्थलों पर छंदों की मात्राओं में भी गड़बड़ी आ गई है।[4]

सूर ने हरिगीतिका और चौपाई का भी प्रयोग किया है।

चौपाई

यह व्रत हिय धरि देवी पूजी। है कछु मन अभिलाष न दूजी॥
दीजै नंद सुवन पति मेरैं। जो पै होइ अनुग्रह तेरैं॥

---

१. सूरसागर, पद सं १०४६।
२. वही, पद सं० ४३२।
३. वही, पद सं० २६५७।
४. वही, पद सं० ६८, घनाक्षरी छंद।

हरिगीतिका

तब करि अनुग्रह बर दियौ, गज बरष जुवतिनि तप कियौ।
त्रैलोक्य भूषन पुरुष सुन्दर, रूप गुन नाहिंन बियौ।
इत उबटि खोरि सिंगारि सखियनि, कुँवरि चोरी आनियौ।
जा हित कियौ व्रत नेम-संजम, सौं घरी बिधि बानियौ ॥[1]

सवैया छंद का भी कवि ने कम प्रयोग नहीं किया है। कहीं उनका सवैया टेक युक्त है कहीं टेकरहित। सामान्य सवैया का एक उदाहरण देखिए—

प्रात समय दधि मथति जसोदा, अति सुख कमल नयन गुन गावति।
अतिहिं मधुर गति, कंठ सुघर अति, नंद सुवन चित हितहिं आवति।
... ...
गोरस मथत नाद इक उपजत, किंकिनि-धुनि सुनि स्रवन रसावति।
सूर स्याम अंचरा धरि ठाढ़े, काम कसौटी कसि दिखरावति ॥[2]

इन छन्दों के अतिरिक्त सूर ने चन्द्र, भानु, कुंडल, सुखदा, राधिका, उपमान, हरि, तोमर, शोभन, गीतिका, विष्णुपद, सरसी, हरिपद, सार, लावनी, वीर, हंसाल, हरिप्रिया आदि छन्दों का प्रयोग किया है। इनके छन्दों को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि रीति कवियों को आलंबन ही नहीं शैली भी सूर ने ही प्रदान की थी। सूर के छन्द रागों में मिलकर रागमय हो गए हैं इसलिए एक ओर उनमें काव्यशास्त्रीय छन्द-बन्धन के गुण हैं तो दूसरी ओर संगीत का प्रवाहयुक्त लय है। इनके छन्दों की यह दोहरी विशेषता है। छन्दों के बन्धन को ढीला कर संगीत का उनमें प्राण डाला गया है। यह गुण सूर के पूर्व या पश्चात् किसी भी कवि में इस मात्रा में नहीं हैं।

भाषा :

सूरदास का समस्त जीवन ब्रज प्रान्त में बीता था। वे ब्रज क्षेत्र में ही पैदा हुए और उसी क्षेत्र के किसी-न-किसी स्थान पर आजीवन रहे। इस कारण उनकी मातृभाषा ब्रज थी और उनकी स्वाभाविक शक्ति से सूरदास भली-भाँति परिचित थे। किसी भी व्यक्ति के भाव, उसकी मातृभाषा में व्यक्त किए जाने पर विशेष स्वाभाविकता प्राप्त करते हैं। सूरदास की भाषा की सफलता का एक यह महान् कारण था। उनके पद उनकी मातृभाषा में गाए गए, इसी कारण इनमें स्वाभाविकता अधिक आई।

सूरदास का शब्द-भंडार बहुत बड़ा था। वे चक्षुहीन व्यक्ति थे परन्तु उनका पाण्डित्य चक्षुधारी से अधिक शक्तिशाली था। सूर काव्य में प्रयुक्त मूल और विकृत

---

१. सूरसागर, पद सं० १६६०।
२. वही, पद सं० ७६७।

रूपों के शब्दों की सम्मिलित संख्या तो लगभग पच्चीस हजार है, परन्तु मूल रूप लगभग आठ हजार है। इनमें से आधे के लगभग संज्ञा शब्द हैं। लगभग एक चौथाई में विशेषण और अव्यय शब्द हैं और शेष सर्वनाम और क्रिया शब्द हैं।[1] इस प्रकार सूर की भाषा की बहुत बड़ी शक्ति उनके शब्द थे।

भाषा की शक्ति को शब्द-शक्तियाँ बहुत बढ़ाती हैं। सूर को शब्द-शक्तियों के प्रयोग का ज्ञान अद्भुत था। अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना तीनों के अत्युत्तम प्रयोग इनमें पाए जाते हैं। इनके कुछ उदाहरणों में बात स्पष्ट हो जाएगी। विनय और संयोग-वियोग के वर्णनों के प्रसंग में सूर ने प्रायः अभिधा से काम लिया है। विनय के पदों के अभिधा के उदाहरण देखिए—

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै।
ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहै ॥[2]

ऐसी ही भावना के उदाहरण विनय में अधिकाँश हैं। वियोग-वर्णन का एक अभिधा का उदाहरण देखिए—

ब्रज तजि गए माधव कालि।
स्याम सुन्दर कमल लोचन क्यौं बिसारौ आलि ॥[3]

अपनी उक्तियों को तीखा बनाने के लिए लक्षणा का प्रयोग किया जाता है। सूर ने भी जब अपनी बात को वाच्यार्थ से स्पष्ट करने में अपने को पूर्ण समर्थ नहीं पाया तो लक्षणा का प्रयोग किया। कुछ उदाहरण लक्षणा के देखिए—

सबै ब्रज है जमुना के तीर।[4]

अथवा

पिया बिनु नागिनि कारी रात।
जौ कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उलटी ह्वै जात।[5]

उपर्युक्त प्रथम उदाहरण में 'सबै ब्रज' से स्थान नहीं बल्कि वहाँ के समस्त निवासियों का बोध हो रहा है। इसलिए इसमें लक्षण लक्षणा हुई। दूसरे उदाहरण में 'काली रात' को नागिन के समान डंसने वाला बताया गया है और दोनों के गुण-अवगुण की समानता दिखाई गई है इसलिए इसमें गौणी सारोपा लक्षणा हुई।

व्यंजना-शक्ति के अच्छे उदाहरण उपालंभ के अवसरों पर सूर-काव्य में मिलते हैं। वियोगिनी गोपीं की एक व्यंजनाभरी उक्ति देखिए—

---

१. डा० प्रेमनारायण टंडन, सूर की भाषा, पृ० ५८५।
२. सूरसागर, पद सं० ८६।
३. वही, पद सं० ३७८५।
४. वही, पद सं० ११६३।
५. वही, पद सं० ३८००।

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि।
किधौं हरि हरषि इन्द्र हठि बरजे, दादुर खाए सेषनि।
किधौं उहिं देस बगनि मग छाँड़े, घरनि न बूँद प्रवेसनि।
चातक मोर कोकिला उहिं बन, बधि कनि बधे विसेषनि।
किधौं उहिं देस बालनहिं भूलति गावति सखि न सुदेसनि।
सूरदास प्रभु पथिक न चलहीं, कासौं कहौं संदेसनि ॥[1]

गोपियों की इस उक्ति से यह व्यंजित हो रहा है कि जितने उद्दीपन के तत्त्व यहाँ हम लोगों को सता रहे हैं उतने ही कृष्ण को भी सताते होंगे परन्तु वे हम लोगों के यहाँ आते क्यों नहीं। यहाँ केवल संकेत मात्र के लिए उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। सूर-काव्य से बहुत अधिक लक्षण व्यंजना के उदाहरण-रूप में दिए जा सकते हैं।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी भाषा की शक्ति को बहुत अधिक बढ़ाती हैं। सूर-साहित्य मुहावरों-और लोकोक्तियाँ से भरा हुआ है। मुहावरों के ही द्वारा लक्षणा-व्यंजना के चमत्कार अत्यधिक बढ़ते हैं। सूरदास जी इनके प्रयोगों में सिद्धहस्त थे। सूर-साहित्य की लगभग बीस हजार पंक्तियों में मुहावरों का प्रयोग पाया जाता है।[2] इनके मुहावरों का प्रयोग अद्भुत है। कुछ उदाहरण देखिए—

मधुप कहि जानत नाहीं बात।
फूँकि फूँकि हियरो सुलगावत उठि न इहाँ ते जात।[3]

अथवा

उन पापी हमहीं को पठयौ, अनत नहीं सुख बाँटी।
सूरदास प्रभु सीख बतावै, सहद लाइ कै चाटी ॥[4]

इनके अतिरिक्त गुर चींटी ज्यों पागी,[5] फिरति धतूरा खाए,[6] गुडी डोर ज्यों तोरी,[7] लौंडी की डौंडी जग बाजी,[8] मूड़ चढ़ाई,[9] हाथ बिकानी,[10] मिले दूध ज्यों

१. सूरसागर, पद सं० ३९२८।
२. डॉ० प्रेमनारायण टंडन, सूर की भाषा, पृ० ४९३।
३. सूरसागर, पद सं० ४१६३।
४. वही, पद सं० ४५४४।
५. वही, पद सं० ४५७६।
६. वही, पद सं० ४६५८।
७. वही, पद सं० ३९७९।
८. वही, पद सं० ४२३०।
९. वही, पद सं० १८८८।
१०. वही, पद सं० २५१६।

पानी,[1] आदि मुहावरों का सटीक एवं अन्यतम चुभन-शक्ति के साथ प्रयोग हुआ है। यहाँ सूर के सभी मुहावरों को प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। इसलिए नमूने के रूप में कुछ ही प्रस्तुत किए गए हैं।

सूरदास की लोकोक्तियाँ भी मुहावरों की ही भाँति चुभने वाली हैं। उनके भी दो-एक अनूठे उदाहरण देखिए—

मधुकर राखि जोग की बात।
कहि कहि कथा स्याम सुन्दर की सीतल करि सब गात।
+ + +
दीरघ नदी नाव कागर किहि देख्यो चढ़ि जात।
+ + +
सूरदास बाँस बन बसि के, कैसे कल्प बिहात॥[2]

लम्बी नदी और कागज की नौका की तुलना तथा बाँस के बन से कल्प वृक्ष के आनन्द की आशा करना कहाँ तक बुद्धिमत्ता होगी। इसी प्रकार का एक और उदाहरण देखिए—

जाहु जाहु ऊधौ जाने हौ।
जैसे हरि तैसे तुम सेवक कपट चतुरई साने हौ।
+ + +
सूरदास प्रभु हम सब खोटी, तुम तौ बारह बाने हौ॥[3]

गोपियों की व्यंजना कितनी मार्मिक है कि आप बारहबानी अर्थात् शुद्ध सोने की तरह हैं, मगर जाइए।

इसी प्रकार की लोकोक्तियाँ के भी अद्वितीय प्रयोग सूरसागर में मिलते हैं। मुहावरों और लोकोक्तियाँ के प्रयोग ने सूर की अभिव्यंजना-शक्ति को बहुत अधिक बल प्रदान किया है।

सूरदास ने पात्र, परिस्थिति एवं रसों के अनुकूल शब्दों का प्रयोग किया है, इस कारण भी उनकी भाषा सबल दिखाई देती है।। सूर की गोपियाँ सरल ग्रामीण नायिका का प्रतिनिधित्व करती हैं इसलिए उनकी वाणी से ग्राम्य-जीवन का सहजपन झलकता है। गाँवों में चरवाहों को दोपहर का खाना जहाँ वे पशुओं को चराते रहते हैं, वहीं पहुँचाया जाता है। एक गोपी कृष्ण का छाक लेकर पहुँचती है और कृष्ण को पुकारती है। सूर का यह चित्र उनकी भाषा में देखिए—

---

१. सूरसागर, पद सं० २५१६।
२. वही, पद सं० ४५११।
३. वही, पद सं० ४१३८।

हरि कौं टेरत फिरति गुवारि ।
आइ लेहु तुम छाक आपनी, बालक बल बनवारि ।
आजु कलेऊ करत बन्यौ नहिं, गैयनि संग उठि धाए ।
तुम कारन बन छाक जसोदा मेरे हाथ पठाए ।
यह बानी जब सुनी कन्हैया दौरि गए तिहिं काजु ।
सूर स्याम कह्यौ नीकौ आई भूख बहुत ही आजु ।।[1]

छाक आया जानकर कृष्ण श्रीदामा को पुकारते हुए कहते हैं—

गिरि पर चढ़ि गिरिवर-धर टेरे ।
अहो सुबल श्रीदामा भैया, ल्यावहु गाइ खरिक के नेरे ।
आई छाक अबार भई है नैं सुक घैया पिएउ सबेरे ।
सूरदास प्रभु बैठि सिला पर भोजन करैं ग्वाल चहुँ फेरे ।।[2]

ग्रामीण चरवाहा जीवन का सजीव चित्र बिना किसी मानसिक प्रयास के स्वतः इन पंक्तियों द्वारा पाठक के सम्मुख उपस्थित हो जा रहा है । कृष्ण की भाषा सदैव बदलती रहती है । माखन चोरी के समय नटखट बालक बन जाते हैं तो दान-लीला के समय चतुर एवं रसिक शिरोमणि । कृष्ण के बालपन का 'मैया री मोरि मैं नहिं माखन खायौ' में क्या ही स्वाभाविक चित्र खींचा गया है । नन्द यशोदा की भाषा एक जिम्मेदार संरक्षक की भाँति सामने आती है । कृष्ण के बचपन में उनकी रूप-माधुरी पर वे मुग्ध होते रहते हैं और मथुरा चले जाने पर बिलखते रहते हैं । सूर की गोपियाँ अपनी कूटनीति की भाषा प्रयुक्त करती हैं । प्राय. सूर के सभी पात्र अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं ।

सूर की भाषा रसों के अनुकूल प्रयुक्त हुई है । उन्होंने शृंगार रस में माधुर्य-युक्त भाषा अपनाई है और वीर रस-वर्णन में ओजपूर्ण । इसके कुछ उदाहरण देखिए—

संयोग-शृंगार—

संग राजत वृषभानु कुमारी ।
कुंज-सदन कुसुमनि सेज्या पर दम्पति सोभा भारी ।
आलस भरे मगन रस दोऊ अंग अंग प्रति जोहत ।।[3]

अथवा

नयो नेह, नयो गेह, नयो रस, नवल कुंवरि वृषभानु किसोरी,
नयो पीतांबर, नई चूनरी, नई नई बूंदनि भीजती गोरी ।

---

१. सूरसागर, पद सं० १०७६ ।
२. वही, पद सं० १०८१ ।
३. वही, पद सं० ३०८१ ।

वियोग शृंगार---

चलत न माधौ की गही बाहैं।
बार बार पछिताति तबहिं तें यहै मूल मन गाहैं।
घर बन कछु न सुहाइ रैनि दिन; मनहु मृगी दब दाहैं।
मिटति न तपति बिना घनस्यामहिं, कोटि घनी घन छाहैं।
बिलपति अति पछिताति मनहिं मन, चन्द गहैं जनु राहैं।
सूरदास प्रभु दूरि सिधारे, दुख कहिये किहिं पाहैं।[1]

वीर रस—

भिर्यौ चानूर सौं नन्दसुत बांधि कटि, पीत पट पेंटरन रंग राजै।
द्विप दन्त कर कलित भेष नटवर ललित, मल्ल उर सल्ल तल ताल बाजै।
... ...
घूम दै घूंघरनि वै उभय बन्धु जन, सुभट पद पानि धरि धरनि मेले।
चित्त सौं चित्त मनि बन्ध मनि बन्ध सौं दृष्टि सौं दृष्टि नहि सूर डोलै ॥[2]

इस पद के आगे इसी प्रसंग में झटकि, पटकि, भटकि, खटक, अटकि, चटक, लटकि, मटक, हटक, अटक, गटकि आदि ओजपूर्ण शब्दों की योजना देखने ही लायक है।[3]

भावों को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए सूर शब्दों को दो-दो बार एक साथ ही प्रयोग में लाए हैं जैसे—जनम सिरानौ अटकै अटकै,[4] या—मुरि मुरि चितवत नन्द गली[5] अथवा बार बार पिय देखि देखि मुख पुनि पुनि जुवति लजानी।[6]

सूर ने अपनी भाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फारसी, तुर्की आदि शब्दों को स्थान देने में कोई हिचक नहीं महसूस की है। तत्सम एवं तद्भव शब्दों का प्रयोग तो संस्कृत भाषा की परम्परा के कारण होता आया है परन्तु देशज शब्द जन-सम्पर्क में आने पर प्राप्त होते हैं। सूर-साहित्य में इसका पर्याप्त प्रयोग मिलता है। अचगरी, औचट, उल्हरत, उपरफट, खुनुस, चभोरी, लड़बौरी, लटवांमहि आदि देशज शब्द सूरसागर में मिलते हैं। अरबी के शब्दों में 'अमल, अमीन, कसब, खसम, जमा, जवाब, माल, मुजरा, मुहकम, मुहर्रिर, मुसाहिब, मौज, उजरि, कसाई, कागज,

---

१. सूरसागर, पद सं० ३८६७।
२. वही, पद सं० ३६८६।
३. वही, पद सं० ३६६१।
४. वही, पद सं० २६२।
५. वही, पद सं० १३५७।
६. वही, पद सं० १६५५।

क़त्ल, खत्म, खबरि, गरीब, गुलाम, गरज, जमानत, मसक्कत, साबिक आदि शब्द मिलते हैं। फारसी के शब्दों में अजाद, अपसोच, आब, कमान, खाक, खाराजाद, गुनहगार, गुंजाइश, दस्तक, दरजी, दरद, दरबार, दुश्मन, तकली, बकसना, बजाज, बरामदा, बेशरम, हरामी आदि शब्द मिलते हैं।

सूर की भाषा में हिन्दी की अवधी, कन्नौजी, बुन्देलखण्डी तथा खड़ी बोली के शब्दों के भी प्रयोग पाए जाते हैं।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि सूर की भाषा में संस्कृत की परम्परा के शब्दों के अतिरिक्त देशी-विदेशी सभी शब्दों का एवं हिन्दी की सभी बोलियों के शब्दों का भरा-पूरा भण्डार था। इसी कारण सूर-साहित्य की क्षमता अत्यधिक बढ़ी।

सूर की भाषा में कहीं-कहीं कुछ दोष भी पाए जाते हैं। कहीं-कहीं अनावश्यक शब्दों की आवृत्ति बार-बार हुई है जिससे पाठक को अरुचि पैदा हो जाती है। दृष्ट-कूटों की भाषा इतनी क्लिष्ट हो गई है कि जन-साधारण की समझ से वे बिल्कुल बाहर हो जाते हैं। वहाँ पाठक को ज्योतिष गणित का सहारा लेकर अर्थ बैठाना पड़ता है। कहीं-कहीं उनकी भाषा में अश्लीलत्व भी आ जाता है। राधा-कृष्ण के संयोग के समय कवि ने लिखा है—

हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्हीं।
प्रिया बिनु बसन करि, उलटि धरि, भुजन भरि, सुरति रति पूरि अति
निबल कीन्हीं।[2]

निष्कर्ष रूप में सूर की भाषा अत्यन्त सशक्त एवं सरल ही कही जा सकती है। इसकी शक्ति की सीमा को जब सूर ने स्पष्ट दिखा दिया तो आगे आने वाले रीति कवियों ने दो सौ वर्षों तक इसका साथ न छोड़ा। रीति कवियों को भाषा की देन भी सूर की ही थी। वे सूर के बहुत बड़े ऋणी हैं। सूर की भाषा से प्रभावित ही नहीं हुए बल्कि पूर्णरूपेण उसी को ग्रहण कर लिया। महाकवि तुलसी भी सूर से प्रभावित होकर अवधी के अतिरिक्त ब्रजभाषा में लिखने लगे।

दृष्टिपात करने पर सूर ने भी स्त्रियों को कामिनी के ही रूप में देखा है। कृष्ण की बाल-लीलाओं को देखकर गोपियों में काम भाव जगना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। माखन चोरी के अवसर पर गोपियाँ मन-ही-मन यह अभिलाषा व्यक्त करती हैं कि कृष्ण यदि मेरे घर माखन खाने आ जाते तो उनको पकड़ कर उनकी भुजाओं से अपने वक्ष:स्थल को स्पर्श कराती और भरपेट माखन खाने की छूट दे देतीं।[1]

पनघट लीला, दानलीला, रास, नृत्य आदि के अवसरों पर कृष्ण जितने सक्रिय दिखाई देते हैं लगभग उतनी ही गोपियाँ भी और कृष्ण गोपियों के कामिनी स्वरूप पर ही आकृष्ट होकर छेड़खानी भी करते हैं। इस प्रकार इन अवसरों पर कवि ने स्त्रियों का कामिनी स्वरूप ही देखा है। वे रमणी हैं इसलिए उनसे रमण करने के लिए युवक कृष्ण लालायित रहते हैं। गोपियाँ स्वयं कृष्ण से मिलने के लिए आतुर रहती हैं। रीती मटकी लेकर कृष्ण के कुंजों में वे स्वयं दही बेचने के बहाने पहुँच जाया करती हैं।[2] उनको अपनी कुल-मर्यादा का भी ध्यान नहीं रहता है। यौवन के मद में उन्हें माता, पिता, गुरुजन, पति किसी की चिंता नहीं रहती है। वस्तुत: वे केवल 'स्याम-रस' में मतवाली रहती हैं।[3]

सूर के साहित्य में जितनी नारियों का चित्रण हुआ है उनमें यशोदा, वृषभानु की पत्नी, देवकी, रोहिणी आदि को छोड़कर शेष सभी प्राय: कामिनी अथवा कामिनी की सहयोग करने वाली के रूप में सामने आई हैं। राधा और उनकी सखियाँ तथा अन्य गोपियाँ सभी कृष्ण का सहवास-सुख चाहती हैं। दूतियाँ इनकी इच्छा-पूर्ति के लिए सहायता करती हैं। इन स्त्रियों के आचरण एक सामान्य नारी जैसे होते हैं। सामान्य नारी के सभी गुण और दोष प्राय: इनमें पाए जाते हैं। इनका चरित्र-चित्रण करते हुए कृष्ण ने स्वयं कहा है कि—

> **मोसों बात सुनहु ब्रज-नारि।**
> **इक उपखान चलत त्रिभुवन मैं तुमसौ कहौं उघारि।**
> **कहूँ बालक मुँह न दीजियै मुँह न दीजियै नारी।**
> **जोइ मन करै सोइ करि डारै, मूँड़ चढ़त हैं भारी।**[4]

इन पंक्तियों से नारी-स्वभाव के हल्केपन को कवि ने स्पष्ट कर दिया है।

भक्त कवियों ने नारी को जीवन की एक बाधा, धर्म के मार्ग का रोड़ा एवं सांसारिक आसक्ति का केन्द्र माना है। सूरदास भी उसी परम्परा के मानने वाले थे अर्थात् स्त्रियों को भोग्या और कामिनी उन्होंने भी माना। यही कारण था कि उन्होंने

---

१. सूरसागर, पद सं० ८६०।
२. वही, पद सं० २२३८-४१।
३. वही, पद सं० २२४२।
४. वही, पद सं० २१३६।

सूरसागर में कामशास्त्रीय एवं साहित्यशास्त्रीय नायिकाओं का चित्रण किया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास जी के स्त्रियों के प्रति बिल्कुल वे ही विचार थे, जो रीति कवियों के थे।

कविवर नन्ददास

नन्ददास अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। अष्टछाप के कवियों में नन्ददास जी का स्थान कविवर सूरदास के बाद अर्थात् द्वितीय आता है। इनकी सभी रचनाओं की ग्रंथावली काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा श्री व्रजरत्नदास जी ने प्रकाशित की है। इस ग्रंथावली में इनके सभी चौदहों ग्रंथों का सम्पादन किया गया है। इनकी रचनाओं को देखकर इन्हें शुद्ध रीति-कवि भी कहा जा सकता है। इनकी शुद्ध काव्यशास्त्र-सम्बन्धी तीन रचनाएँ हैं—अनेकार्थ मंजरी, नाममाला तथा रस-मंजरी। शेष ग्यारह रचनाओं में इनकी सम्प्रदायगत भावनाओं की अभिव्यंजना है परन्तु इन रचनाओं में भी कवि की साहित्य-शास्त्रीय प्रवृत्ति रह-रह कर उमड़ती गई है। इनकी सम्प्रदायगत भावनाएँ एवं काव्यशास्त्रीय ज्ञान दोनों अलग-अलग व्यक्त हुए हैं। इनमें दूध-पानी जैसा सामंजस्य नहीं हो पाया है। जहाँ इनको समन्वित करके व्यक्त करने की चेष्टा कवि ने की है वहाँ भी अच्छी सफलता नहीं मिली है। 'विरह मंजरी' इसका स्पष्ट उदाहरण है। इन्होंने अपनी पूर्व-प्रचलित प्रायः सभी साहित्यिक परम्पराओं को समेटने का प्रयास किया है। इसीलिए मुक्तक एवं प्रबन्ध दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। हिंदी की प्रेमाख्यानक काव्य की परम्पराओं को भी अपनी 'रूप मंजरी' में इन्होंने अपनाया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नन्ददास जी अपने साहित्यिक ज्ञान को अभिव्यक्त करने का साधन ढूँढ़ते रहे हैं और अवसर पाने पर उसे व्यक्त करते रहे हैं। इनकी रचनाओं में सम्प्रदायगत एवं काव्यशास्त्रगत दोनों प्रवृत्तियाँ समान रूप से पाई जाती हैं।

है ।[1] इस अवसर पर संभोग से क्षत-विक्षत स्थिति को भी कवि ने दिखाया है ।

संयोग के वाद की अलसाई एवं अटपटी स्थिति का भी नन्ददास ने सुन्दर वर्णन किया है । 'रूप मंजरी' जब प्रिय के संयोग से प्रफुल्लित एवं सुरति रस की मतवाली शैया से उठी तो उसकी अलकें अस्त-व्यस्त थीं, भाल पर श्रम-बिन्दु झलक रहे थे । नेत्रों की पलकों पर लगी पीक प्रिय समागम की सूचना दे रही थी । इतना ही नहीं प्रिय के गले का पुष्पाहार नायिका के गले की शोभा बढ़ा रहा था । जब से नायिका का यह मतवाला स्वरूप दिखाई दिया तब से उसकी देह-द्युति क्षण-क्षण विकसित होती जान पड़ती है ।[2]

संयोग शृंगार के अन्तर्गत चुँवन, नीवीकर्पण, कुचस्पर्श आदि का वर्णन साहित्यशास्त्रीय दृष्टि से भी कवि ने किया है । किसी भी स्थल पर संयोग शृंगार का प्रसंग आते ही कवि कह उठता है—

कच-लट गहि बदनन की चूमनि । नख नाराचन घायल घूमनि ।।
कुचन की परसनि नीवी करसनि । सुखन की वरसनि मन की सरसनि ।।[3]

अनेक स्थलों पर कवि ने ऐसी उक्तियाँ कही हैं ।[4] कहने का तात्पर्य कि वर्णन का एक साँचा कवि के मस्तिष्क में वर्तमान था उसी से प्रत्येक प्रसंग के (संयोग-शृंगार) को ढाल देता था । इसी कारण उनके वर्णनों में विभिन्नता नहीं है ।

संयोगावस्था का पूर्ण आनन्द प्राप्त करने के लिए नायक-नायिका एक-दूसरे के अंग-प्रत्यंगों को अपने हाथों से सजाते एवं संवारते हैं । प्रेम की ऐसी विभोरावस्था का अन्यतम वर्णन नन्ददास ने किया है । कृष्ण अपने हाथों से ही राधा की महावर रंगना चाहते हैं । राधा के चरण इतने कोमल एवं सुन्दर है कि जब-जब कृष्ण उनको ग्रहण करते हैं, तो उनको देखने में ही आत्मविभोर हो जाते हैं और महावर रंगना भूल जाते हैं । नवोढ़ा राधा प्रिय की यह स्थिति देखकर उन्हें वर्जित करती हुई खीझ उठती है और अपने चरणों को दूर हटा लेती है ।[5] ऐसे वर्णनों में नन्ददास ने दाम्पत्य-जीवन का सहज चित्र खींचा है ।

संयोगावस्था की नायक-नायिका की सरस वार्ता का भी नन्ददास ने वर्णन किया है । एक बार राधा और कृष्ण में इस बात की होड़ लग गई कि बेसर किसकी अधिक सरस है । यह विवाद सखी ललिता के सम्मुख उपस्थित किया गया जिसने निर्णय दिया कि हे प्रभु ! इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं है । आपकी प्रिया

की वेसर कुछ अधिक सुन्दर प्रतीत होती है ।[1] नायिका की वेसर को अधिक सरस वता कर कवि ने उसकी कमनीयता को व्यक्त किया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि नन्ददास के सम्प्रदाय में मधुरभाव के कारण कृष्ण को भी वेसर पहनाया जाता है अन्यथा वेसर स्त्रियों का ही आभूपण है ।

समागम की स्थिति में नायक-नायिका इतने आत्मविभोर हो जाते हैं कि दोनों एक-दूसरे से अलग होना ही नहीं चाहते हैं । नन्ददास की रूपमंजरी भोर होने पर भी प्रिय से लिपटी हुई है । वह अलग होना चाहती ही नहीं इसलिए सूर्य-रूपी करोत ने दोनों प्रेमियों के एकरूप शरीर को चीर कर अलग-अलग किया ।[2] प्रेमियों के गाढ़ालिगन को व्यक्त करने के लिये कवि ने यह कल्पना की है। चीरने-फाड़ने की कल्पना कवि पर फारसी साहित्य के प्रभाव की द्योतक है ।

संयोग के पश्चात् की उन्मादपूर्ण स्थिति का नन्ददास ने अच्छा वर्णन किया है। ऐसे स्थलों पर कवि की कल्पनाएँ भी अद्भुत हैं। चाँदनी रात में केलि के पश्चात् प्रिय और प्यारी यौवन के उन्माद में लिपटे पड़े हुए हैं। आवेश के कारण कंचुकी फट गई है । दोनों कुच इस प्रकार वाहर भाँक रहे हैं मानो कामातुर चक्रवाक प्रभात की प्रतीक्षा में घोंसले से वाहर चोंच निकाल कर भाँक रहे हों ।[3] इसी प्रकार के संयोग के अनेक मनोहर चित्र नन्ददास की रचनाओं में भरे पड़े हैं ।

वियोग-वर्णन :

नन्ददास वस्तुतः वियोग के कवि हैं। संयोग की अपेक्षा वियोग का इन्होंने वहुत अच्छा वर्णन किया है। रूप मंजरी, भँवरगीत, रुक्मिणीमंगल, रास पंचाध्यायी आदि रचनाओं में तो इन्होंने प्रसंगवश वियोग-वर्णन किया ही है। विरह की वास्तविक व्यंजना दिखाने के लिए 'विरह मंजरी' नाम का एक स्वतन्त्र एवं काल्पनिक ग्रन्थ भी लिखा है। इसका कारण इनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। आत्मारूपी प्रिया से परमात्मा रूपी प्रिय का वियोग इनकी रचनाओं में व्यंजित है। आध्यात्मिक प्रेरणा से आप्लावित होते हुए भी इन्होंने अपने विरह-वर्णन की पद्धति साहित्यशास्त्रीय अपनाई है । इस कारण इनके वियोग-वर्णन में अध्यात्म एवं साहित्यशास्त्र दोनों का मिश्रण है परन्तु दोनों का अलग-अलग अस्तित्व भी स्पष्ट है । वियोग के तीनों रूप पूर्वराग, मान एवं प्रवास का विशद् वर्णन इन्होंने किया है ।

पूर्वराग-वर्णन :

वियोग की पूर्वराग अवस्था का वर्णन नन्ददास की रूपमंजरी नामक

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पद सं० ६६, पृ० ३०१ ।

२. वही, पृ० १२५ ।

३. वही, पृ० ३०१ ।

आख्यानक काव्य एवं रुक्मिणीमंगल में अत्यन्त सुन्दर एवं शास्त्रीय पद्धति पर हुआ है। पूर्वराग का वियोग गुण-श्रवण, चित्र दर्शन अथवा स्वप्न-दर्शन से होता है। नन्ददास ने इसका अच्छा वर्णन रूपमंजरी में ही किया है। रूपमंजरी के हृदय में उपपति भाव उत्पन्न करने के लिए उसकी सखी इन्दुमती कृष्ण की उपासना करती है और रूपमंजरी को भी उनके अनुकूल बनाने का प्रयास करती है। इस कार्य के लिए मूर्ति-दर्शन एवं गुण-श्रवण दोनों पद्धतियों को वह अपनाती है।[1] इन्दुमती के प्रयास के अनन्तर रूपमंजरी कृष्ण का दर्शन स्वप्न में प्राप्त करती है और उनके वियोग में बावरी हो उठती है। स्वप्न-दर्शन का नन्ददास ने अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन किया है जिसमें नायिका की सीत्कार आदि का भी वर्णन हुआ है।[2] स्वप्न-दर्शन होते ही नायिका वियोग की मूर्च्छावस्था को प्राप्त हो जाती है जिससे सखियों को भूत-प्रेत आदि का भ्रम होने लगता है।[3] मूर्च्छा के और भी वर्णन इसी प्रसंग में नन्ददास ने किये हैं। रूपमंजरी की मूर्च्छा अधिक देर तक रुकती है। एक बार सखियाँ उसे मूर्च्छित अवस्था में ही उसके घर उठा कर ले गईं। उसकी माता अत्यन्त घबराई। लोगों को भूत-प्रेत, दृष्टि आदि की शंका होने लगी। शराबी की उन्मत्त अवस्था के समान उसकी मूर्च्छा हल्की एवं गहरी होती रहती थी। इस पर एक सखी ने उसके कान में यह मन्त्र पढ़ा—

कान लागि सहचरि कहै जाग छबीली बाल।
वे आए बलि देखि उठि, मोहन गिरिधर लाल॥[4]

इस मंत्र के साथ ही नायिका उठ बैठी एवं अपनी माँ की विह्वल स्थिति देखकर लज्जा से संकुचित हो गई। इसी प्रकार वियोग की अन्य अवस्थाएँ भी नायिका के पूर्वराग-वियोग से ही वर्णित हैं।

पूर्वराग-वर्णन में रूपमंजरी में ऋतु-वर्णन भी नन्ददास ने किया है। इनका ऋतु-वर्णन पावस से आरंभ किया गया है और शरद्, हिम, शीत ऋतुओं का वर्णन करते हुए वसन्त, होली एवं ग्रीष्म-वर्णन के साथ समाप्त किया गया है। यह ऋतु-वर्णन मात्र शास्त्रीय परंपरा के पालन के लिए किया गया है। इस पर विचार प्रकृति-वर्णन के प्रसंग में किया जाएगा। श्यामसगाई एवं रुक्मिणीमंगल में ऋतु-वर्णन तो नहीं किया गया है परन्तु अन्य वर्णन रूपमंजरी के वर्णन के अनुरूप ही हुआ है।

मान-वर्णन :

मान का वर्णन नन्ददास ने दो रूपों में किया है। अपनी पदावली में इन्होंने

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० ११० ।
२. वही, पृ० ११० ।
३. वही, पृ० ११० ।
४. वही, पृ० १२१ ।

राधा के मान का स्वतंत्र वर्णन लगभग पन्द्रह पदों में किया है। इसके अतिरिक्त 'नाममाला' नाम की रचना में भी अत्यन्त कलात्मक ढंग से मान का वर्णन किया गया है। यह नन्ददास जी की एक-शास्त्रीय रचना है। इसकी रचना दोहा छन्द में की गई है। दोहों की प्रथम पंक्ति में किसी एक शब्द के पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं और दूसरी पंक्ति में नायिका के मान का वर्णन किया गया है। उदाहरण के लिए दो-एक दोहों को देखिए।[1] इसी प्रकार पूरे ग्रन्थ में नायिका के मान का वर्णन बड़े ही कौशल के साथ किया गया है।

पदावली में वर्णित मान नायिका की रूठी मुद्रा का अत्यन्त स्वाभाविक चित्र उपस्थित करता है। नायिका नेत्रों को बन्द किए रूठी हुई अपने कर-कमल पर मुख चन्द्र को रखे बैठी हुई है। उसकी रोष-भरी भौंहें ऐसी जान पड़ती हैं मानो अरबराते हुए मधुप हों जो चन्द्रमा की छाया में अरविंद का मकरन्द ग्रहण करने आए हों। दूती नायिका की इस रूप-माधुरी पर मुग्ध होकर कहती है कि पहले उस रूपमाधुरी को आप पान करें पीछे मान-मनावन होगा।[2]

मान भंग करने का प्रयास करने वाली दूतिका को राधा की फटकार भी सुननी पड़ी। नायिका की फटकार में उसका रोष स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। कवि की इस उक्ति से उसकी साहित्यिक प्रतिभा का भी आभास मिलता है। मुहावरों का अन्यतम प्रयोग देखिए—

दौरी-दौरी आवत, मोहि मनावत, दाम खरचि मनौ मोल लई री।
अंचरा पसारि कै मोहि खिजावत, तेरे बाबा की का हौं चेरी भई री।
जा री जा सखि भवन आपुने, लाख बात की एकु कई री।
नंददास प्रभु क्यों नहिं आवत, उन पाँयन कछु मेंहदी दई री।[3]

इस पद में लगभग आठ मुहावरों का प्रयोग हुआ है जिनका समष्टिगत प्रभाव नायिका की मान अवस्था को व्यक्त करने में सहायक हुआ है। खीझी हुई मानवती नायिका का इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ ही है।

नायिका की अभूतपूर्व रुष्ट मुद्रा को देखकर दूती ने कृष्ण को स्वयं अपना कार्य करने की राय दी। उसने कृष्ण को समझाया कि 'आप लज्जा न करें स्वयं

---

१. सरस्वती—बानी, बाक, सरस्वती, गिरा, शारदा नाम।
चली मानवन भारती, वचन चातुरी काम॥
शीघ्र— आशु, झटिति, द्रुत, तूर्ण, लघु, छिप्र सत्वर उताल।
तुरत चली चातुर अली, आतुर लखि नन्दलाल॥
—नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० ६६

२. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० ३२०।

३. वही, पृ० ३१७।

नायिका के पास पधारें, मेरे जैसी एक करोड़ दूतियाँ भी उसे अनुकूल नहीं बना सकती हैं। बड़ों की उक्ति भी यही प्रसिद्ध है कि 'आप काज महा काज।'[1] कृष्ण को दूती की राय माननी पड़ी। उन्होंने स्वयं स्त्री-वेश धारण किया, स्त्रियों के वस्त्राभूषण से अपने को आभूषित किया और हाथों में वीणा धारण कर ली। कृष्ण अपने इस कार्य में सफल भी हो गए। उनकी वीणा के स्वर ने नायिका को मोह लिया। नायिका का मान भंग हो गया। युगल प्रेमी संयोग के सुख सागर में आनन्दित हो उठे।[2]

नन्ददास का मान-वर्णन बिल्कुल शास्त्रानुकूल हुआ है। इसमें लघु, मध्यम गुरु तीनों प्रकार के मान-वर्णन मिलते हैं। विस्तार-भय के कारण यहाँ पदों को उद्धृत करना सम्भव नहीं है।

प्रवास-वर्णन :

प्रवास वियोग के वर्णन का कृष्ण साहित्य में अधिक प्रचलन रहा है। नन्ददास भी उस परम्परा के पालक रहे हैं। कृष्ण की गोकुल से मथुरा चले जाने वाली कथा प्रवास-वर्णन का अच्छा क्षेत्र प्रस्तुत कर देती है। कृष्ण-काव्य का भ्रमरगीत साहित्य इसी क्षेत्र की उपज है। नन्ददास के अनेक ग्रन्थों में प्रवास का वर्णन पाया जाता है। यह उनके सम्प्रदाय एवं साहित्य दोनों की विशेषता है। भ्रमरगीत, रासपंचाध्यायी, विरह मंजरी आदि ग्रन्थों में प्रवास का अच्छा वर्णन किया गया है। भ्रमरगीत में निर्गुण सगुण का विवेचन तर्कयुक्त पद्धति से किया गया है। यहाँ कवि का लक्ष्य वियोग-वर्णन करना नहीं सगुण मत की स्थापना एवं निर्गुण मत का खंडन करना रहा है।

'रासपंचाध्यायी' में प्रवास वियोग के कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जो अश्लील कहे जा सकते हैं परन्तु ऐसे उदाहरण इनके ग्रन्थों में अन्यत्र अप्राप्त हैं। इसी स्थल पर गोपियों की कुछ उक्तियाँ अत्यन्त मार्मिक हैं। कृष्ण से उनका निवेदन है कि हे मित्र! हे प्राणनाथ! सबसे बड़ा आश्चर्य यही है कि यदि आप हम लोगों जैसे अपने आदमियों को ही इतना अधिक वियोग में सताते हैं तो औरों की क्या रखवाली करेंगे।[3] प्रवास के अन्य वर्णनों में इनकी धार्मिक भावना अधिक प्रबल है। नन्ददास ने साहित्यशास्त्रीय वियोग से अतिरिक्त अपनी आध्यात्मिक दृष्टि से वियोग के चार भेद किये हैं। रीतिकालीन कवियों की भाँति इन भेदों के उदाहरण और लक्षण भी दिये गए हैं। नन्ददास ने वियोग का भेद इस प्रकार किया है—

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० ३१८-१९।
२. वही, पृ० १४।
३. वही, पृ० १४।

ब्रज में विरह चारि परकारा। जानत हैं जो जाननहारा।
प्रथम प्रतच्छ विरह तू गनि लै। तातैं पुनि पलकांतर सुनिलै।
तिसरे विरह वनांतर भए। चतुरथ दिसांतर कैं गए।
प्रतछि विरह कैं सुनि अव लच्छिन। चकित होत तहँ वड़े विवच्छिन ॥[1]

देशान्तर एवं वनान्तर विरह साहित्यशास्त्रीय प्रवास विरह के अन्तर्गत आ जाते हैं परन्तु प्रत्यक्ष एवं पलकान्तर विरह कवि की नवीन कल्पनाएँ हैं।

प्रत्यक्ष विरह में प्रिय साथ-साथ रहता है परन्तु प्रेम की पराकाष्ठा में वियोग का क्षणिक भ्रम ही कष्टदायक हो जाता है। अर्थात् प्रेमिका को क्षण मात्र के लिए वियोग का भ्रम हो जाता है।[2] प्रेम की इसी पराकाष्ठा की व्यंजना घनानन्द ने इस प्रकार की है—

'यह कैसो संयोग न बूझि परै जो वियोग न क्योंहू विछोहत है।'

पलकान्तर विरह में नन्ददास जी ने प्रिय दर्शन की अटूट लालसा की अभिव्यंजना की है। पलकों के गिरने मात्र से ही जो प्रिय दर्शन में पल मात्र के लिए व्यवधान उपस्थित होता है उसे पलकान्तर विरह कहा गया है।[3] इसका तात्पर्य यह है कि एकटक प्रिय की रूप-माधुरी को अवलोका करें।

वनान्तर विरह उस समय होता है जब कृष्ण गायों के साथ वन में उनको चराने चले जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में नायिका का एक-एक पल एक-एक युग के समान बीतता है। उसकी सारी इंद्रियाँ प्रिय के पास चली जाती हैं परन्तु प्राणप्रिय के वन से वापस आने की आशा में शरीर में ही वर्तमान रहती हैं।[4]

देशान्तर विरह प्रिय के विदेश चले जाने पर होता है। कृष्ण का देशान्तर वास तो कभी नहीं हुआ था परन्तु नन्ददास ने इसकी कल्पना कर ली है और रीति कवियों की सधी भाषा में लिखा है।[5] जिस प्रकार कोई व्यक्ति अपने पास की मणि को गले में बाँध कर भूल जाए और जंगल-जंगल ढूँढ़ता फिरे उसी प्रकार नन्ददास की नायिका प्रिय के पास अर्थात् अन्तस्तल में रहते हुए भी देशान्तर विरह में व्याकुल होती है।

नन्ददास का वियोग-विभाजन एक नवीन कल्पना है परन्तु कवि ने साहित्य-विभाजन की भाँति स्वयं भी अपने पांडित्य-प्रकाशन के लिए यह विभाजन किया है यद्यपि आध्यात्मिक दृष्टि से इनके विभाजन का महत्त्व है। इस प्रकार वियोग की

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० १४२।
२. वही, पृ० १४२।
३. वही, पृ० १४३।
४. वही, पृ० १४३।
५. वही, पृ० १४३।

शास्त्रीय परिधि में ही कवि ने अपना वर्णन किया है।

कामदशाओं का वर्णन :

विरह की ऐसी दशाओं का भी वर्णन नन्ददास के साहित्य में पाया जाता है। विद्वानों ने अपनी कृतियों में इनके साहित्य में वर्णित दस दशाओं को उदाहरण के साथ दिखाया भी है।[1] यहाँ भी कुछ वियोग की दशाओं के उदाहरण इनके साहित्य से प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

अभिलाषा—

प्रगट मिलन कों अति अरबरै। रहसि बैठि तिय जतननि करै।
दर्पन लै उर आगें धरै। मति इहँ झाँई पिय की परै॥[2]

चिन्ता—

जर जाओ री लाज, मेरो ऐसो कौन काज,
आवत कमल-नैन नीकै देखन न दीने।
बन तें जु आवत मारग में भई भेंट,
सकुच रही री हौं इन लोगन के लीने।
कोटि जतन करि हारी मोहन निहारिबे कौं,
आचरा की ओट दै-दै कोट स्रम झीने।
नन्ददास प्रभु प्यारो जा दिन तें मेरे नैन,
उनही के अंग संग रंग रस भीने॥[3]

स्मृति—

अहो मीत, अहो प्राननाथ यह अचरज भारी।
अपननि जो मरिहौ करिहौ काकी रखवारी।
जब पसु चारन चलत चरन कोमल धरि बन में।
सिलत्रिन कंटक अटकल कसकत हमरे मन में॥[4]

गुण-कथन—

बेनी गुहन समय छबिलो पाछें बैठो जब।
सुन्दर बदन बिलोकनि पिय के अंतर भयो तब।

---

१. रामरतन भटनागर, नन्ददास एक अध्ययन, पृ० २०।
२. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० ११५।
३. वही, पृ० २०४।
४. वही, पृ० १४।

तातें मंजुल मुकुर सुकुर लै वाल दिखायो।
श्री मुख को प्रतिबिंव सखी तव सनमुख आयो॥[1]

उद्वेग—

मिटी भूख अरु प्यास, पास कोउ और न भावै।
कोनें जाइ उसास भरै दुख कहत न आवै॥
... ...
टप टप टप टप टपकि नैन सों अंसुआ दूरहीं।
मनु नव नील कमल-दल तें भल मुतिया झरहीं॥[2]

प्रलाप—

हे मालति ! हे जाति ! जूथिके ! सुनियत दै चित।
मान-हरन मन-हरन गिरिधरन लाल लखे इत।
हे केतकि ! इत कितहूँ तुम चितए पिय रूसे।
किधौं नन्द नन्द (न) मन्द मुसकि तुमरे मन मूसे॥[3]

उन्माद—

सखियन ऊँचे वैन कहे पै कुंवरि न वोलै।
पूंछति विविध प्रकार, लड़ंती नैन न खोलै।
वड़ी वेर वीती जवै तव सुधि आई नैकु।
स्याम स्याम रटिवे लगी एकुहि वेर जु कहैं कु॥
वढ़ति ज्यों वावरी॥[4]

व्याधि—

ह्वै गयो कछु विवरन-तन छाजत यों छवि छाई।
रूप अनूपम वेलि तनक मनु घाम में आई॥[5]

जड़ता—

फिरि गये नैन मूरछा आई। वहुरि सहचरी कंठ लगाई।
... ...

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० १२, १३।
२. वही, पृ० १७६।
३. वही, पृ० ११।
४. वही, पृ० १७१।
५. वही, पृ० १७६।

घर तें डरपि सखी घर लाई। घरहू बड़ी बेर सुधि आई।
भूत छिये मंदिरा पिये सब काहू सुधि होय।
प्रेम सुधा रस जो पिवै, तिहि सुधि रहै न कोय ॥[1]

नन्ददास ग्रन्थावली में विरह दशाओं के उदाहरण केवल कवि की प्रवृत्ति के संकेत मात्र के लिए दिये गए हैं। इन दशाओं के अनेक-अनेक उदाहरण इनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं। सबको सूचित करना यहाँ सम्भव नहीं है।

नन्ददास जी का वियोग-वर्णन आध्यात्मिक है इसीलिए उन्होंने प्रत्यक्ष और पलकान्तर विरह की कल्पना की है। उनकी 'विरह मंजरी' में कल्पना के ही आधार पर नायिका को भ्रम में डालकर विरह का सारा बारहमासा गाया गया है। नायिका को संध्या समय प्रिय मिल चुका है और थोड़ी रात रहने पर जगती है तो उसे द्वारावति लीला की सुधि आ जाती है और क्षण मात्र में ही अपने बारह महीनों के कष्ट को चन्द्र-दूत से कह डालती है।[2] इस प्रकार की विरोधी उक्तियाँ कवि को क्यों नहीं खटकीं यह प्रश्न विचारणीय है। कवि की भक्त आत्मा परमात्मा रूपी प्रिय का सान्निध्य एक क्षण के लिए भी छोड़ना नहीं चाहती है। इसी कारण उसे प्रत्यक्ष संयोग में भी विरह का खटका बना रहता है इसीलिए प्रत्यक्ष विरह की कल्पना की गई है। प्रिय से प्रत्यक्ष एवं पलकान्तर विरह की कल्पना करने वाले के लिए द्वारावति लीला की सुधि आने पर विरह-विह्वल होना अस्वाभाविक नहीं है।

जाने पर तो निकलती ही नहीं है तो तीन छोरों वाली वस्तु कैसे निकल सकती है। इसकी कसक भुक्तभोगी ही समझ सकता है। नायिका की मूर्च्छित अवस्था पर कवि कहता है कि भूत लगने और मदपान करने से आई मूर्च्छा में तो सुधि आती भी है परन्तु प्रेम-सुधा पान करने वाले को चेतना आती ही नहीं है।[1]

'रुक्मिणी मंगल' में रुक्मिणी के पत्र का उत्तर कृष्ण के यहाँ से लेकर एक ब्राह्मण आया। नायिका इतनी विह्वल है कि ब्राह्मण को देखकर उससे इसलिए बात नहीं कर पाती है कि न जाने क्या सन्देश लेकर आया है, अमृतमय या विषमय। इस स्थल पर नायिका की ऊहापोह में पड़ी स्थिति का वर्णन करने में कवि को अच्छी सफलता मिली है।[2] नायिका का तरफराती हुई घर-आँगन में घूमना और अट्टालिकाओं के झरोखों से प्रिय का मार्ग देखना उसकी मार्मिक विकलता को व्यक्त करता है।[3]

नन्ददास के विरह-वर्णन में कुछ ऐसे भी स्थल हैं जहाँ कवि का कथन स्वाभाविकता से अधिक दूर हो गया है। रुक्मिणी का पत्र जब ब्राह्मण कृष्ण के पास लेकर पहुँचा तो पत्र विरह के हाथों से लिखा होने के कारण उस समय भी तप्त था।[4] न जाने किस विधि से ब्राह्मण उसे ले गया। विरह की दावाग्नि के आवा में रुक्मिणी तप्त हो रही थी। उसकी अग्नि से नायिका के गले में पड़ी मोतियों की माला के दाने तप-तप कर लाल हो गए हैं।[5] इतने ऊँचे तापमान पर नायिका जीवित कैसे रहे? इतना ही नहीं रूपमंजरी के हृदय की ज्वाला से उसके गले के हार के मोती तड़-तड़ फट कर लावा हो गए।[6] नायिका के विरह-दुःख का वर्णन करते हुए कवि ने उसे लोहार की संड़सी बनाया है। दुःख में वह लोहार की संड़सी की तरह तप्त होकर लाल हो जा रही है और थोड़ी देर के लिए शान्ति पाने पर शीतल हो जाती है। जिस प्रकार लोहार अधिक गरम संड़सी को पानी में डालकर तुरन्त ठण्डा कर लेता है और फिर उससे काम लेने लगता है उसी प्रकार विरह भी नायिका को रह-रहकर तप्त करता रहता है।[7] रूपमंजरी अपनी विरह-ज्वाला की प्रचंडता को स्वयं मापती है। इसीलिए कमल की माला स्वयं हाथ से न छू कर अपने पास सखियों से रखवाती है ताकि वह भस्म न हो जाए।[8]

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० १८१।
२. वही, पृ० १८०।
३. वही, पृ० १८०।
४. वही, पृ० १७९।
५. वही, पृ० १७६।
६. वही, पृ० १२३।
७. वही, पृ० १४५।
८. वही, पृ० ११५।

इसी प्रकार की उक्ति परकीया प्रोषितपतिका नायक के उदाहरण में[1] तथा 'रुक्मिणी-मंगल' में रुक्मिणी के वियोग-वर्णन के प्रसंग[2] में तथा अन्य स्थलों पर कवि ने कहा है। इस प्रकार की विरह-सम्बन्धी उक्तियों में कवि की चमत्कारप्रियता झलकती है, भाव-शवलता नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शृंगार-वर्णन के क्षेत्र में नन्ददास के साहित्य में अध्यात्म को छोड़ कर शेष अधिकांश प्रवृत्तियाँ वही हैं जो रीति कवियों की हैं। साहित्य की सारी प्रवृत्तियाँ दोनों में एक समान हैं।

आलम्बन-वर्णन :

शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका होते हैं। इनका विशद वर्णन नन्ददास के साहित्य में पाया जाता है। राधा और कृष्ण की लीलाओं के वर्णन में इन्होंने उनके आचरण को नायक-नायिका भेद के अनुसार ही दिखाने की कोशिश की है। इनके काव्य में नायक-नायिका भेद की दृष्टि सदैव सजग रही है। इसीलिए इन्होंने अपने प्रबन्ध-काव्यों में भी नायिकाओं के स्वरूप को चित्रित करते हुए उनके रूप को ज्यों-का-त्यों उसी रूप में वर्णित किया है जिस रूप में अपने नायिका-भेद-सम्बन्धी ग्रन्थ रसमंजरी में। उदाहरण के लिए रूपमंजरी में नायिका रूपमंजरी की वयःसन्धि का वर्णन कवि ने अज्ञात यौवना नायिका के रूप में किया है।

> सो अज्ञात जोवन वर वाला। राजत नखसिख रूप रसाला।
> सगि जब सर स्नानहिं लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माहीं।
> तिय तन परिमल जो लगि पावें। अंबुज तजि सब अलि चलि आवें॥
>
> + + +
>
> पीछे डारत रोम की धारा। मानति वाल सिवाल की डारा।
> चंचल नैन चलत जब कौने। मरद कमल दल ही तें लौने।
> तिनहिं श्रवन बिच पकर्‌यौ चहै। अंबुज दल से लागे कहै॥[3]

इन्हीं शब्दों में यही उक्ति अपनी शास्त्रीय रचना रसमंजरी में अज्ञात यौवना नायिका का लक्षण बताते हुए भी कवि ने कही है।[4] इसी प्रकार रूपमंजरी के हृदय में कृष्ण के प्रति प्रेम भाव जाग्रत करने के बाद कवि उसकी परकीया-प्रोषित पतिका की स्थिति का चित्रण करते हुए लिखता है—

आन की ढिग उसास नहिं लेई। मूँदे मुँह तिहि ऊतरू देई।
तपत उसासनि जौं कोउ लहै। वाला विरहिनि का तव कहै।
जो कोइ कमल फूल पकरावै। हाथ न छुवै निकट धरवावै।
अपने कर जु विरह जुर ताते। मति झुरि जाहि डरत तिय यातें॥[1]

कवि की रसमंजरी के 'परकीया प्रोषित पतिका' नायिका के लिए दिए गए लक्षणों से भी यह अक्षरशः मिलता है।[2] यही उक्ति रुक्मिणी की वियोगावस्था का चित्रण करने के लिए भी कवि ने कही है।[3]

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि नन्ददास अपने काव्य के आलंवन-वर्णन में साहित्य-शास्त्रीय पद्धति अपनाने के लिए सदैव सजग रहते थे और प्रत्येक वर्णन उसी के अनुसार करते थे। अपने लक्षण-ग्रन्थ रसमंजरी की पंक्तियों को ज्यों-का-त्यों इसी रूप में प्रवन्ध काव्यों में अपनाने का मात्र कारण यही था। अपने फुटकर पदों में भी इसी पद्धति को उन्होंने अपनाया है। नन्ददास ग्रन्थावली में संकलित पद इसी कारण नायिका-भेद आदि के क्रम से दिखाए गए हैं। पदावली में खण्डिता, आगतपतिका, अभिसारिका, प्रौढ़ा, अवीरा, प्रेमगर्विता नायिकाओं के उदाहरण[4] इसी वात की पुष्टि करते हैं कि नन्ददास नायिका-भेद को भी दृष्टि में रखकर अपने पदों की रचना किया करते थे। इन उदाहरणों के अतिरिक्त वचनविदग्धा, क्रियाविदग्धा, उत्कंठिता आदि नायिकाओं के अनेक वर्णन इनकी पदावली में पाए जाते हैं।[5] अपने सम्प्रदाय में उपपति रस की कल्पना कर लेने के कारण परकीयत्व की शृंगारिक उक्तियों के लिए इन्हें छूट भी मिल गई थी।[6]

नायिका की ही भाँति नायक-भेद के रूपों को नन्ददास ने अपने काव्य में अपनाया है। पति और उपपति का वर्णन तो स्पष्ट रूपमंजरी में उपपति रस की कल्पना करके किया गया है। नायक के अन्य भेद अनुकूल, दक्षिण, धृष्ठ, शठ के भी रूप कृष्ण के लीला-सम्वन्धी पदों में वर्तमान हैं। नन्ददास की नायक-नायिका-भेद-सम्वन्धी दृष्टि इतनी स्पष्ट झलकती है कि यहाँ उदाहरण प्रस्तुत करके विषय का विस्तार वढ़ाना व्यर्थ है। उन्होंने तो नायक-नायिका भेद-सम्वन्वी 'रसमंजरी' नामक लक्षण-ग्रन्थ ही अलग लिखा है। रसमंजरी में इन्होंने नायक-नायिका-भेद एवं हाव-भाव हेला का लक्षण प्रस्तुत कियो है। इस ग्रन्थ के शास्त्र एवं नायक-नायिका भेद पर आगे शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रसंग में विचार किया जायगा।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (रूपमंजरी), पृ० ११५।
२. वही (रसमंजरी), पृ० १३२।
३. वही, पृ० १७५।
४. वही, पृ० ३०६-१०।
५. वही, पृ० ३०३-५।
६. वही, पृ० १०६।

रूप-वर्णन :

नन्ददास का रूप-वर्णन भी शास्त्रानुकूल हुआ है। नायिका के रूप-सौंदर्य के लिए भिन्न-भिन्न उपकरणों की आवश्यकता होती है उनका अलग-अलग नाम गिना कर कवि ने वर्णन किया है। रूपमंजरी के संग अलंकारों को गिनाते हुए कवि कहता है—

> द्युति लावन्य रूप मधुराई। कांति रमनता सुन्दरताई।
> मृदुता सुकुमारता जे गाई। नहिं जानियत इत कित तें आई।।[1]

इन अलंकारों के लक्षण बताकर कवि एक-एक को क्रमशः नायिका के अंगों में गिना-गिना कर बताता है। देखिए—

द्युति—

> द्युति तिय तन अस दीन्हि दिखाई। सरद चन्द जस झलमलताई।

लावन्य—

> ललना तन लावन्य लुनाई। मुक्ताफल जस पानिप झांई।

रूप—

> बिनु भूषन भूषित अंग जोई। रूप अनूप कहावै सोई।

माधुर्य—

> निरखत जाहि तृपति नहिं आवै। तन में सो माधुरी कहावै।

कांति—

> ठाढ़ी होति अंगन जब आई। तन की जोति रहति छिति छाई।
> राजति रानि कुंवरि तहं ऐसी। ठाढ़ी कनक अवनि पर जैसी।।

इस प्रकार के वर्णनों से स्पष्ट है कि कवि की रूप-वर्णन शैली साहित्यशास्त्र का सहारा लेकर चलती है।

नायिका का रूप-वर्णन कवि ने उसके बचपन से आरम्भ किया है। राजपुत्री रूपमंजरी बचपन सेही मृग-छौनी की भाँति सुशोभित होती थी। उसके मुख के लिए बादल छाया करते फिरते थे तथा पशु-पक्षी उसके साथ प्रेम के कारण लगे रहते थे। ऐसा जान पड़ता था मानो समुद्र की द्वितीय पुत्री है। बिना तेल-फुलेल के उसकी स्वाभाविक अलकें अत्यन्त सुन्दर लगती थीं। लोगों को यह भ्रम होता था कि यह काम की पुत्री है या अनुजा अथवा पत्नी है। जो कोई उसकी ओर देखता उसे काम-बाण अवश्य लगता था। राजा के भवन को यह बिना दीपक के भी प्रकाशित करती रहती थी।[1] इस वर्णन में कवि ने आध्यात्मिक संकेत भी दिया है।

नायिका का सौन्दर्य सर्वाधिक आकर्षक वयःसन्धि के अवसर पर होता है। नन्ददास ने रूपमंजरी की इस अवस्था का यह बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। शुक्ल पक्ष के द्वितीया के चन्द्र की कला जिस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती चलती है उसी प्रकार नायिका का सौन्दर्य बढ़ रहा है। इस स्थिति के चित्रण के लिए कवि ने अच्छा रूपक बाँधा है। यौवन और शैशव दो नरेशों में नायिका के अंगों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए युद्ध छिड़ गया। यौवन-राजा ने जब उर-पुर अर्थात् वक्षःस्थल पर अधिकार कर लिया तो शैशव-सम्राट् को बाध्य होकर नीचे जाना पड़ा और जघन-वन की शरण लेनी पड़ी। इन दोनों नरेशों की लड़ाई का घातक प्रभाव नायिका के मध्यदेश अर्थात् कटि भाग पर पड़ा और वह क्षीण हो गया। नायिका के शरीर-सरोवर का शैशव-जल यौवन-सूर्य की किरणों के प्रभाव से सूखने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े जल से नेत्र-मीन उतराने लगे।[2] नायिका की इसी स्थिति का वर्णन कवि ने रूपमंजरी के विवाह के पहले भी किया है। यह वर्णन उतना प्रभावशाली नहीं है। कवि कहता है कि नायिका का यह रूप मन को अच्छा तो लगता है पर इसे व्यक्त करना कठिन है। अभी उसके उरोज विकसित नहीं हैं फिर भी मोतियों के हार उनके मधु को लूटने लगे हैं। अंचलों में अब कुचांकुर छिप नहीं पा रहे हैं, नेत्रों में लज्जा आ गई है। काम-कथा सुनने के लिए नायिका कान रोप लेती है, गुड़ियों के ब्याह में उन्हें शैया पर सुलाते समय लज्जा का अनुभव करती है। नायिका का वयःसन्धि का यह रूप संसार के लिए दीपक बन गया है जिस पर नर-नारियों के नेत्र पतंगे की भाँति गिर रहे हैं।[3] यह वर्णन कथानक को केवल गति मात्र देता है।

पूर्ण युवावस्था प्राप्त रूपमंजरी के रूप का वर्णन कवि ने परम्परा के अनुसार

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (रूपमंजरी), पृ० १०५-६।
२. वही, पृ० १०७।
३. वही पृ० १०६।

फिर विल्कुल यही उक्ति रूपमंजरी की सद्य:स्नाता स्थिति का वर्णन करते हुए भी कवि ने कही है।[1]

इन उद्धरणों को देखकर ऐसा जान पड़ता है कि नन्ददास ने भी पिटी-पिटाई लकीर को ही अधिक दोहराया है।

नखशिख-वर्णन :

नायिका का नखशिख-वर्णन नन्ददास ने फुटकल रूप में अनेक स्थलों पर किया है। केवल एक स्थल पर रूपमंजरी का रूप-वर्णन करते हुए शिख से नख तक सभी अंग-उपांगों का वर्णन किया है। वय:सन्धि के वाद रूपमंजरी युवावस्था को प्राप्त होती है। उसकी यौवन-भार-भरिता स्थिति का नखशिख में कवि ने वर्णन किया है।

रूप-वर्णन का आरम्भ कवि ने जायसी की भाँति किया है।[2] आरम्भ के वाद कवि कहता है 'नायिका के गौर वर्ण के सम्मुख पिघला हुआ स्वर्ण भी फीका जान पड़ता है। चंपक पुष्प से उसकी तुलना की ही नहीं जा सकती, क्योंकि कभी-कभी पुष्प के सड़ने पर दुर्गन्ध भी आती है। मंजन कर लेने के पश्चात् दामिनी की द्युति भी उसके सम्मुख फीकी लगती है।[3] इसके वाद कवि शिख से पग तक का क्रमश: वर्णन करता है।

नायिका के सिर पर लगा पुष्प-गुच्छ मदन की वाटिका जान पड़ रहा है। वेणी सर्पिणी की भाँति है जो बुरी दृष्टि से देखने वालों को काट खाती है। विन्दी ऐसी जान पड़ रही है मानो नायिका के मस्तक पर उसकी भाग्य की मणि प्रकट हुई हो। दोनों भौंहें काम की ऐसी धनुष हैं जिस पर मदन को गर्व है। मदन सोच रहा है कि ये धनुष मुझे शिव से युद्ध करते समय क्यों नहीं प्राप्त हुए। अव पुन: इसी धनुष से शंकर को क्षण-मात्र में परास्त किया जा सकता है। नायिका के पगों की चंचलता उसके नेत्रों में आ गई है। उसकी विशालता श्रवणों तक पहुँच रही है। उनकी शोभा को देखकर मृगछौने, कंज एवं खंजन लज्जित हो गए हैं, मीन दुखी होकर जल में डूबे हुए हैं। नायिका की नासिका की नथ मनमथ का जाल जान पड़ती है। उसके कोमल कपोलों की चिकनाहट में अलकों एवं खुभी की परछाई झलक रही है। नायिका के अधरों के मध्य सुन्दर रेखा ऐसी जान पड़ रही है मानो अरुणिम रेशम पर पुई रखी गई हो। हँसते समय दन्तावलियों को देखकर दाड़िम एवं मोती का भ्रम होने लगता है। उसके चिवुक कूप में जिसकी दृष्टि पड़ जाती है उसको सांसारिक आकर्षण समाप्त हो जाता है। उसके कण्ठ में पीक की धारा संसार के

१. नन्ददास ग्रंथावली (रूपमंजरी), पृ० १०७।
२. वही, पृ० १०७।
३. वही, पृ० १०७।

समस्त सौन्दर्य को परास्त कर देने वाली है। उसके मुखमण्डल की तुलना चन्द्रमा से की नहीं जा सकती, क्योंकि उसके नेत्रों के कटाक्ष के समय मुख मण्डल की जो आभा प्रस्फुटित होती है वह चन्द्रमण्डल में कहाँ है। नायिका की भुजाएँ ऐसी जान पड़ती हैं मानो एक कमल दण्ड के दो भाग कर दिए गए हों। दोनों कुचों की उपमा श्रीफल, कुम्भ, शम्भु आदि से क्या दी जाय? वस्तुतः सांसारिक सुख-राशि के दो भागों में बाँट कर रमणी के वक्षःस्थल पर कुचों के रूप में रख दिया गया है। युवती की रोमराजी उसकी वेणी की भांई जान पड़ रही अथवा किंकिणी की नीलमणि की श्यामल छाया हो हो सकती है अथवा कटि की क्षीणता को देखकर विधाता ने उसके आधार के लिए रोमराजी से उसे बाँध दिया हो। नायिका की किंकिणी मदन के भवन का चन्दनवार जान पड़ रही है। उसके पगों के फणिमय नूपुर की शोभा ऐसी जान पड़ती है मानो कंज-पिंजर में कामदेव-रूपी मुनि विराजमान हो। नायिका के चरण इतने कोमल एवं अरुण हैं कि उसके चलते समय पृथ्वी पर अरणिम छाया पड़ती है। ऐसा जान पड़ता है कि मानो चरणों की कोमलता का अनुभव करके पृथ्वी जहाँ-जहाँ वह पग रखती जाती है वहाँ-वहाँ अपनी जिह्वा के पांवड़े बिछाती चलती है। इस प्रकार कवि ने सामान्य नायिका की भाँति रूप मंजरी का शिखनख-वर्णन किया है।

नखशिख-वर्णन में नन्ददास की कुछ उक्तियाँ अनूठी हैं। नायिका की बिंदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—कि नायिका की बिंदी इतनी सुन्दर है कि उससे उसका ऊँचा भाग्य झलकता है।[1] एक स्थल पर नायिका की चिबुक का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है कि चिबुक-कूप में नायक का मन अधरामृत के लोभ में जा गिरा। नायिका की कुटिल अलकें लटक कर प्रेम-पाश्र्व में आबद्ध करके काँटे द्वारा नायक के मन को कुएँ से निकालना चाहती हैं। कुएँ के ऊपर चंचल नेत्र रस्सी खींचने के लिए इस आशा में तैयार हैं कि इस कूप से मधु-रस भी खींच कर प्राप्त कर लिया जाय।[2]

निष्कर्ष रूप में नन्ददास का नखशिख-वर्णन अच्छा तो है परन्तु परम्परित उपमानों का पिटी-पिटाई लकीर पर पुनः प्रयोग भी है। एक ही उक्ति अनेक स्थलों पर प्रयोग में लाई गई है। पगों का वर्णन कवि ने दो स्थलों पर ऐसा ही किया है।[3]

इसी प्रकार कानों की खुभी का वर्णन करते हुए कहीं एक ही उक्ति रूपमंजरी एवं रुक्मिणीमंगल दोनों में कही गई है।[4] इस प्रकार की पुनरुक्तियाँ तभी होती हैं जब कवि की भाव-शबलता का स्थान बुद्धि-प्रबलता ग्रहण कर लेती है। नन्ददास को

१. नन्ददास ग्रंथावली, पृ० १०८।
२. वही (पदावली), पृ० ३०१।
३. मिलाइए, नन्ददास ग्रंथावली (रुक्मिणी मंगल), पृ० १८३ तथा (रूपमंजरी), पृ० १०७।
४. वही, मिलाइए, रूपमंजरी पद ८० तथा रुक्मिणी मंगल पद ११२।

वर्णन करना था इसलिए परम्परित काव्यरूढ़ियों का सहारा इन्होंने लिया। इसी कारण एक ही बात बार-बार कही गई है। इनके रूप-वर्णन में उपमानों की नवीनता अलभ्य है। इनका रूप-वर्णन बिल्कुल रीति कवियों के समान है।

रूप-वर्णन के प्रसंग में जिन वस्त्राभूषणों का वर्णन कवि ने किया है वे ही सूरदास द्वारा वर्णित वस्त्राभूषणों के अनुरूप हैं। सभी अंग-प्रत्यंगों में वे ही आभूषण सुशोभित किए गए हैं जिनका उपयोग सूरदास ने किया था।

पुरुष रूप-वर्णन :

नन्ददास के साहित्य में पुरुष-रूप में अधिकतर कृष्ण का वर्णन आया है। कृष्ण का रूप-वर्णन फुटकल पदों में अधिक हुआ है। रूपमंजरी के स्वप्न-वर्णन के अवसर पर भी कृष्ण का रूप-वर्णन किया गया है। कृष्ण का रूप कृष्ण भक्ति की परम्परा के अनुकूल दिखाया गया है।

रूपमंजरी अपनी सखी से कृष्ण का रूप-वर्णन करती हुई कहती है कि उनका श्याम वर्ण ऐसा है मानो मरकत का रस निचोड़कर बनाया गया हो। उनके सिर पर मोर-मुकुट है, भौंहें बाँकी हैं, नेत्र चुने हुए कमल के समान हैं, नासिका में मोती विराजमान हैं, पीत वस्त्र (पीताम्बर) धारण करते हैं, लाल रंग की कछनी पहनते हैं और इनके हाथ में बाँसुरी विराजमान रहती है।[1] इसके अतिरिक्त पदावली के पदों से इनका गोरज-मंडित मुखमण्डल तथा हाथ में लकुट एवं बाँसुरी धारण किए हुए चरवाहा रूप दिखाया गया है।[2] इन वर्णनों के अतिरिक्त कृष्ण के बालरूप का भी कवि ने फुटकल वर्णन किया है।

कृष्ण के रूप-वर्णन में कवि ने रूप का प्रभाव अच्छा दिखाया है। रूपमंजरी ने कृष्ण को स्वप्न में देखा। उस रूप का वर्णन वह इसलिए नहीं करना चाहती है कि मुंह खुलने पर हृदय में बसी कृष्ण की मूर्ति निकल न जाए।[3] कंजूस की सम्पत्ति की भाँति कृष्ण का स्वरूप नायिका अपने हृदय में छिपाए हुए हैं। कृष्ण के रूप-दर्शन की प्यासी गोपियाँ नेत्रों की पलकों के झपकने के व्यवधान को भी सहन नहीं कर पा रही हैं। वे खीझ कर कहती हैं—

> देखन दै मेरी बैरन पलकैं !
> नंद नंदन मुख तें आलि बीच परत मानो बज्र की सलकैं।
> बन तें आवत बेनु बजावत गो-रज मंडित राजत अलकैं।
> कानन कुंडल चलत अंगुरि दल ललित कपोलन में कछु झलकैं ॥[4]

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (रूपमंजरी), पृ० १०७।
२. वही, पृ० ३०४-५।
३. वही (रूपमंजरी), पृ० ११३।
४. वही (पदावली), पृ० ३०३-४।

है जितना एक रोगी के लिए औषधि पान करना ।[1] सौंदर्य के आकर्षण एवं लज्जा के विकर्षण के मध्य पड़ने पर प्रेमियों की अद्‌भुत स्थिति हो जाती है। एक गोपी जल भरने गई। पनघट पर उसने कृष्ण को देख लिया। एक तरफ कृष्ण की रूप-माधुरी एवं दूसरी तरफ गुरुजनों का भय, दोनों की खींच-तान के मध्य नायिका चित्रवत् सी है। इसी बीच पनघट पर भीड़ हो गई, नायिका के हार टूट गए, वस्त्र फट गये, अश्रु प्रवाहित हो चले जिसके फलस्वरूप प्रिय के प्रति प्रेम गाढ़ा हो गया जिसकी चर्चा चारों तरफ चलने लगी। नायिका गई तो थी जल भरने और प्रेम भर कर ले आई। उसी समय से प्रिय-दर्शन की हड़बड़ी उसे बराबर सताती रहती है।[2]

नायक के सौन्दर्य एवं उसकी चेष्टा का समन्वित प्रभाव कवि ने 'रुक्मिणी मंगल' के अत्यन्त सुन्दर रूप में व्यक्त किया है। रुक्मिणी के आमंत्रण पर कृष्ण उसको लेने के लिए आए। कृष्ण को देखते ही नायिका विह्वल हो उठी। नायिका असमर्थ है। क्या करे? विधाता ने उसे पंख नहीं दिये नहीं तो उड़कर प्रिय की गोद में जा बैठती।[3] इस प्रकार की भाव-विह्वल उक्तियाँ अन्यत्र कम मिलती हैं।

नायिकाओं की ही भाँति नायक के सौंदर्यगत उद्दीपन का भी वर्णन किया गया है। नायक की विह्वल स्थिति की उक्तियाँ दूतियों द्वारा नायिका के मान-मोचन के लिये व्यक्त की गई हैं। स्वतन्त्र रूप में भी इस प्रकार के विचार व्यक्त किए गए हैं।

चेष्टागत—चेष्टागत उद्दीपन नायक-नायिकाओं की गतिविधि से उत्पन्न होता है। शृंगार के अन्तर्गत यह कृष्ण और गोपियों की छेड़-छाड़ के प्रसंग में अधिक दिखाया जाता है। कृष्ण साहित्य में इसके लिए पर्याप्त अवसर प्रशस्त हैं। नन्ददास ने भी इसका अच्छा वर्णन किया है।

चेष्टागत उद्दीपन का स्पष्ट चित्रण कवि ने अपनी रचना 'श्याम सगाई' में किया है। कृष्ण की माँ द्वारा प्रस्ताव प्रस्तुत करने पर भी राधा की माता कृष्ण से राधा का विवाह नहीं करना चाहती थीं, क्योंकि राधा सीधी-सादी और कृष्ण नट-खट एवं लम्पट युवक थे। राधा की माँ का यह आचरण कृष्ण को अच्छा न लगा। उन्हें एक युक्ति सूझी। एक दिन नटवर वेश बनाकर मोरचन्द्रिका धारण करके कृष्ण राधा के गाँव बरसाने के एक बाग में जा बैठे। उधर से राधा भी सखियों के साथ आ गई। दोनों में अरस-परस भी हो गया। इसके बाद कृष्ण वापस चले आए। उनके लौटते ही राधा की अद्‌भुत स्थिति हो गई। वे मूर्च्छित हो गई।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (विरह मंजरी), पृ० १५०।
२. वही, पृ० ३०४।
३. वही (रुक्मिणी मंगल), पृ० १८३।

अन्य स्थलों पर भी नन्ददास की पदावली में दूती के कार्यों का अच्छा वर्णन किया गया है। वह राधा के मान-मोचन के लिए अपनी कूटनीति से काम लेती है। इस प्रसंग में भी उसको अपने कार्य में सफलता प्राप्त हुई है।

दूती के कार्य का वर्णन 'रुक्मिणी मंगल' में किया गया है। ब्राह्मण दूत रुक्मिणी का पत्र लेकर कृष्ण के पास जाता है और उनका उत्तर लाकर पुनः रुक्मिणी को देता है। इस प्रकार दूत के कार्य द्वारा प्रेमियों का मिलन हो पाता है।

सखी का वर्णन 'रूपमंजरी' नामक ग्रंथ में अत्यन्त सुन्दर हुआ है। रूपमंजरी की सखी इन्दुमती सन्देशवाहक का कार्य नहीं करती है बल्कि नायिका के हृदय में उपपति का भाव जाग्रत करती है और उपपति से मिलाने के लिए सारा प्रयत्न करती है। नायिका रूपमंजरी को गोवर्द्धन पर कृष्ण की प्रतिमा का दर्शन कराती है और स्वयं कृष्ण की आराधना इसलिए करती है कि कृष्ण नायिका को उपपति रूप में प्राप्त हों। नायिका की विरहावस्था में वह पूर्ण सहानुभूति के साथ उसे सांत्वना देती है। उसके लिए जो कुछ हो सकता है वह सब कुछ करती है और सदैव साथ लगी रहती है। अन्त में अन्तरंग सखियों की भाँति प्रिय से मिलने का कार्य भी सम्पन्न करती है।

'स्याम सगाई' नामक रचना में भी सखियों का अच्छा वर्णन हुआ है। राधा जब कृष्ण के वियोग में मूर्च्छित हो जाती हैं तो सखियाँ राधा से यह समझाती हैं कि 'तुम कहो कि मुझे सर्प ने डंस लिया है और स्वयं राधा की माँ को समझाती हैं कि कृष्ण सबसे अच्छा गारुड़ी है, उसे बुलाना चाहिए। राधा और उसकी माँ दोनों सखियों की सलाह के अनुसार ही कार्य करती हैं। अन्त में सखियों के प्रयास का फल 'श्याम सगाई' के रूप में सामने आता है और प्रेमियों का मिलन हो जाता है। इस प्रकार उद्दीपन रूप में दूत, दूती, सखी आदि का भी नन्ददास ने अच्छा वर्णन किया है।

प्रकृतिगत उद्दीपन—उद्दीपन के रूप में प्रकृति का चित्रण करने की प्रवृत्ति नन्ददास में पाई जाती है। प्रेम के लिए विशेष उद्दीपनकारी ऋतुएँ वर्षा एवं वसन्त होती हैं। इन दोनों का उसी रूप में कवि ने वर्णन किया है।

वर्षा ऋतु में कृष्ण की वन-क्रीड़ा का मनरम वर्णन कृष्ण भक्तों को अत्यधिक पसन्द आता रहा है। नन्ददास ने भी इसका वर्णन किया है। एक बार बादल घिर कर गरजने लगे। सुन्दरी राधा इस गर्जन से चौंक पड़ी और प्रिय की गोद में उसी प्रकार दौड़ पड़ी जिस प्रकार केसरी की गर्जना से मृगछौनी भागती है। उनका हृदय धक्-धक् करने लगा, प्रिय से इस स्थिति को देखकर वह तुरन्त घर वापस चलने का आग्रह करने लगी।[1]

वर्षा ऋतु को कवि ने मन्मथ नरेश का सहायक कहा है। बादल उसके मन-

---

१. नन्ददास ग्रंथावली (पदावली), पृ० ३२२।

वाले हाथी, पवन महावत एवं बिजली अंकुश है। प्रेमियों के वस्त्रों का लहराना उसकी पताका एवं घन-गर्जन दमामा है। पावस-रूपी मन्मथ-नरेश जब चलता है तो दौड़-दौड़कर बादल उसके आगे बरसते जाते हैं और बयारें जल छिड़कती जाती हैं। हरी-हरी भूमि पर बूँदों की शोभा ऐसी जान पड़ती है मानो रंग-बिरंगे बिछौने बिछाए गए हैं। इस महीप ने विरहियों को तो चोरों की भाँति बाँध रखा है परन्तु संयोगी प्रेमी अत्यन्त दुःखी हैं। यह कृष्ण का आज्ञाकारी एवं व्रजवासियों का मन-भावन है।[1]

वर्षाऋतु में झूला झूलना युवकों को विशेष आनन्ददायक ज्ञात होता है। इसलिए झूले का कवि ने वर्णन किया है। हिंडोले पर राधा-कृष्ण जब एक साथ झूलते हैं तो उनका रमक-झमक कर झूलना परस्पर हँसना एवं चंचल नेत्रों द्वारा कटाक्ष करना एक-एक साथ मानो सुख की वर्षा करने लगते हैं। झूले का वर्णन करते हुए कवि ने राधा-कृष्ण के प्रथम समागम का भी झूले के रूपक द्वारा वर्णन किया है।[2]

वसन्त-वर्णन के प्रसंग में कवि ने फूलों की शाब्दिक भरमार कर दी है। फूलों के वस्त्र, फूलों की माला, फूलों के महल, फूलों के वितान, फूलों की बेनी, फूलों की अँगिया सभी कुछ फूलों द्वारा निर्मित कवि ने दिखाया है।[3] एक शब्द फूल को पकड़ कर कवि ने कई पदों की रचना कर डाली है।

वसंत की मादक बेला वस्तुतः कामोद्दीपक होती है। इसलिए नन्ददास कहते हैं कि ज्यों-ज्यों बसन्त की बहार लहकने लगी त्यों-त्यों कृष्ण का मन भी बहकने लगा। चारों तरफ फूल खिल कर मादक गन्ध फैलाने लगे। कोकिला, मोर, शुक, सारस, खंजन, भ्रमर सभी मदमस्त हो उठे। इनको देखकर प्रेमियों की आँखें ललचने लगीं। बसन्त की ऐसी उद्दीपनकारी स्थिति में गिरिधर प्रिय के आगमन की सूचना मात्र से नायिका श्रमकणों से आभूषित हो उठी।[4] अचानक काम जाग पड़ा। इस प्रकार प्रकृति के उद्दीपनकारी स्वरूप के सरस वर्णन नन्ददास के साहित्य में पाए जाते हैं।

षड्ऋतु-वर्णन :

उद्दीपन के रूप में षड्ऋतु एवं बारहमासा वर्णन करने की साहित्यिक परम्परा का भी पालन नन्ददास ने किया है। यह दोनों प्रकार का वर्णन कवि ने वियोग-वर्णन के अन्तर्गत किया है। षड्ऋतु का वर्णन रूपमंजरी के वियोग-वर्णन के अन्तर्गत किया गया है और बारहमासा विरह मंजरी में व्रजबाला के वियोग-वर्णन के अन्तर्गत दोनों वर्णन प्रयासपूर्वक कथानक में बैठाए गए हैं।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (पदावली), पृ० ३२३।
२. वही, पृ० ३२६।
३. वही, पृ० ३२८।
४. वही, पृ० ३२८।

'रूपमंजरी' में नायिका के वियोग का वर्णन करते समय अचानक कवि कह उठता है—

ऐसेहि मैं पावस ऋतु आई। सहचरि निरखि महाभय पाई ॥[1]

और आगे वर्षाऋतु का वर्णन आरम्भ हो जाता है। कवि कहता है कि 'प्रथम पावस की दूर्वा मानो कामदेव की सेना की गर्द है। बादल केशरी की तरह गर्जना करने लगे हैं। उनकी घुमड़न ऐसी जान पड़ती है मानो मदन हाथी लड़ा रहा हो और पवन महावत उन्हें दौड़ा रहा हो। वर्षा की बग-पंक्ति प्रिय के वक्षःस्थल की पंकज माला जान पड़ रही है। विद्युत-कौंध प्रिय के पीताम्बर की तरह दमक रही है। दादुर, झींगुर शोर कर रहे हैं, जुगनू चिनगारी की तरह चमक रहा है। पापी पपीहा वर्षाऋतु में भी प्यासा हुआ पी-पी रट रहा है। इसको कोई शान्त करने वाला नहीं है। चारों तरफ भूमि तृणाच्छादित है। ऐसी परिस्थिति में नायिका अत्यधिक कष्ट पाती रहती है। उसकी सांत्वना के लिए सखी वीणा बजाती है परन्तु वह वियोगाग्नि में कलमल-कलमल करती रहती है। उसके हृदय से ललित त्रिभंगी मूर्ति निकलती ही नहीं है, क्योंकि वह त्रिभंगी है।[2]

शरद् ऋतु आने पर नायिका की सखी इसलिए कुछ प्रसन्न होती है कि अब प्रिय के पास समाचार भेजा जा सकता है। शरद् ऋतु में नायिका के अंजन-रहित नेत्रों को देखकर खंजन प्रकट होने लगे, इसके मुखमण्डल को उदास देखकर आकाश में चन्द्रमा प्रसन्न होने लगा तथा कमल एवं कुमुदिनी खिलने लगी। शरद् की द्वितीया का चन्द्रमा काम-कटारी की तरह एवं पूर्ण चन्द्रमा उसकी ढाल की तरह जान पड़ने लगा है। यह समय न जाने कैसा है जिसमें शरद् चन्द्रिका भी अग्निवर्षा करती है। न जाने राजा-राहु ने इस घातक चन्द्रमा को क्यों छोड़ दिया है। अब तो किसी भी तरह प्राण बचाना कठिन है।[3]

इसके बाद हिमऋतु आती है। यह तरनि एवं तरुणी दोनों को कष्टदायी है। शीतलता भी वियोगिनी को जला रही है। नायिका प्रयास करके नींद लाना चाहती है ताकि स्वप्न में ही उसे प्रिय के दर्शन सम्भवतः मिल जाएँ परन्तु उसका प्रयास विफल जाता है। उसका यौवन-शिशु उसके प्रीतम के अधर का दूध चाहता है जो अनुपलब्ध है। यौवन-शिशु को बिलखते देखकर नायिका उसे अपने नेत्रों का नीर ही पिलाती है। अन्त में बाध्य होकर वह देवता-मदन की पूजा करती है और प्रार्थना करती है कि हे देव आपके जिस बाण से शिव भी घायल हो गए, उसे अबलाओं पर न चलाइए।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (रूपमंजरी), पृ० ११६।

२. वही, पृ० ११६।

३. वही, पृ० ११८।

हिम के बाद शीत ऋतु का आगमन हुआ यह भी नायिका के लिए उसी प्रकार भयानक रहा जैसे गाय के लिए बाघ।[1]

शीत ऋतु के बाद होरी एवं वसन्त-ऋतु का वर्णन किया गया है। होरी में कनक-पिचकारी नायिका को मदन की फुलझरी-सी जान पड़ रही है। लोगों को होली गाते समय नायिका उस कृष्ण का परिचय अपनी सखी से पूछती है जिसकी लीलाएँ ब्रजवासी होली में गाते थे। परिचय प्राप्त करते ही नायिका वियोग की पीड़ा में मूर्च्छित हो जाती है।[2] इस अवसर पर नायक की विरहावस्था का कवि ने अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण किया है। इस वर्णन से प्रकृति-वर्णन का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु का वर्णन कवि ने अत्यन्त संक्षेप में किया है। विरह की अन्य दशाओं का वर्णन इन ऋतुओं के वर्णनों के प्रसंग में अधिक किया गया है। प्रकृति का जो वर्णन किया भी गया है वह सामान्य कोटि का ही है।

सम्पूर्ण षड्ऋतु वर्णन में प्रकृति का केवल उद्दीपनकारी स्वरूप सामने लाया गया है जो सामान्य कोटि का है। ऋतु-वर्णन के अन्तर्गत प्रकृति-वर्णन छोड़कर कहीं-कहीं कवि नायिका का स्वतन्त्र रूप में विरह-वर्णन करने लगा है। जिससे ऋतु-वर्णन से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। केवल वर्षा ऋतु का कवि ने सविस्तार वर्णन किया है। इस वर्णन में वियोग के अतिरिक्त उपदेश की भी बातें रामचरितमानस की वर्षा-वर्णन की उक्तियों जैसी कही गई हैं।

निष्कर्ष रूप में षड्ऋतु-वर्णन सामान्य कोटि का ही है।

बारहमासा वर्णन :

बारहमासे का वर्णन कवि ने ब्रजबाला के स्वप्न में ही कर डाला है।[3] सारा बारहमासा चन्द्रमा को दूत बनाकर सन्देश-रूप में कहा गया है। बारहमासा चैत्र से आरम्भ किया गया है। इसका कारण यह है कि भारतीय वर्ष चैत्र मास से आरम्भ होता है।

चैत्र मास में कोकिल की कुहुक सुनकर नायिका का दिल दहल उठा। उसे भौंरे मदन-जाल के गोलक की भाँति जान पड़ते हैं। पुष्पों का धनुष एवं अंकुरों का बाण बनाकर काम नायिका पर सन्धान कर रहा है। त्रिगुणात्मक पवन पुष्पों के पराग का बूका बनाकर होली खेल रहा है जो और अधिक कष्टदायक है।

वैशाख में बाला प्रिय से प्रार्थना कर रही है कि हे प्रिय आप इस माह की सुखदायिनी वस्तुओं का हमारे साथ उपभोग करें। नवल-मालती की माला गूँथ कर

---

१. नन्ददास ग्रंथावली, पृ० ११८।
२. वही, पृ० ११८।
३. वही, पृ० १४५-५१।

मुझे पहनाइए और लवंग लताओं की छाया में यमुना के रम्य तट पर हमारे साथ गलबाँही डालें। किसलय की शैया एवं सुमनों की उसीसा देकर हम लोगों को शयन करना चाहिए। द्रुमों से लताएँ लिपट कर हमारा उपहास कर रही हैं। आप बचाइए। इस समय मेरी स्थिति लुहार की संड़सी के समान हुई है।

ज्येष्ठ मास नव-वधुओं को अधिक सता रहा है। जितना सूर्य तपता है उतना ही विरहाग्नि भी तप रही है। इसलिए विरहिणी की ज्वाला दुगुनी होती जा रही है। नायिका चन्द्रमा से अपना रथ जल्दी-जल्दी हाँककर रात्रि को शीघ्र समाप्त करने की प्रार्थना कर रही है।

आषाढ़ में काम अपनी सुसज्जित सेना के साथ विरहिणी पर टूट पड़ा है। श्रावण की घनमाला मदन की मदमस्त हाथी की तरह दिखाई दे रही है। यहाँ हाथी का पूरा रूपक कवि ने बाँधा है। भाद्रपद की अँधेरी एवं सुनसान रात्रि की भयावह स्थिति में नायिका प्रिय से पुनः गिरि धारण कर वर्षा से बचाने की प्रार्थना कर रही है। इस प्रकार इन महीनों के वर्णन वर्षा के परम्परित वर्णनों के बिल्कुल अनुरूप हैं।

आश्विन मास में खंजन निर्मल जल एवं पंकज का वर्णन किया गया है। कातिक में शरद् चाँदनी, रम्य यमुना के तट एवं कृष्ण के वंशीवादन की स्मृति नायिका को सताती हुई दिखाई गई है। मार्गशीर्ष में प्रकृति की वेदना का वर्णन किया गया है। पौष की लम्बी रात्रि नायिका को सताती हुई बताई गई है। माघ में भीषण सरदी का सामान्य ढंग से वर्णन किया गया है। फाल्गुन के वर्णन में भी प्रकृति का वर्णन नहीं किया गया है। केवल नायिका की बावरी स्थिति का चित्रण किया गया है।

इस प्रकार बारहमासे का वर्णन जान पड़ता है कवि ने स्थान-पूर्ति करने के लिए किया है। इस वर्णन में कोई नवीनता नहीं है। केवल परम्परा की पुनरावृत्ति हुई है परन्तु विरह-सम्बन्धी उक्तियाँ अच्छी मिलती हैं।

इन वर्णनों के अतिरिक्त नन्ददास ने प्रकृति का चित्रण भी अपनी पदावली में किया है। वर्षा एवं वसन्त के अच्छे वर्णन इन पदों में मिलते हैं। यह बात अवश्य है कि इन वर्णनों में भी नायक-नायिका के सुसज्जित स्वरूप का साम्य प्रकृति के अंगों से दिखाया गया है इसलिए इन्हें प्रकृति का शुद्ध आलम्बन-वर्णन नहीं कहा जा सकता है।

अनुभावी-संचारी भाव वर्णन :

हाव-भाव हेला आदि का चित्रण काव्य में सौन्दर्य-वृद्धि के लिए किया जाता है। नन्ददास ने भी इनका उपयोग किया है। अनेक स्थलों पर कवि ने इनका सौन्दर्यानुभूति के लिए तो वर्णन किया ही है, रूपमंजरी में इनके लक्षणों को भी बताया है। ये लक्षण इनके शास्त्रीय ग्रंथ रूपमंजरी के अनुरूप दिए गए हैं। इन लक्षणों का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

भाव—

प्रथमहि प्रिय सों प्रेम जु आही। कवि जन भाव कहत हैं ताही।[1]

हाव—

नैन बैन जब प्रगटै भाव। ताकहुं सुकवि कहत हैं हाव।[2]

हेला—

अति शृंगार मगन मन रहे। ता कहुँ कवि हेला छवि कहे।।[3]

क्रमशः इन लक्षणों के बाद सामान्य रूप में कवि उनके उदाहरण भी प्रस्तुत करता गया है। हेला के बाद रति एवं सात्त्विक भावों के लक्षण नहीं केवल उदाहरण दिए गए हैं। कवि ने इन लक्षणों एवं उदाहरणों को रूपमंजरी के कथानक में बैठाने का प्रयास किया है जिसमें उसको पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई है। कवि के अनुसार आलम्बन में भाव के बाद हाव, हाव के बाद हेला, एवं हेला के बाद रति की व्युत्पत्ति होती है। हेला वस्तुतः हाव का ही एक प्रकार है। इसलिए हेला के साथ अन्य हावों का भी वर्णन कवि को करना चाहिए था।

सात्त्विक भावों की अलग-अलग रसमयी व्यंजना नन्ददास के काव्य में कम मिलती है। जहाँ इन भावों को व्यक्त करने की आवश्यकता कवि ने समझी है वहाँ अनेक भावों को एक साथ ही समेट कर रख दिया है। रूपमंजरी में इस स्थिति का एक दृश्य देखिए—

डभक दै नैन नीर भरि आवहि। पुनि सुखि जाय महा छवि पावहि।
पुलक अंग स्वरभंग जनावै। बीच बीच मुरझाई आवै।
विवरन तन अस देइ दिखाई। रूप बेलि जस घाम मैं आई।
तनक बात जौ पिय पै पावै। सो बेरियां पुनि तृपति न आवै।।[4]

इन पंक्तियों में अश्रु, रोमांच, स्वरभंग, वैवर्ण्य आदि अनेक भावों को समेट कर कवि ने एक साथ ही गिना दिया है। इसी प्रकार रुक्मिणी मंगल में एक-एक भाव को कवि एक पंक्ति में गिनाने लगता है—

दुरी रहति क्यों प्रिय-रति प्रकटहि देत दिखाई।
पुलक अंग सुर भंग स्वेद कबहूँ जड़ताई।
उर थर थर अति कंपत जपत जब कुंवर कन्हाई।
कबहुं तकी लगि जाइ कबहुं आवत मुरझाई।

---

१. नन्ददास ग्रंथावली (रूपमंजरी), पृ० ११४।
२. वही, पृ० ११५।
३. वही, पृ० ११५
४. वही, पृ० ११५।

ह्वै गयो कछु विवरन-तन. छाजत यों छवि ताई।
रूप अनूपम वेलि, तनक मनु घाम मैं आई ॥[1]

इन पंक्तियों में पुलक, कम्प, स्वरभंग, स्वेद, जड़ता, वैवर्ण्य आदि अनेक भाव गिनाए गए हैं। इसी प्रकार और भी भावों को कवि ने आगे गिनाया है। इस उद्धरण से स्पष्ट है कि कवि भावों की व्यंजना की अपेक्षा रसशास्त्रीय पांडित्य के प्रदर्शन में अधिक संलग्न है। एक ही वात अनेक स्थलों पर एक ही प्रकार से कहना इस वात का पुष्ट प्रमाण है।

अनेक भावों के संक्षिप्त वर्णनों को एक साथ मिला देने पर कहीं-कहीं इनके काव्य में भाव-शवलता अधिक वढ़ गई है। व्रीड़ा, हर्ष, रोमांच, उग्रता आदि संचारी भावों का एक समन्वित एवं स्वाभाविक वर्णन देखिए—

प्रथम समागम लज्यति तिया। अंचल पवन सिरावति दिया।
दीप न वुझहि विहंसि वर वाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला ॥

+ + +

प्रेम पुलक अन्तर तिहि काला। सो अन्तर सहि सकति न वाला।
चित विवधानं सहति नहिं सोई। रूप मंजरी अस रस भोई ॥[2]

इसी प्रकार आलस्य एवं श्रम का वर्णन भी अच्छा हुआ है—

जात न उठि लपटात सुठि, कठिन प्रेम की वात।
सूर उदोत करोत सम, चौरि किए विवि गात ॥

+ + +

सेज तैं उठति सुरत रस माती। सखि तन मधुर मधुर मुसकाती।
सगवगि अलकैं श्रमकन झलकैं। सोहति पीक पगी द्रग पलकैं ॥[3]

एक स्थल पर रुक्मिणी की उग्रता, उत्सुकता, चपलता का समन्वित वर्णन एक ही पंक्ति में कवि ने अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है—

अरवाई मुरझाय कछू न वसाय तिया पैं।
पंख नाहिं तन वनैं न तरु उड़ि जाय पिया पैं ॥[4]

नायिका की विह्वलता का इससे अच्छा वर्णन पाना अन्यत्र दुर्लभ ही है।

नन्ददास की पदावली में कुछ संचारी भावों की अतीव सुन्दर योजना वन पड़ी है। मुक्तक पदों की सधी भूमि पर ये चित्र भली भाँति वैठ पाए हैं। अवहित्था

---

१. नन्ददास ग्रंथावली (रुक्मिणी मंगल), पृ० १७६।
२. नन्ददास ग्रंथावली, पृ० १२४।
३. वही, पृ० १२५।
४. नन्ददास ग्रंथावली (रुक्मिणी मंगल), पृ० १८३।

संचारी भाव की व्यंजना नायिका के मुख से ही सुनिए—

जल कौं गई सुधि बिसराई, नेह भर लाई,
परी है चटपटी दरस की।
इत मोहन गांस, उत गुरु-जन त्रास,
चित्र सो लिखो ठाढ़ो नाउं धरत सखि त्ररस की।
टूटे हार फाटे चीर, नैननि बहत नीर,
पनघट भई भरि सुधि न कलस की।
नन्ददास प्रभु सौं एसी प्रीति गाढ़ी बढ़ी,
फैल परी चरचा चायन सरस की ॥[1]

नायिका अपनी पनघट की घटना को छिपाना चाहती है। परन्तु उसकी अस्त-व्यस्त स्थिति वस्तुस्थिति को प्रकट कर दे रही है। इसलिए बहाने बनाकर अपनी विकृत स्थिति का कारण कुछ और ही बता रही है।

अनुभावों की सुन्दर योजना उस समय होती है जब नायक-नायिका नेत्रों की भाषा में बात करने लगते हैं। नन्ददास के साहित्य में ऐसे वर्णन 'पदावली' में पाए जाते हैं। यहाँ नायक-नायिका नेत्रों की भाषा में बात करके आत्मविस्मरण करते दिखाए गए हैं। एक नायिका का वर्णन कवि करता है। 'नन्ददास पनिहारी बीच मिले गिरधारी, नैननि की सैननि में भूलि गई डगरा'[2] यहाँ तो नायिका के नेत्र मिल गए थे। एक नायिका के नेत्र तो करोड़ों श्रम करने पर भी असफल रहे—

कोटि जतन करि हारी मोहन निहारिबे कौं,
अचरा की ओट दै दै कोट सम कीने।[3]

इस प्रकार के वर्णन शृंगार के सरस चित्र उपस्थित करने में पूर्ण सक्षम होते हैं।

अनुभावों के अतिरिक्त हावों की भी सुन्दर अभिव्यंजना नन्ददास के काव्य में हुई है। हावों का वर्णन केवल संयोगावस्था में ही दिखाया जा सकता है इसलिए इनका चित्रण अधिकतर क्रीड़ाओं के प्रसंग में होता है। नन्ददास के काव्य के कुछ हावों के सुन्दर उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। किलकिंचित हाव का एक मधुर चित्र दर्शनीय है—

अरी प्यारी के लाल लागे देन महाउर पाय।
जब भरि सींकहिं चहत स्याम धन दीजै चित्र बिचित्र बनाय।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (रुक्मिणी मंगल), पृ० ३०४
२. वही (पदावली), पृ० ३०५।
३. वही, पृ० ३०४।

रहत लुभाय चरन लखि इकटक बिवस होत रंग भर्यो न जाय।
नन्ददास खिजि कहत लाड़ली रहौ, रही तब पगनि दुराय ॥[1]

नायक नायिका के पगों में अपने हाथ से महावर लगाना चाहता है। जब वह नायिका के पगों को स्पर्श करता है तो उसमें अनेक सात्त्विक भाव एक साथ ही इस प्रकार जग पड़ते हैं कि वह विवश हो जाता है। उधर नायिका की भी यही स्थिति होती है। नायक के स्पर्श एवं उसकी भाव विभोरता देखकर नायिका में एक ओर सात्त्विक भाव जगते हैं दूसरी ओर व्रीड़ा के कारण वह खीझ उठती है। इसी कारण अपने पगों को समेट लेती है। नायिका की यह स्थिति नायक को उत्तेजित करती है। इसी प्रकार का बोधक हाव का भी वर्णन एक वचन-विदग्धा नायिका द्वारा कवि ने अच्छा कराया है।[2]

हावों-भावों के चित्रण में नन्ददास को किसी भी रीतिबद्ध कवि से कम नहीं कहा जा सकता है। इनके साहित्य में लक्षणहीन और लक्षण युक्त दोनों प्रकार से प्रायः सभी हावों भावों का वर्णन पाया जाता है। इसका मात्र कारण यही है कि जान बूझकर कवि ने उनका वर्णन किया है।

नन्ददास के लक्षण-ग्रन्थ :

रसमंजरी—रसमंजरी एक नायक-नायिका भेद का लक्षण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की सूचना कवि ने भानुदत्त की रसमंजरी के आधार पर की।[3] रीतिकाल के अनेक कवियों की भाँति नन्ददास ने भी भानुदत्त की रसमंजरी को ही अपनी रचना का आधार बनाया। दोनों रसमंजरियों को मिलाने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। नन्ददास ने भानुदत्त की रचना से लक्षण ही नहीं उदाहरण भी ज्यों के त्यों ले लिए हैं। जान पड़ता है कि कवि का उद्देश्य भानुदत्त की रसमंजरी का अनुवाद करना था। इस विषय पर हिन्दी के अन्य विद्वानों की भी यही सम्मति है।[4] नन्ददास ने भानुदत्त की रचना का संक्षिप्त संस्करण मात्र हिन्दी में प्रस्तुत किया है। भानुदत्त ने लक्षणों को गद्य में लिखकर उदाहरण सूत्रों में प्रस्तुत किया है और विषय की विस्तृत विवेचना की है परन्तु नन्ददास ने लक्षण एवं उदाहरण दोनों एक साथ समेटकर व्यक्त किया है और विषय का पूरा विवेचन नहीं किया है।

नन्ददास ने स्वकीया, परकीया तथा सामान्या नायिकाओं के पहले तीन भेद

---

१. नन्ददास ग्रंथावली (पदावली), पृ० ३००।
२. वही, पृ० ३०५, पद ८६।
३. रसमंजरी अनुसार कै नन्द सुमति अनुसार।
 बरनत बनिता-भेद जहँ प्रेम सार विस्तार ॥ —नन्ददास ग्रंथावली, पृ० १:
४. श्री उमाशंकर शुक्ल, नन्ददास, भूमिका, पृ० ६३।

किये है। इसके बाद इन तीनों के तीन-तीन भेद मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा किए हैं। मुग्धा के नवोढ़ा, विश्रब्ध नवोढ़ा और ज्ञात-यौवना अज्ञात-यौवना भेद किए हैं तथा मध्या और प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा तीन भेद किए हैं। इनके बाद गुप्त-निगोपान, परकीया वाग्विदग्धा तथा लक्षिता नायिकाओं का वर्णन किया है। यहीं आकर कवि ने पुनः नौ प्रकार की नायिकाओं[1] का नाम गिनाया है। ये नाम हैं— प्रोषितपतिका, खण्डिता, कलहांतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीनवल्लभा तथा प्रीतमगवनी। इन नौ प्रकार की नायिकाओं के पुनः मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा एवं परकीया स्वरूपों का अलग-अलग वर्णन किया गया है।

नायिकाओं का वर्णन करने में कवि ने भानुदत्त के सूक्ष्म विवेचन एवं भेदोपभेद तक पहुँचने की कोशिश नहीं की है। केवल मोटे तौर पर किए गए भेदों को लेकर काम चलाया है।

नायक-भेद वर्णन करने में नन्ददास ने चार प्रकार के धृष्ठ, शठ, दक्षिण, तथा अनुकूल नायकों का वर्णन किया है। भानुदत्त द्वारा विवेचित उपपति वैशिक आदि तथा उनके भेदोपभेदों को कवि ने छोड़ दिया है। इनके बाद हाव, भाव, हेला तथा रति का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त भानुदत्त की रसमंजरी में वर्णित शास्त्रीय विषयों को कवि ने छोड़ दिया है। इस प्रकार नन्ददास ने भानुदत्त की रसमंजरी का पूर्ण अनुवाद नहीं बल्कि संक्षिप्त रूप मात्र प्रस्तुत किया है।

इस ग्रन्थ की रचना नन्ददास ने अपने एक मित्र के आग्रह पर की थी। इनके मित्र का कथन था कि जब तक कोई व्यक्ति रति के प्रत्येक तत्त्व को नहीं जानता तब तक वह प्रेमतत्त्व को पहचानने में असमर्थ रहता है।[2] इस प्रकार इस ग्रन्थ की रचना स्वान्तःसुखाय नहीं बल्कि किसी दूसरे के आग्रह पर की गयी है, जैसा कि रीति कवि करते आए हैं। ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने कृष्ण के रसिक स्वरूप की वन्दना की है। इस प्रकार अपनी भक्ति का साधन भी इसी शृंगार भाव को बताया है। इसी भाव को लौकिकता की भूमि पर लाकर रीति कवि अपनी शृंगारिक रचनाएँ किया करते थे।[3]

अनेकार्थ ध्वनि मंजरी :

यह एक कोश ग्रंथ है जिसमें एक शब्द के अनेक पर्याय दिये हुए हैं। इस ग्रन्थ की रचना संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ लोगों की सुविधा के लिए कवि ने की थी।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० १२६।

२. वही, पृ० १२६।

३. नमो नमो आनन्द घन, सुन्दर नन्दकुमार।
रस-मय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार ॥ नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० १२६।

उचरि सकत नहिं संस्कृत, अर्थ ज्ञान असमर्थ ।
तिन हित नन्द सुमति जथा, भाषा कियो सुअर्थ ॥[1]

इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृत भाषा के ग्रन्थों को कवि हिन्दी में रूपान्तरित करना चाहता था ।

इस ग्रन्थ में परिशिष्टों को मिलाकर कुल लगभग दो सौ सात शब्दों के अनेकार्थ दिए हुए हैं । ग्रंथ की रचना दोहा छंद में की गई है । कहीं-कहीं एक ही दोहे में दो शब्दों के अर्थ दिए हुए हैं । उदाहरण के लिए—

कुरंग, तुरंग—

गरुड़ तुरंग, तुरंग मन, बहुरि तुरंग तुरंग ।
हरिन कुरंग, कुरंग सो, रंग्यो न हरि-हर रंग ॥[2]

पयोधर, भूधर—

मेघ, अर्क, कुच शैल, द्रुम एजु पयोधर आहि ।
भूधर, गिरि, भूधर नृपति, भूधर आदि वराह ॥

इस ग्रन्थ में दिए गए शब्दों के अर्थों की एक विशेषता यह भी है कि प्रत्येक दोहे के अन्तिम शब्द को ईश्वर के नाम से सम्बन्धित करने की चेष्टा की गई है और वह उस शब्द का अर्थ भी व्यक्त करता है । ऊपर उद्धृत दोहों से यह स्पष्ट है । इसके अतिरिक्त और भी नमूने देखे जा सकते हैं—

गो—

गो इंद्री, दिवि, वाक, जल, स्वर्ग सुदृष्टि अनंद ।
गो धर, गो तरु, गो किरन, गो पालक गोविंद ॥

मधु—

मधु वसन्त, तरु, चैत्र, नभ, तिय मदिरा मकरंद ।
मधु जल, मधु पय, मधु सुधा, मधु सूदन गोविंद ॥[3]

इस प्रकार ईश्वर के नाम को कवि ने कलात्मक ढंग से बैठाया है । यह कार्य बहुत बड़ा शब्द-भंडार रखने वाला व्यक्ति ही कर सकता है ।

इस ग्रन्थ में दिए गए शब्दार्थों की एक विशेषता यह भी है कि कवि ने उस शब्द द्वारा बने शब्दों को भी उनके अर्थों में गिना दिया है । जैसे गो के साथ गोधर, गो तरु, गोपालक, गोविंद तथा मधु के साथ मधु पय, मधु जल आदि ।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० ४१ ।
२. वही, पृ० ४५ ।
३. वही, पृ० ४१ ।

जगमगाते हुए मंगलदीप के प्रकाश में मुक्ताओं के वंदनवार ऐसे जान पड़ते हैं मानो महल हँस रहा हो और वंदनवार रूपी उसकी दंतावलियाँ चमक रही हों। महल को कवि ने सिद्धि-निधि से संपन्न वताया है। मणिमय सीढ़ियों को पारकर जब दूती राधा के पास पहुँची तो उसकी दृष्टि राधा की दुग्ध-फेन जैसी शैया पर पड़ती है जिस पर राधा उसीसा के सहारे हाथ में गेंदे का फूल लिए हुए मानवती की मुद्रा में विराजमान थी। यहाँ शैया का वर्णन भी कवि ने उसी रूप में किया है जिस रूप में रीति कवि करते रहे हैं।

इसके आगे सामान्य नायिका के रूप में देवी के रूप में नहीं राधा का शिख से नख तक का रूप वर्णन कवि ने दूती द्वारा कराया है। यह वर्णन परंपरित वर्णनों के विल्कुल अनुरूप है। अंगों के प्रायः सभी उपमान वे ही हैं, जो प्रचलित रहे हैं। कुछ उक्तियाँ अवश्य दर्शनीय हैं। जैसे नायिका के मस्तक पर लटकती हुई अलक को कवि ने कहा है कि मानो चंद्रमा में दरार पड़ गई हो जो इस रेखा के रूप में दिखाई दे रही हो। मानवती के क्रोध में लाल नेत्रों को कवि ने कहा है कि मानो जावक भींजे मीन हों।[1] यह नखशिख वर्णन कवि की कलात्मकता का द्योतक है।

राधा के मान-मनावन में दूती अपनी कूटनीति का अच्छा परिचय देती है। रीतियुगीन दूतियों की वाक्पटुता इसके सम्मुख फीकी है। राधा की कटूक्तियों का ध्यान न करके वह उनकी तारीफ करती जाती है और अंत में अनुकूल वना लेती है।

राधा कृष्ण से मिलने के लिए जब दूती के साथ प्रस्थान करती है तो कवि को प्रकृति-चित्रण का अच्छा अवसर मिल जाता है। इस प्रकृति वर्णन में कवि ने प्रकृति को राधा के अंग-प्रत्यंगों के सम्मुख फीका दिखाया है। इस वर्णन में वन-वृक्षों को कवि ने गिनाया है जो कुंज में जाते समय राधा के मार्ग में पड़ते हैं। यह वर्णन सामान्य कोटि का ही है।

इस प्रकार इस ग्रंथ में शब्दकोश, रूप वर्णन, महल वर्णन, प्रकृति-वर्णन तथा मान वर्णन को समन्वित करके रखा गया है। इससे कवि की कलात्मक शक्ति का परिचय मिलता है।

राधा का मान-वर्णन कवि ने अपने संप्रदाय के सिद्धान्त के दृष्टिकोण से किया है। राधा का मान सबका कल्याण करता है।[2] वस्तुतः जहाँ प्रेम होगा वहाँ मान

---

१. केश—अलक, सिरोरुह, चिकुर कच, कुंचित कुटिल सुढार।
कुंतल कवरि ललाट जनु, चंदहि गई दरार॥
नेत्र—लोचन, अंबक, चक्षु, दृग ईछन रूप अधीन।
कछु रिस राते नैन जनु जावक भींजे मीन॥
—नंददास ग्रंथावली, पृ० ४७१।

२. मान राधिका कुंवरि को सबको करत कल्यान। —नंददास ग्रंथा०, पृ० ६६।

होगा और जहाँ मान होगा वहाँ प्रेम होगा। ये वैसे ही एक-दूसरे का महत्त्व बढ़ाते हैं जैसे मिष्टान्न का नमकीन।[1] इस प्रकार इस ग्रंथ में कला और अध्यात्म का मणि-कांचन योग दिखाया गया है। इस ग्रंथ की कलात्मकता पर कवि की जितनी भी सराहना की जाए वह कम होगी।

कवि की दृष्टिकोण की परिमिति :

नंददास के साहित्य की अधिकांश वस्तु उधार ली हुई है। इनकी रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी तथा भाषा दशम स्कंध का आधार ग्रन्थ स्पष्ट रूप से श्रीमद्भागवत है। कवि ने इन ग्रन्थों में कुछ स्थलों पर अनुवाद मात्र कर दिया है और कहीं-कहीं अपनी ओर से जोड़ा-घटाया है। सिद्धान्त पंचाध्यायी में भागवत की सामग्री की पुष्टिमार्गीय व्याख्या मात्र है। कवि की कोई नवीन कल्पना नहीं है। गोवर्द्धन लीला, स्याम सगाई, रुक्मिणी मंगल, सुदामा चरित, भ्रमरगीत आदि की भी सामग्री श्रीमद्भागवत की ही है। स्याम सगाई तथा भ्रमरगीत भागवत की अपेक्षा नंददास सूर से अधिक प्रभावित हैं। वस्तुतः सूरदास से ये सर्वाधिक प्रभावित हैं। उनकी शास्त्रीय रचनाएँ रसमंजरी, अनेकार्थ ध्वनिमंजरी तथा नाममाला या मानमंजरी क्रमशः भानुदत्त की रसमंजरी एवं संस्कृत अमरकोश के अनुवाद हैं। इन तथ्यों की घोषणा भी कवि ने ग्रन्थारम्भ में स्पष्ट कर दी है। इनकी रूपमंजरी सूफी प्रेमाख्यानकों की परम्परा का अनुसरण करती है और विरह मंजरी मेघदूत की। पदावली में कृष्ण की सर्वप्रचलित लीलाओं का फुटकल गान है। इस प्रकार इनके साहित्य की समस्त वस्तु उपजीवी है। यह बात अवश्य है कि इनके उपयोग में कवि की मौलिकता है।

विषयवस्तु की सीमित भूमि के कारण नंददास के साहित्य में पुनरावृत्ति अधिक है। रासपंचाध्यायी तथा भाषा दशम स्कन्ध की बहुत सी उक्तियाँ ही नहीं पंक्तियाँ भी ज्यों-की-त्यों एक समान मिलती हैं।[2] इसी प्रकार रसमंजरी और रूपमंजरी की बहुत सी पंक्तियाँ अक्षरशः मिलती हैं। उदाहरण के लिए देखिए—

सखि जब सर स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माहीं।

\+ \+ \+

पोंछे डारति रोम की धारा। मानति बाल सिवाल की डारा।
चंचल नैन चलत जब कौनै। सरद कमल दल ही तैं लौनै॥[3]

मिलाइए—

सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि मांही।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० १००।
२. द्रष्टव्य, नंददास : एक अध्ययन, डॉ० रामरतन भटनागर, पृ० १११-१२।
३. नन्ददास ग्रन्थावली (रूपमंजरी), पृ० १०७।

पोंछे डारती रोम की धारा। मानती वाल सिवाल की डारा।
दीरघ नैन चलति जव कोने। सरद कमल दल हूं तें लोने॥[1]

श्रौर भी देखिए—

श्रान की ढिग उसास नहिं लेई। मूंदे मुँह तिहि उतरू देई।
तपत उसासनि जौ कोउ लहै। वाला विरहनि का तव कहै।
जो कोउ कमल फूल पकरावै। हाथ न छुवै निकट धरवावै।
श्रपने कर जु विरह जुर ताते। मति झुरि जाहि डरति तिय यातें॥[2]

मिलाइए परकीया प्रोषित पतिका के लक्षण से —

श्रान की ढिग उसास नहिं लेई। मूँदे मुख तिहि ऊतरू देई।
तपत उसासन जो कोउ लहै। परकिय विरहिनि का तव कहै।
सखि जौ कमल फूल पकरावै। हाथ न छुवै निकट धरावै।
श्रपने कर जु विरह जुर तातें। मति जरि जाहि डरति तिय याते॥[3]

इसी उक्ति को छन्द बदल कर रुक्मिणी मंगल में भी देखिए—

काहू के ढिग कुंवरि वड़ स्वासनि लेई।
कहत वात मुख मूंद मूंद उत्तर तिहि देई।
जो कछु तपतप उसास, उदास वदन तें लहिहैं।
कन्या कन्या-विरह दुख कों करसों कहि हैं।
सुभग कुसुम की माल सखी जव जव गुहि लावै।
कर सों कुंवरि न परसै, श्ररसों निकट धरावै।
श्रपने कर जो विरह जरै जानत श्रति तातें।
मति मुरझाय सो माल वाल डरपति है यातें।[4]

इसके अतिरिक्त हाव भाव हेला कम्प स्वर-भंग आदि सम्बन्धी रूपमंजरी, रसमंजरी तथा रुक्मिणीमंगल की उक्तियाँ एक ही हैं।[5] रूपमंजरी तथा विरहमंजरी की भी पंक्तियाँ समान हैं। देखिए—

---

१. नन्ददास ग्रंथावली (रसमंजरी), पृ० १२८।
२. वही (रूपमंजरी), पृ० ११५।
३. वही (रसमंजरी), पृ० १३८।
४. वही (रुक्मिणी मंगल), पृ० १७५।
५ मिलाइए, नन्ददास ग्रंथावली, पृ० ११५, एवं रुक्मिणीमंगल, पद सं० १४।

भूत छिपे मदिरा पिये सब काहू सुधि होय।
प्रेम सुधारस जो पिवै तिहि सुधि रहै न कोय॥[1]

मिलाइए—

भूत छिपे मदिरा पिए, सब काहू सुधि होय।
प्रेम सुधारस जो पिए, तिहि सुधि रहै न कोय॥[2]

रूपमंजरी तथा रुक्मिणी मंगल में पग-वर्णन की उक्ति एवं शब्दावली एक ही है।[3] सद्य:स्नाता का वर्णन रूपमंजरी तथा रासपंचाध्यायी में समान है।[4] इस प्रकार की पुनरुक्तियों के अनेकानेक उदाहरण 'नन्ददास ग्रन्थावली' में मिलते हैं।

नन्ददास की पुनरुक्तियाँ रीति कवियों की पुनरुक्तियों की स्मृति दिलाती हैं। इसका मात्र कारण यह है कि कवि के वर्णन का दृष्टिकोण सीमित रहा है इसलिए एक ही बात अनेक जगहों पर व्यक्त हो जाती रही है।

अलंकार-वर्णन :

नन्ददास अलंकारवादी नहीं रसवादी कवि थे। इसी कारण उन्होंने रसमंजरी लिखी 'अलंकार मंजरी' नहीं। इसलिए इनके काव्य में चमत्कार-विधायक अलंकार अप्राप्त हैं। कुछ अलंकारों की योजना स्वाभाविक ढंग से ही इनके काव्य में हो गई है। अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, उपमा इन तीन अलंकारों के स्वरूप सर्वाधिक इनके साहित्य में मिलते हैं। इनकी उत्प्रेक्षाएँ बड़ी ही मार्मिक बन पड़ी हैं। प्राय: उत्प्रेक्षा का ही प्रयोग इन्होंने अधिक किया है। साधारणतया शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों के ही उदाहरण इनके साहित्य में मिल जाते हैं। इनके काव्य में प्रयुक्त कुछ अलंकारों के उदाहरण इस प्रकार हैं—

अनुप्रास—

नयो नेह, नयो मेह, नई भूमि हरियारी,
नवल दूलह प्यारी नवल दुलहैया।
नवल चातक मोर, कोकिला करत रोर,
नवल जुगल मौंर, नवल उलहैया।
नवल कसूंभी सारी, पहिरैं ओढ़नी के,
अंग संग प्यारी सरस सुलहैया।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (रूपमंजरी), पृ० १२१।
२. वही (विरहमंजरी), पृ० १४३।
३. मिलाइए, नन्ददास ग्रंथावली, पृ० १०८ तथा पृ० १८३।
४. मिलाइए, वही पृ० १०७ तथा पृ० २६।

नन्ददास बलिहारी छवि पै वारी,
नवल पाग बनी नवल कुल्हैया ॥[1]

यमक—

जहँ जहँ चरन धरै तरुनि, अरुन होति सो लीह ।
जनु धरती धरती फिरै, तहं तहं अपनी जीह ॥[2]

अथवा

मास मास के दिवस करि मास रह्यो नहिं देह ।
सांस रह्यो घट लागि वें, वदन चहन के नेह ॥[3]

उपमा—

ता भूपन के भवन कोऊ, दीप बारत सांझ ।
बिन ही दीपहि दीप जिमि, दिपय कुंवरि घर मांझ ॥[4]

उत्प्रेक्षा—

पावस गहरी गरजनि सुनि । जनु कन्दर मैं केहरि-धुनी ।
+ + +
घुमड़नि मिलनि देखि उर आवै । मनमथ मानो हयी लरावै ॥[5]

अथवा

नवला निकसत तीर जब, नीर चुअत वर चीर ।
जनु अंसुवन रोवत बसन, तन बिछुरन की पीर ॥[6]

रूपक—

इहि विधि चलि वैसाख इह बीत्यो दुख सुख लागि ।
संड़सी भई लुहार की, खिन पानी खिन आगि ॥[7]

---

१. नन्ददास ग्रंथावली (पदावली), पृ० ३२२ ।
२. वही (रूपमंजरी), पृ० १०८ ।
३. वही (विरह मंजरी), पृ० १५० ।
४. वही (रूपमंजरी), पृ० १०५ ।
५. वही, पृ० ११६ ।
६. वही, पृ० १०७ ।
७. वही (विरह मंजरी), पृ० १४५ ।

अत्युक्ति—

हार के मुतिया उर उर मांहीं,
तचि तचि तरकि लवा ह्वै जाहीं ॥[1]
अथवा
कोउ कोउ हार के मोतिया तचि तचि लाल भए है ॥[2]

असंगति—

जागे हो रैन सब तुम, नैना अरुन हमारे।
तुम कियौ मधुपान, घूमत हमारौं मन, काहे तें जु नन्ददुलारे।
उर नख चिह्न तिहारे, पीर हमारे, सो कारन कहु कौन पियारे।
नन्ददास प्रभु न्याय स्याम घन, बरसत अनत जाय हम पै झूम झूमारे।[3]

सन्देह—

रोम-राजि अस दीन्हि दिखाई। जनु उततें वेनी की झांई।
किधौं नीलमनि किंकिनि मांही। रोमावलि तिहि जोति की छांही।
किधौं लटि कटि दिखि करतारा। रोम-धारा जनु धर्यो अधारा ॥[4]

प्रतीप—

मृगज लजे खंजन लजे, कंज लजे छवि छीन।
दृगन देखि दुख दीन ह्वै, मीन भये जल लीन ॥[5]

व्यतिरेक—

ससि समान जे बदन कराहीं। अस क्यौं कहो कितिन बुधि नाहीं।
बांके नयन मुसकि जब चाहे। ए छवि ससि में कहहु कहा है ॥[6]

दीपक—

भादौं अति दुख-ऐन, कहियो इन्दु गोविंद सौं।
घन अरु तिय के नैन, होड़नि बरसत रैन दिन ॥[7]

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (रूपमंजरी), पृ० १२३।
२. वही (रुक्मिणी मंगल), पृ० १७६।
३. वही (पदावली), पृ० ३०६।
४. वही (रूपमंजरी), पृ० १०८।
५. वही, पृ० १०८।
६. वही, पृ० १०८।
७. वही (विरह मंजरी)।

"तत थेई तत थेई सबद सकल घट,
　　　　उरप तिरप मानो पद की पटक ।"[1]

इसी प्रकार गायों के हाँकने की भाषा देखिए—

'हाँकै हटक-हटक, गाय ठठक-ठठक रहीं,
　　　　गोकुल की गली सब सांकरी ।'[2]

होरी के वर्णन की हुल्लड़मय भाषा देखिए—

निकसि कुंवर खेलन चले, मोहन नन्द के लाल,
　　　　रंगन रंग हो हो होरी ।।[3]

इसी प्रकार की ध्वन्यत्व व्यंजना के बहुत अधिक उदाहरण नन्ददास के साहित्य में मिलेंगे ।

नन्ददास में शब्दों को पकड़कर उनके साथ क्रीड़ा करने की प्रवृत्ति पाई जाती है । वर्षा ऋतु के वर्णन के एक पद में कवि ने नया अथवा नवल शब्द को पकड़ लिया और इसी शब्द को सभी वस्तुओं का विशेषण बनाते हुए कवि कह चला—

नयो नेह, नयो मेह, नई भूमि हरियारी,
　　　　नवल दूलह प्यारी नवल दुल्हैया ।
नवल चातक, मोर, कोकिला करत रोर,
　　　　नवल जुगल भौंर नवल उल्हैया ।
नवल कसूंभी सारी पहिरें ओढ़िनी के
　　　　अंग अंग प्यारी सरस सुन्हैया ।
नन्ददास बलिहारी छवि पै वारी
　　　　नवल पाग बनी नवल कुल्हैया ।।[4]

इसी प्रकार आगे 'फूल' अथवा 'फूलन' शब्द को पकड़कर कवि ने ऐसी ही उक्ति कही है ।[5]

नन्ददास की भाषा में मुहावरे एवं लोकोक्तियों का भी अच्छा प्रयोग पाया जाता है । कहीं-कहीं एक ही पद में अनेक मुहावरों का प्रयोग अत्यन्त सरस बन पड़ा है ।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली (पदावली), पृ० २१४ ।
२. वही, पृ० २९६ ।
३. वही, पृ० ३३१ ।
४. वही, पृ० ३२२ ।
५. वही, पृ ३२३-२५ ।

नन्ददास की भाषा संस्कृतनिष्ठ है यद्यपि इसमें फारसी, अरबी के लायक, गरज, अरदास आदि कुछ शब्द भी मिल जाते हैं। कहीं-कही तो संस्कृत की शब्दावली ज्यों-की-त्यों रख दी गई है—

क्वासि क्वासि पिय महावाहु, यों वदति अकेली।
महा विरह की धुनि सुनि रोवत खग द्रुम वेली॥[1]

संस्कृत शब्दावली को कवि ने सरलतम स्वरूप देने का प्रयास किया है इसी कारण व्रज वोली के घरेलू शब्दों को भी अपनाया है।

निष्कर्ष रूप में नन्ददास की भाषा रीतिकाव्य के कवियों के अधिक अनुरूप है।

---

१. नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० १३

चतुर्थ अध्याय

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ

गोस्वामी तुलसीदास मर्यादावादी रामभक्त कवि थे। इनमें भक्ति तत्व काव्य पक्ष की अपेक्षा अधिक प्रबल था फिर भी इनकी काव्यकला हिन्दी साहित्य में अपना अमर स्थान रखती है। इनकी कविताएँ किसी भी कलाकार कवि से कम सजधज कर सामने नहीं आई हैं। कला की कोई सामग्री इनसे छूटने नहीं पाई है। सबका सम्यक् उपयोग इन्होंने किया है। इस तथ्य को अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना रामचरितमानस में लाक्षणिक ढंग से इन्होंने स्वीकार किया है।[1] इसी कारण मर्यादावाद का बन्धन होने पर भी शृंगार के अनूठे चित्रण इनकी कविताओं में पाए जाते हैं। अपनी सीमा के अन्दर उनका उचित प्रयोग कवि ने किया है। रीतिकाव्य की शास्त्रीय परिधि में इनका काव्य आ सकता है परन्तु गार्हस्थ्य जीवन की शृंगारिकता का वह स्वरूप यहाँ अप्राप्य है जिसको रीति कवियों ने अपनाया था क्योंकि इनके जीवन का मुख्य लक्ष्य आश्रयदाता को प्रसन्न करके पैसा प्राप्त करना नहीं था, बल्कि साहित्य-सर्जन करना था। शास्त्रीय दृष्टि से देखने पर रीति काव्य की प्रवृत्तियाँ अवश्य इनमें भी पाई जाती हैं।

संयोगशृंगार-वर्णन :

संयोग शृंगार के कुछ पद गीतावली में पाए जाते हैं। यहाँ कवि की आत्मा मर्यादावाद को कुछ ढीला करके चली है। 'इसमें तुलसीदास राम के व्यक्तित्व को

---

१. धुनि अवरेब कवित गुन जाती। मनि मनोहर ते बहुभाँती।
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नवरस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
रामचरित मानस, बालकाण्ड, ३७

कृष्ण के व्यक्तित्व के बहुत समीप तक ले आए हैं। इसी आधार पर तुलसी को सूर के कृष्ण काव्य से प्रभावित हुआ माना जा सकता है।[1] अयोध्या काण्ड में राम और सीता का स्फटिक शिलाओं पर जो सुख-विलास चित्रित किया गया है उसका कारण यही है। प्रकृति की रम्य छाया में दोनों प्रेमियों का मर्यादित ढंग से प्रेमालाप दर्शाया गया है।[2] राजीव नयन राम पल्लव की शय्या स्वयं अपने हाथों से सजाते हैं और अपनी प्रेयसी को सुसज्जित करते हैं फिर भी उनकी अटूट प्रेम की प्यास तृप्त नहीं हो पाती है। उनकी यह मधुर हास-विलास की मूर्ति कवि के हृदय में अपना स्थान बना लेती है।[3] मर्यादित जीवन की परिधि में संयोग शृंगार का मधुर स्वरूप इसी प्रकार उपस्थित किया गया है।

शय्या-प्रसाधन के अतिरिक्त शृंगार की शेष बातें यहाँ समझ लेने के लिए कवि ने छोड़ दी हैं। इससे उसकी मर्यादित परिधि का आभास मिलता है। इससे थोड़ा और आगे बढ़कर प्रेम रस में पगे राम का चित्रण गीतावली के उत्तर काण्ड में कवि ने किया है।[3] यहाँ मागध वंदियों के गायन द्वारा प्रातःकाल जब राम उठे तो अपनी प्रेयसी के प्रेम में पगे थे। उनके मुखमण्डल की आभा कामदेव को भी मात दे रही थी। उनकी छवि अनुपमेय थी। इस प्रकार प्रेमियों की संयोगावस्था का कवि ने संकेत मात्र किया है।

राम और सीता के अतिरिक्त लक्ष्मण और उर्मिला के भी शृंगार का वर्णन कवि ने अपनी सीमा के अन्दर किया है। उनके केलि-भवन में प्रस्थान करते देखकर नायिकाओं के नेत्र सफल हो गए।[4] इसके आगे का वर्णन करने में कवि ने संकोच महसूस किया है। उसको मर्यादावाद की परिधि ने वहीं रोक दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि गोस्वामी जी शृंगार की उन्मुक्त प्रवृत्तियों से प्रभावित थे, परन्तु राम का मर्यादावादी स्वरूप उसे ढँके हुए था। साहित्य के प्रवाह ने इस आवरण को जगह-जगह हटा दिया है जिससे उसकी मधुर झांकी झलक जाया करती है।

शृंगार के इन वर्णनों को देखकर कुछ आलोचकों ने गोस्वामी जी को माधुर्य-भाव का उपासक मान लिया है। उनकी मान्यता है कि 'अपने चतुर्दिक् प्रवाहित रसिक धारा की इन हिलोरों से तुलसी का बचा रहना संभव न था। इनके साहित्य में ऐसे अनेक स्थल मिलते हैं जो इस बात के साक्षी हैं कि ये रसिक साधना के समर्थक

---

1. डा० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४०२।
2. तुलसी ग्रन्थावली, भाग २, पृष्ठ २८६।
3. वही, पृष्ठ ३३७।
4. वही, भाग २, पृष्ठ २७२।

थे और किसी समय उसके साधक भी रहे हों तो आश्चर्य नहीं ।[१] मानस में उनका आराध्य के प्रति आत्मनिवेदन दास्य भाव का था किन्तु गीतावली में उनका आत्म-समर्पण माधुर्य से प्रेरित था । पहले वे दास्य निष्ठा के अनुसार इष्टदेव के चरणों पर गिरे थे किन्तु इस बार माधुर्य भाव-सम्पन्न सखी-रूप में वे स्वामिनी सीता के हृदय से लगे । कारण कि रसिक सिद्धान्त के अनुसार सखियाँ सीता के पुरुषकारत्व से ही प्रभु सेवा की अधिकारिणी होती है ।[२] इसी बात का समर्थन डा० भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र ने भी किया है । उनके अनुसार दास्य सख्य में, सख्य वात्सल्य में और वात्सल्य माधुर्य में परिणत होता गया और आज लगभग चार सौ वर्षों से रामभक्ति की माधुर्यधारा उत्तर भारत में प्रवाहित हो रही है ।[३]

गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनाओं पर सम्यक् दृष्टिपात करने पर निर्विवाद रूप से सर्वत्र यही भाव दिखाई देता है कि 'सेवकसेव्य भाव बिनु भव न तरि अउरगारि ।' गीतावली में भी जिसमें उपर्युक्त आलोचकों ने मधुर भाव की खोज की है गोस्वामी जी ने अपने को दास ही कहा है ।[४] यह बात अवश्य है कि गीतावली में गोस्वामी जी ने सिद्धान्त की बातें कम कही हैं उनका कविहृदय ही यहाँ सामने आ पाया है । राम को नागरिक जीवन में उतार कर यहाँ जीवन की विविध मनोरम झाँकियाँ प्रस्तुत की गई हैं । इसीलिए फाग खेलते हुए पुरवासियों के बीच राम को भी दिखाया गया है ।[५] केवल शृंगार की कुछ पंक्तियों को देखकर तुलसी को मधुर भाव का उपासक नहीं कहा जा सकता है । सत्य तो यह है कि राम-भक्ति में मधुर उपासना का प्रवाह गोस्वामी जी के बाद कृष्ण भक्ति शाखा के प्रभाव से चला । 'रामभक्ति में मधुरोपासना के बीज चाहे जहाँ-तहाँ मिल जायँ, पर न तो सोलहवीं शती तक उनका लोक में कोई स्थान, प्रभाव और ग्रहण था और न सम्प्रदाय के रूप में ही अनका अस्तित्व था । उक्त मत का समर्थन करने वाले प्रायः सभी संहिता ग्रन्थ और रामायण ग्रन्थ बहुत अर्वाचीन रचनाएँ है । उनकी प्राचीनता संदिग्ध और निराधार है । वाल्मीकि रामायण में प्रेम और दाम्पत्य की चर्चा काव्य की वर्णन-शैली के क्रम में आई है न कि माधुर्य भाव की सहज और साम्प्रदायिक उक्ति के रूप में । वाल्मीकि रामायण में भी मधुरोपासना के तत्व की कल्पना केवल तर्क-सत्य हो सकती है, तथ्य कथमपि नहीं ।............

१. डा० भगवतीप्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृष्ठ १०३ ।
२. वही, पृष्ठ १०६ ।
३. डा० भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र : रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृष्ठ ११८ ।
४. तुलसी ग्रंथावली, भाग २, पृष्ठ ३४५ ।
५. वही, पृष्ठ ३४९-५० ।

यदि शृंगारी वर्णन से ही मधुरोपासना सिद्ध होती तो कुमारसम्भव में शिव पार्वती के रति-विलास का वर्णन करने वाले कालिदास भी शिव के मधुरोपासक हो जाते।[1] इसलिए सेवक-सेव्य भाव के समर्थक गोस्वामी तुलसीदास में मधुर उपासना के तत्त्व खोजना स्वसमर्थन के लिए तर्क ढूंढ़ना मात्र है। वस्तुतः गोस्वामी जी ने अपने को मधुर-भाव के क्षेत्र में कभी उतारा ही नहीं। मर्यादावादी भक्ति के क्षेत्र में रहस्य की भावनाओं के प्रवेश के कारण माधुर्य भाव की भी कल्पना कर ली गई है।

वियोगशृंगार-वर्णन :

तुलसीदास जी का वियोग-वर्णन शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण करते हुए हुआ है। इनके वियोग वर्णन में शास्त्रीय पद्धतियों का पालन हुआ जान पड़ता है। वियोग के तीनों रूपों में से पूर्वराग और प्रवास का वर्णन तो इनमें मिलता है, परन्तु मान का वर्णन इनकी रचनाओं में अप्राप्त है। इसका कारण इनकी धार्मिक भावना है। आराध्य देव के सम्मुख मान करने का इनकी नायिका को अवसर नहीं रहा है। वह नायक को सर्वगुण सम्पन्न मान कर चलती रही है। इसलिए उसके मान का प्रश्न ही कहाँ रहा?

पूर्वराग वर्णन :

पूर्वराग की योजना तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के फुलवारी प्रसंग में की है। वहाँ सीता राम के दर्शन मात्र से अभिभूत हो जाती है। उन्हें वर रूप में स्वीकार करने की अपनी अभिलाषा व्यक्त करती है। अपने पिता की प्रतिज्ञा पर उन्हें क्षोभ भी होता है। उनकी इस आत्म-विह्वल स्थिति को देखकर सखियाँ उनसे वाटिका से प्रस्थान करने का आग्रह भी करती हैं। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए सीता पार्वती के मन्दिर में जाकर प्रार्थना करती है और पर्वती से राम को ही वर-रूप में प्राप्त करने का आशीर्वाद प्राप्त करती है।[2] इस योजना द्वारा कवि ने पूर्वराग की अच्छी व्यंजना की है। कवि के मर्यादावादी दृष्टिकोण को कहीं से धक्का भी नहीं लगा है और शृंगार की पूर्वपीठिका तैयार कर दी गई है।

प्रवास-वर्णन :

प्रवास विप्रलम्भ का वर्णन तुलसी काव्य में बहुत अधिक हुआ है। इस अवसर के लिए कवि को पर्याप्त स्थान मिला है। सीताहरण के पश्चात् तुलसी काव्य का समस्त वियोग-वर्णन इसी के अन्तर्गत हुआ है। इसमें वियोग की सभी कलाएँ कवि ने

---

१. पं० करुणापति त्रिपाठी, परिषद पत्रिका, पृष्ठ १०० ।

२. रामचरितमानस, बालकाण्ड दो० २३४-३६ ।

दिखाई हैं। अपनी धार्मिक भावना के कारण नायिका की अपेक्षा नायक के वियोग-वर्णन अधिक दिखाएँ गए हैं। सीता की भी विरहातुर स्थिति का चित्रण किया है, परन्तु अधिक नहीं। इसका कारण कवि की धार्मिक भावना तथा उसका कथानक है। श्रीकृष्ण गीतावली में भी गोपियों का विरह-वर्णन प्रवास के अन्तर्गत किया गया है जो कृष्ण काव्य की परम्परा के अनुरूप है। ज्ञान और भक्ति का विवाद इसके अन्तर्गत उठाया गया है जिसमें भक्ति की ज्ञान से श्रेष्ठता सिद्ध की गई है।

रामचरितमानस में मारीचवध के बाद राम को सीता का वियोग होता है। इसी अवसर से राम की विरहव्यथा आरम्भ होती है। मारीच-वध के बाद राम जब अपनी कुटी पर लौटे तो वहाँ सीता को न पाकर अत्यन्त व्याकुल होकर विलाप करने लगे। उनकी विरह-विह्वल स्थिति का अत्यन्त कारुणिक चित्रण यहाँ कवि ने किया है। प्रकृति के एक-एक तत्व उनको विषम पीड़ा पहुँचाते हुए दिखाई पड़ते हैं।[1] अपनी मर्यादावादी सीमा को भूल कर महाकामी के समान यहाँ उन्हें विलाप करते हुए दिखाया गया है। विरह की अपार पीड़ा को सहने की शक्ति उनमें नहीं रही।

वियोगावस्था में प्रिय का स्मरण ही कष्ट देता रहता है यदि उसी समय उसकी कोई प्रिय वस्तु सामने आ जाय तब तो वियोगाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है। सीता के वियोग में राम की यही स्थिति होती है। वियोग की ज्वाला राम को सता रही है। उसी समय सीता के वस्त्राभूषणों पर उनकी दृष्टि पड़ी। यह स्थिति उनके लिए अत्यन्त कठिन थी। अपने को सम्भालने पर भी उनके नेत्र अश्रुपूरित हो उठे, शरीर अविचल हो गया। उनकी इस दशा का प्रभाव सहचरों पर भी पड़ा जिससे घी के वर्तन की भाँति वे पिघल उठे।[2] सीता की स्थिति राम से कम हृदय-विदारक नहीं है। मूर्ति के सदृश एक स्थान पर वह भी पड़ी हुई है। उनके नेत्र चित्रवत, पग अविचल तथा श्रवण स्थिर हो गए हैं। नेत्रों से निरन्तर अश्रुधार प्रवाहित हो रही है जो हृदय के ताजे घावों को सहलन दे रहे हैं।[3]

विरह का ऊहात्मक वर्णन भी गोस्वामी जी ने किया है। सीता राम के वियोग में अत्यन्त क्षीणकाय हो गई है। उनकी इस क्षीणता को कवि ने इतना अधिक बढ़ाया है कि उनकी कनिष्ठिका की अंगूठी को कंकन के रूप में चित्रित किया है। दुर्वलता की इस सीमा में प्राण बचे रहने की आशा कैसे की जा सकती है।[4] इसी प्रकार अशोकवाटिका में उनकी विरह-ज्वाला के कारण खग-मृग अपने-अपने

---

१. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दो० ३०।
२. तुलसी ग्रंथावली, द्वितीय खण्ड, पृष्ठ ३१० पद १।
३. वही, पृष्ठ ३१७ पद १८।
४. वरवै रामायण, पद ३८।

घरों को भाग चले। उनकी गर्म निःश्वास से भयातुर होकर प्रातःकालीन शीतल वायु को भी अपना मार्ग बदलना पड़ा। वस्तुतः विरहिणी की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण करना असम्भव हो गया।' इस प्रकार का वर्णन परम्परा की लकीर पीटने के कारण कवि ने किया है।

कहीं-कहीं साधारण पंक्तियों में ही सीता का वियोग-वर्णन अत्यन्त मर्मस्पर्शी हुआ है। बरवै रामायण की कुछ पंक्तियाँ ऐसी ही हैं। नायिका के विरह की अग्नि जब हृदय में प्राज्वलित होकर सम्पूण शरीर को भस्म कर देना चाहती है तो उसके नेत्र बरस कर उसे बुझा देते हैं। इसी कारण बार-बार नायिका को व्यथा सहनी पड़ती है। उसका शरीर भस्म हो जाता तो उसे विरह व्यथा से मुक्ति मिल जाती।' इस प्रकार की मार्मिक उक्तियाँ वियोग वर्णन के प्रसंग में अधिक कही गई हैं।

वियोग के अन्तर्गत विरह दशाओं के भी वर्णन किए जाते हैं। तुलसी काव्य में इनका छिट-पुट वर्णन हुआ है जिसको यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। क्रमपूर्वक इनका वर्णन तुलसी काव्य में कहीं नहीं हुआ है। छिट-पुट पदों तथा कथा-प्रसंगों में यथास्थान इनका वर्णन हुआ है। भावों की विह्वल स्थिति में इनका चित्रण हो जाना स्वाभाविक है। इसीलिए गीतावली में इनका अधिक वर्णन हुआ है, क्योंकि वहाँ कवि की भावनाएँ अधिक सबल तथा स्वतन्त्र होकर सामने आई हैं।

आलम्बन-वर्णन :

जो आकार उनके मानस में था वही इनकी वाणी से व्यक्त हुआ है। परम्परा के प्रभाव के कारण उनकी भावनाएँ निश्चित मार्ग द्वारा व्यक्त हुई हैं। इसलिए इनका रूप-वर्णन भी समुचित ढंग पर हुआ है। सर्वत्र नख से शिख तक के एक एक अंगों को गिन कर सामने रखा गया है। रूप-वर्णन का प्रसंग आते ही यही परम्परा सदैव अपनाई गई है।

रूप-वर्णन के प्रसंग में एक-एक अंगों के लिए अलग अलग पद तो नहीं लिखे गए हैं पर एक ही पद में सभी अंगों को एकत्र करने का प्रयास दिखाई देता है। नख से शिख तक के लिए एक-एक अंगों की जो उपमाएँ दी गई हैं, वे प्रायः संस्कृत साहित्य का उद्धरण मात्र प्रस्तुत करती हैं। उपमाओं में कोई नवीनता नहीं दिखाई देती है, परन्तु उनका चयन तथा उपयोग अच्छा हुआ है। कवि को इस कार्य में सफलता भी मिली है।[1]

बरवै रामायण में सीता के अंगों का वर्णन करते हुए कवि ने एक-एक अंगों के वर्णन में एक-एक पद लिखा है। यह वर्णन रीति कवियों के अधिक निकट जान पड़ता है। कवि की वृत्ति इनमें रमी नहीं जान पड़ती है। भाव-शवलता का वहाँ अभाव-सा है। सीता का रूप-वर्णन करते हुए कवि कहता है कि सीता के मुख की उपमा शरद् कमल से नहीं दी जा सकती, क्योंकि वह रात्रि में मलिन हो जाता है और यह सदैव विमल रहता है।[2] इसी प्रकार नेत्रों का वर्णन करने में केवल उनकी दीर्घता की ही ओर कवि की दृष्टि गई है।[3] वह भी अत्यन्त साधारण ढंग में। उसी प्रकार सीता की सौन्दर्याभा का वर्णन भी अत्यन्त साधारण ढंग से किया गया है।[4] इस प्रकार के अनेक पद तुलसी काव्य में मिलेंगे जहाँ केवल उपमाओं के आधार पर साधारण तरीके से रूप वर्णन किए गए मिलेंगे। जान पड़ता है कि अलंकारों का प्रकाशन करने के लिए कवि ने इस ग्रन्थ की रचना की है। अन्य वस्तुओं के वर्णन प्रसंग में आकर हुए हैं। इसी कारण उनका स्वरूप नहीं बन पाया है। जहां कवि की भावनाएं रमी हैं, वहाँ रूप-का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। ऐसे अवसरों पर कवि अपनी धार्मिक भावनाओं से आबद्ध भी है।

उद्दीपन-वर्णन :

तुलसी काव्य में उद्दीपन का कार्य प्रकृति द्वारा दिखाया गया है। प्रकृति के एक-एक तत्त्व संयोगावस्था में सुहावने और वियोगावस्था में भयानक दिखाए गए

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड २, पृष्ठ २७३, पद १०६।
२. बरवै रामायण, छन्द ३।
३. वही, छन्द ४।
४. वही, छन्द १७।

हैं। संयोग की स्थिति में प्रकृति की प्रत्येक वस्तु रमणीय चित्रित की गई है।[1] वियोग में वे ही तत्त्व जो दूसरों के मन को लुभा लेने वाले हैं नायिका के अभाव में नायक का परिहास करते जान पड़ रहे हैं। पशु-पक्षियों की युगल जोड़ियां नायक को ऐसी ही प्रतीत हो रही हैं। वसंत की सुहावनी वेला उसे भय उत्पन्न करने वाली जान पड़ रही है।[2] श्रीकृष्ण गीतावली में यही वात और स्पष्ट रूप में कवि ने कही है। वहाँ प्रिय के वियोग में नायिका को प्रकृति के सारे हितकर तत्त्व शत्रु प्रतीत हो रहे हैं। उसे चन्द्रमा से शीतल सूर्य जान पड़ रहा है, क्योंकि चन्द्रमा के उगते ही काम हृदय की ज्वाला को और अधिक प्रस्फुटित कर दे रहा है इसलिए उसका ताप अत्यधिक वढ़ जाता है। सूर्य अकेले उतनी तपन नहीं पहुँचा सकता।[3] इसी प्रकार प्रकृति के क्षेत्र में कवि ने उसके उद्दीपनकारी स्वरूप पर ही विशेष दृष्टि रखी है। आलंवन रूप में प्रकृति का चित्रण अत्यल्प मात्रा में हुआ है।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी ने षड्ऋतु वर्णन की ओर भी अपनी रुचि दिखाई है। यह वर्णन सीता के वियोग में पावस ऋतु से आरम्भ किया गया है। वर्षा का स्वरूप सामने आते ही नायक की विरह व्यथा और अधिक वढ़ जाती है। वह आत्मविह्वल होकर कहता है कि 'प्रियाहीन डरपत मन मोरा।' इसके वाद वर्षा की सभी वस्तुएँ उसके सामने आ जाती हैं। वादल अभिमान में गरजते हैं, विजली चमकती है। छोटी-छोटी नदियाँ उमड़कर चलने लगती हैं, तालाव भर जाते हैं, नदियों का पानी समुद्र में गिरने लगता है, घनघोर वृष्टि का स्वरूप सामने आ जाता है।[4] इसी प्रकार का वर्णन करते हुए कवि शरद् ऋतु तक आ जाता है। इसके वाद उसने ऋतुओं का वर्णन करना वन्द कर दिया है। सम्भवतः कथावरोध के भय ने ही उसे यहाँ रोक दिया है। इस वर्णन की विशेपता कवि के सूक्ष्म तत्त्वों के दृष्टिपात में है। इन ऋतुओं की छोटी-से-छोटी वस्तु भी कवि से छूटने नहीं पाई है। इन वर्णनों के साथ-साथ कवि की उपदेशात्मकता भी चलती रही है जिससे कथावरोध होने नहीं पाया है।

अलंकार-वर्णन :

गोस्वामी तुलसीदास जी साहित्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी रचनाओं में शास्त्रीय समस्त विधियों का पालन अच्छी तरह हुआ है। इस विद्वत्ता का इनको अभिमान भी रहा है जो यथास्थान प्रकट भी होता रहा है। अपनी जानकारी पर ही विश्वास करके उन्होंने विनम्र स्वर में कहा है कि—

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, खण्ड २, पृष्ठ २८९, पद ४४।
२. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड, दो० ३७।
३. श्रीकृष्ण गीतावली, पद ३०।
४. रामचरितमानस, किष्किंधा काण्ड, दो० १४।

आखर अरथ अलंकृति नाना। छन्द प्रबन्ध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।
कबित बिबेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागर कोरे॥[1]

इससे स्पष्ट है कि काव्यशास्त्री की सम्पूर्ण जानकारी कवि को रही है फिर भी कोरे कागज पर हस्ताक्षर करके उसने आलोचकों को टीका करने की छूट दे दी है। आलोचकों के सम्मुख उसने केवल अपनी कृति प्रस्तुत कर दी है उस पर अपनी राय प्रकट करना उन्हीं का काम है। इससे यह स्पष्ट है कि शास्त्र के क्षेत्र मे कवि की विज्ञता बहुत बढ़चढ़ कर रही है और समयानुसार उसका उपयोग भी किया है।

अलंकारों के क्षेत्र में कवि ने पर्याप्त विज्ञता प्रकट की है। प्रायः सभी रचनाओं में उनका पूर्ण प्रयोग पाया जाता है। कुछ रचनाओं का तो निर्माण ही इसी उद्देश्य से किया गया जान पड़ता है। बरवै रामायण एक इसी प्रकार की रचना है। उसमें छोटे छोटे पदों में अलंकारों के उदाहरण दिए गए जान पड़ते हैं। इनके कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

तद्गुण— केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत॥[2]

इस पद में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अतद्गुण अलंकार माना है[3] जो सम्भवतः ठीक नहीं है। अतद्गुण अलंकार वहाँ होता है जहाँ अपने से सम्बद्ध गुण को कोई पदार्थ कारण रहने पर भी ग्रहण न करे।[4] इस पद में ऐसी कोई स्थिति दिखाई नहीं दे रही है। प्रथम पंक्ति में मुक्ता ने बालों का रंग ग्रहण कर लिया इसलिए तद्-गुण अलंकार हो गया और दूसरी पंक्ति में कोई चमत्कार है ही नहीं। मुक्ता हाथ में आते ही अपने स्वाभाविक रूप को ग्रहण कर लेता है।

व्यतिरेक— सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर॥
तथा सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
निसि मलीन वह निसिदिन यह बिगसाइ॥[5]

उन्मीलित— चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ॥[6]

---

१. रामचरितमानस, बाल काण्ड, दो० ९।
२. बरवै रामायण, छन्द १।
३. गोस्वामी तुलसीदास, पृष्ठ १३६।
४. साहित्यदर्पण, पृष्ठ ३६३, पंक्ति १०।
५. बरवै रामायण, छन्द २-३।
६. वही, छन्द ५।

मीलित— सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावों चंपक होत ॥[1]

इसी प्रकार बरवै रामायण का प्राय: प्रत्येक छंद किसी न किसी अलंकार का उदाहरण मात्र है। कवि की यह प्रवृत्ति इस रचना में यहाँ तक बढ़ी हुई जान पड़ती है कि कूट पदों का भी उसने निर्माण किया है। शूर्पणखा को दंड देने के लिए लक्ष्मण को राम से सीधे शब्दों में न कहला कर कवि ने कूट का रास्ता ग्रहण किया है—

वेद नाम कहि अंगुरिन खण्डि अकास।
पठयो सूपनखाहि लषन के पास ॥[2]

वेद=श्रुति=कान तथा अकास=स्वर्ग=नाक अर्थात् कान नाक काट लेने का आदेश लक्ष्मण को दिया गया। इसके अतिरिक्त अन्य अलंकारों की रचना तुलसी काव्य में अगणित है। श्लेष रूपक उपमा सभी के पर्याप्त उदाहरण इनकी रचनाओं में वर्तमान हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी की अलंकारप्रियता को देखकर आगे आने वाले आलोचकों ने इन्हीं के ग्रन्थों से उदाहरण देकर स्वतन्त्र अलंकार-ग्रन्थों का निर्माण कर डाला है। इन ग्रन्थों में चित्रकाव्य के भी उदाहरण इन्हीं के ग्रन्थों से दिए गए हैं। खोज रिपोर्टों से इन ग्रन्थों का पता चलता है जिनका विवरण इस प्रकार है—

मानसदीपिका[3]—(काव्यांग)—पत्र २६, छंद ७२८, पद्य, प्राप्ति—पंडित मोहनलाल जी, स्थान—बंजुआ, पो० अरांव, जिला मैनपुरी।

आदि— आदि के ३४ पृष्ठ लुप्त ३५ वें पृष्ठ से उद्धृत—

अथ शब्दालंकार (छेक्यनुप्रास) यथा—

भये प्रगट कृपाला परम दयाला कौसिल्या हितकारी। (इत्यादि)

अन्त—कमलबन्ध— धरु धरु मारु मारु धरु मारू।
सीस तोरि गहु भुजा उपारू।

अहिबन्ध— बन्दौं पवन कुमार गल बन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदै आगार बसहि रामसर चाप धर॥

विषय—तुलसीकृत रामचरितमानस में वर्णित छन्दों और अलंकारों के लक्षणादि का वर्णन।

इस ग्रन्थ के रचयिता का पता नहीं है। चित्रकाव्य की रचनाओं को देखकर गोस्वामी जी की अलंकारिता का अनुमान लगाया जा सकता है। चित्रकाव्य में भी

---

१. बरवै रामायण, छन्द ६।
२. वही, छन्द २८।
३. खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, १९३२-३४, पृष्ठ २५०।

इनका भाव प्रावल्य बना हुआ है। इस रचना के अतिरिक्त और भी इनकी आलंकारिक रचनाओं की सूचना मिलती है—

तुलसी भूषण'[1]—रचयिता—रसरूप, पत्र ६१, छंद १७५०, रचनाकाल—सं० १८११ या सन् १७५४ ई०, प्राप्तिस्थान—महाराज बनारस का पुस्तकालय, रामनगर, वाराणसी तथा नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। विषय— छंद तथा अलंकार। तुलसीकृत मानस से अधिकांश तथा कुछ अन्य पुस्तकों से भी उदाहरण दिए गए हैं।

अलंकार वर्णन[2]—पत्र ७, छंद २१३। प्राप्तिस्थान—नागरी प्रचारिणी सभा काशी। विषय—अलंकारों का अकारादि क्रम से वर्णन। विशेष अलंकारों के उदाहरण एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों, अधिकतर मानस से दिए गए हैं। ग्रन्थ का नाम विषय को देखकर रखा गया है। अलंकारों के लक्षण दोहों में दिए गए हैं जिनमें कहीं-कहीं 'केशवराइ' नाम आया है। ग्रन्थकार का नाम सम्भवतः यही हो सकता है, फिर भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

इन ग्रन्थों को देखकर गोस्वामी जी की अलंकारप्रियता का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। चित्रालंकारों तक की योजना इनके काव्य में हुई है और भावधारा को ठेस भी नहीं लगने पायी है।

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में कवित्त, सवैया, दोहा आदि मुक्तक पदों की भरमार है जो रीति कवियों को विशेष प्रिय था। 'कवितावली' इनकी एक प्रसिद्ध रचना ही है जिसमें केवल कवित्त और सवैये छंद प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त दोहावली, श्रीकृष्ण गीतावली, गीतावली आदि इनकी मुक्तक पदों की रचनाएँ सर्वप्रसिद्ध हैं। रीति काव्य को प्रेरणा देने में इन ग्रन्थों का भी हाथ रहा है। रामचरितमानस के अतिरिक्त शेष ग्रन्थों की भाषा भी ब्रजी है। इनकी ब्रजी भी उतनी ही मँजी, स्वस्थ एवं सुगठित है जितनी अवधी। इसलिए भाषा के क्षेत्र में भी ये रीति काव्य के निकट ही दिखाई देते हैं।

भक्तिकालीन रामभक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास के बाद स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द्र चौहान तथा हृदयराम का नाम आता है। आचार्य केशवदास का समय भी भक्तिकाल के अन्तर्गत पड़ता है, परन्तु वे रीतिग्रन्थकार कवि प्रतिष्ठित हो चुके हैं। इनकी विषयवस्तु को देखकर उन्हें रीति कवि कहा जाता है। उक्त कवियों की शृंगारी रचनाओं को देखकर इनको माधुर्यभाव का उपासक माना जाने लगा है।[3] इनमें शृंगार की सभी प्रवृत्तियाँ दिखाई गई हैं। इनके राम के

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज का विवरण १९०४।११, नागरी प्रचारिणी सभा, सवंत् २००१।३२४।

२. वही, १९४१-४३।३३१।

३. डा० भगवती प्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५३९।

अन्त:पुर को विलासी राजाओं की विहारवाटिका के सदृश चित्रित किया गया है।[1] इन चित्रों को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने खेद प्रकट किया है।[2] इन कवियों ने सीता का नखशिख वर्णन अलंकृत ढंग से किया है।[3] उनके शयन गृह को तत्कालीन राजाओं के विलास गृह की तरह सजाया है और इन प्रेमियों का प्रेम-व्यापार भी चलाया है। इसलिए छिटफुट रूप में इनमें भी रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ मिलती हैं।

---

१. डा० भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र 'माधव' : रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० १९५-७।

२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १५०।

३. स्वामी अग्रदास : रामध्यान मंजरी, पृ० ७।

इनका भाव प्रावल्य बना हुआ है। इस रचना के अतिरिक्त और भी इनकी आलंकारिक रचनाओं की सूचना मिलती है—

तुलसी भूषण[1]—रचयिता—रसरूप, पत्र ६१, छंद १७५०, रचनाकाल—सं० १८११ या सन् १७५४ ई०, प्राप्तिस्थान—महाराज बनारस का पुस्तकालय, रामनगर, वाराणसी तथा नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी। विषय—छंद तथा अलंकार। तुलसीकृत मानस से अधिकांश तथा कुछ अन्य पुस्तकों से भी उदाहरण दिए गए हैं।

अलंकार वर्णन[2]—पत्र ७, छंद २१३। प्राप्तिस्थान—नागरी प्रचारिणी सभा काशी। विषय—अलंकारों का अकारादि क्रम से वर्णन। विशेष अलंकारों के उदाहरण एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास जी के ग्रन्थों, अधिकतर मानस से दिए गए हैं। ग्रन्थ का नाम विषय को देखकर रखा गया है। अलंकारों के लक्षण दोहों में दिए गए हैं जिनमें कहीं-कहीं 'केशवराइ' नाम आया है। ग्रन्थकार का नाम सम्भवतः यही हो सकता है, फिर भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

इन ग्रन्थों को देखकर गोस्वामी जी की अलंकारप्रियता का अनुमान आसानी से लगाया जा सकता हैं। चित्रालंकारों तक की योजना इनके काव्य में हुई है और भावधारा को ठेस भी नहीं लगने पायी है।

गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में कवित्त, सवैया, दोहा आदि मुक्तक पदों की भरमार है जो रीति कवियों को विशेष प्रिय था। 'कवितावली' इनकी एक प्रसिद्ध रचना ही है जिसमें केवल कवित्त और सवैये छंद प्रयुक्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त दोहावली, श्रीकृष्ण गीतावली, गीतावली आदि इनकी मुक्तक पदों की रचनाएँ सर्वप्रसिद्ध हैं। रीति काव्य को प्रेरणा देने में इन ग्रन्थों का भी हाथ रहा है। रामचरितमानस के अतिरिक्त शेष ग्रन्थों की भाषा भी ब्रजी है। इनकी ब्रजी भी उतनी ही मँजी, स्वस्थ एवं सुगठित है जितनी अवधी। इसलिए भाषा के क्षेत्र में भी ये रीति काव्य के निकट ही दिखाई देते हैं।

भक्तिकालीन रामभक्त कवियों में गोस्वामी तुलसीदास के बाद स्वामी अग्रदास, नाभादास, प्राणचन्द्र चौहान तथा हृदयराम का नाम आता है। आचार्य केशवदास का समय भी भक्तिकाल के अन्तर्गत पड़ता है, परन्तु वे रीतिग्रन्थकार कवि प्रतिष्ठित हो चुके हैं। इनकी विषयवस्तु को देखकर उन्हें रीति कवि कहा जाता है। उक्त कवियों की शृंगारी रचनाओं को देखकर इनको माधुर्यभाव का उपासक माना जाने लगा है।[3] इनमें शृंगार की सभी प्रवृत्तियाँ दिखाई गई हैं। इनके राम के

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों की खोज का विवरण १९०४।११, नागरी प्रचारिणी सभा, सवंत् २००१।३२४।

२. वही, १९४१-४३।३३१।

३. डा० भगवती प्रसाद सिंह : रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० ५३९।

छीहल :

इनका समय लगभग सं० १५७५ वि० था। इनका अन्य नाम छेहल था।[1] इनकी भाषा राजस्थानी है। ये उवर, ही के रहने वाले थे।[2] खोज रिपोर्ट में इनकी रीतिकाव्य सम्बन्धी प्राप्त रचना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

पंच सहेली रा दूहा—विषय—पाँच स्त्रियों का संयोग तथा विरह वर्णन, र० का० सं० १५७५ वि०। देखिये—ना० प्र० स० १९००।९३ १९०२।३५, १९४१-४३।४९७।

इनकी एक रचना बावनी की भी सूचना मिलती है जिसमें बावन दोहे हैं।[3]

कृपाराम :

इनका समय लगभग सं० १५९८ अर्थात् सन् १५४१ माना जाता है जो इनकी रचना में दिए गए रचनाकाल के आधार पर है। अभी तक इनको हिन्दी रीति परम्परा का प्रथम आचार्य माना जाता रहा है।[4] इनकी रीतिकाव्य-सम्बन्धी रचना 'हिततरंगिणी' है जो गत वर्ष प्रकाशित भी हो चुकी है। यह एक नायक-नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ है, जो दोहा छंद में लिखा गया है। इसके दोहे बहुत सरस एवं भावपूर्ण हैं। खोज रिपर्टो में इनकी रीतिकाव्य सम्बन्धी रचना की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

हिततरंगिनी—विषय—नायक-नायिकाभेद। देखिये—ना० प्र० सभा, १९०६-८।२८०, १९०९-११।१५७।

मोहनलाल (मिश्र) :

इनका समय लगभग सं० १६१६ था।[5] इनको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कृपाराम का समसामयिक माना है।[6] कुछ लोग इन्हें कृपाराम से पूर्व का मानते हैं।[7] इनके पिता का नाम चूड़ामणि मिश्र था। ये बुन्देलखण्ड में चरखारी के रहने वाले थे। खोज रिपोर्ट में रीतिकाव्य सम्बन्धी सूचित इनकी रचना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, ना० प्र० सभा, काशी।
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १९१-९२।
३. वही, पृ० १९१-९२।
४. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १९१।
५. खोज रिपोर्ट, ना० प्र० स०, १९०५।७०।
६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २००।
७. हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ ४३०।

और अकवर के दरवार में रहा करते थे। शिवसिंह सरोज के अनुसार ये फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। फारसी कविता में अपना उपनाम तौसीन रखते थे। इनकी रचनाओं पर इनका फारसीपन स्पष्ट झलकता है।[1]

वोधा :

इनका समय सं० १६३६ के आस-पास अर्थात् सोलहवीं शताब्दी का मध्य-काल था। ये 'विरहवारीश' और 'इश्कनामा' के रचयिता वोधा से भिन्न और उनसे दो सौ वर्ष पहले हुए थे।[2] इनका निवासस्थान उसामनी (फिरोजावाद, आगरा) था। खोज में इनके रीतिकाव्य सम्वन्धी ग्रन्थों की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

पक्षी मंजरी—विषय—पक्षियों के श्लेष के माध्यम से नायिका का विरह-वर्णन। र० का० सं० १६३६, देखिए—ना० प्र० स० १९३०-३४।३१ डी।

पशु जाति नायिकानायक मथन—विषय—नायक नायिका भेद देखिए—ना० प्र० स० १९३२-३४।३१ ई०।

फूलमाला—विषय—वियोगश्रृंगार, देखिए—ना० प्र० स० १९३३-३४। ३१ सी०। २००४।२४७।

वारहमासी—संयोगवियोगवर्णन, देखिए—ना० प्र० स० १९३२-३४। ३१ वी०।

इसके अतिरिक्त इनके 'वाग वर्णन' नाम के एक ग्रंथ की भी सूचना दी गई है।

मुनिलाल :

इनका ख्याति-काल लगभग सं० १६३७ था।[3] इनके विषय में और कोई सूचना प्राप्त नहीं हो सकी है। खोज में प्राप्त इनके रीति-ग्रन्थ की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

रामप्रकाश—विषय—नायिकाभेद, रचनाकाल सं० १६४२ देखिए—ना० प्र० स० १९०६-८।२९८।

करनेस :

करनेस कवि का जन्म सं० १६११ और रचनाकाल सं० १६३७ माना जाता है। ये 'नरहरि' कवि के साथ अकवर के दरवार में आया-जाया करते थे। इनके

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १९७।
२. पीताम्वरदत्त वड़थ्वाल : हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों का पंद्रहवां त्रैवार्षिक विवरण, ना० प्र० स० १९३२-३४, भूमिका, पृ० ९-१०।
३. खोज रिपोर्ट, ना० प्र० स० १९०६-८, पृ० २९८।

अलंकार सम्बन्धी तीन ग्रन्थ कर्णाभरण, श्रुतिभूषण और भूपभूषण बताए जाते हैं।[१] खोज रिपोर्टों में इनके विषय में कोई सूचना नहीं दी गई है। करनेस नाम के दो कवियों की चर्चा कहीं-कहीं मिलती है, परन्तु दोनों के समय में लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर बताया जाता है।[२] इस कारण प्रथम करनेस का अकबर के समय में वर्तमान होना निश्चित हो जाता है।

बलभद्र :

इनका जन्मकाल सं० १६०० के लगभग माना जा सकता है।[३] ये ओड़छा के सनाढ्य पंडित काशीनाथ के पुत्र तथा आचार्य केशवदास के बड़े भाई थे। खोज रिपोर्टों में प्राप्त इनके रीति-काव्य सम्बन्धी ग्रन्थों की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

नखशिख—विषय—आलंकारिक पद्धति से नखशिख वर्णन देखिए—ना० प्र० स० १९००।१११, १९०२।४५,/१९०९-११।१५, १९२३-२५।२८, १९२६-२८।२९ ए० बी०, १९२९-३१।२३।

इस ग्रन्थ का रचनाकाल विद्वानों ने सं० १६४० माना है।[४] इस ग्रन्थ के अतिरिक्त खोज रिपोर्टों में बलभद्र कृत एक और साहित्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ 'कवित्त भाषा दूषण विचार' अन्य नाम 'भाषा काव्य प्रकाश' सूचित किया गया है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल खोज रिपोर्ट ना० प्र० स० १९०९-११।१६ में सं० १७१४ बताया गया है। परन्तु इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता अविश्वसनीय है।

लाल :

इनका समय लगभग सं० १६४० था। इनका अन्य नाम नेवजी लाल दीक्षित था। ये किसी विक्रम साहि नाम के आश्रयदाता के आश्रय में रहते थे।[५] इनकी रीतिकाल सम्बन्धी खोज रिपोर्ट में सूचित रचना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

ग्रंथ-विक्रमविलास—विषय—नायिकाभेद तथा नवरस वर्णन, रचना-काल सं० १६४०, देखिए—ना० प्र० स० १९४१-४३।२४१ क, ख सं० २००४।३५५।

इन्होंने कथा माधवानल और नाटक ऊषाहार नाम के दो और ग्रन्थों की रचना की थी।[६] ग्रन्थ में रचनाकाल इस प्रकार दिया हुआ है—

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ६५-६६।
२. वही, पृष्ठ ६६।
३. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १९८।
४. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बिहारी, पृष्ठ १८।
५. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, ना० प्र० सभा, काशी।
. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ३६५।

सोलह से चालीस में संवत अवधारु।
चेतमास शित पछ पुण्य नवीन भृगुवास ॥[१]

ताहिर :

इनका समय सं० १६५५-१६७८ के मध्य था। ये जहाँगीर के समकालीन थे। इनके गुरु का नाम अहमद था। इन्होंने कामशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की है।[२] खोज रिपोर्टों में इन ग्रन्थों की सूचना संक्षिप्तरूप में इस प्रकार है—

कोकशास्त्र—विषय—कामशास्त्र, देखिए, ना० प्र० स० २००४।१३९ क।

गुणसागर—विषय—कामशास्त्र, र० का० सं० १६७५ देखिए—ना० प्र०स० १९०६।८।२३५, १९०९-११।३१६, १९२०-२२।२ ए०, वी०सं० २००४।१३९ ख, ग।

रसविनोद--विषय—कामशास्त्र, देखिए— ना० प्र० स० १९२३-२५।५, १९४१-४३।४७३ (अप्रकाशित)।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इस कवि की अद्भुतविलास, मुक्तिविलास (हठ प्रदीपिका) तथा सामुद्रिक नाम की अन्य रचनाओं की भी सूचनाएँ दी हुई हैं।

गोपाल :

इनका समय सं० १६५७ ई० के लगभग था।[१] इनके अन्य नाम जनगोपाल, गोपाल नाथ तथा जनजगन्नाथ भी मिलते हैं। ये सन्त दादूदयाल के शिष्य थे। खोज में रीति-काव्य सम्बन्धी इनकी प्राप्त रचना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

वारहमासा—विषय—वारहमासा के माध्यम से वियोग-वर्णन देखिए ना० प्र० स० १९१२-१४।८३, सं० २००७।३६ ड।

इस ग्रन्थ के अतिरिक्त इन्होंने आध्यात्मिक अनेक ग्रन्थों की रचना की है। इनमें से 'गुरुचौबीस की लीला, जड़भरथ चरित्र, दत्तात्रेय के चौबीस गुरु, दादूदयाल जी की जन्मलीला, ध्रुव चरित्र पद, प्रहलाद चरित्र, मोहमद राजा की कथा, खोज रिपोर्टों में सूचित की गई है।

बीरबल :

ये अकबरी दरबार के प्रसिद्ध कवियों में थे। इनका वास्तविक नाम महेशदास

और उपनाम 'ब्रह्म कवि' था।[१] इनका जन्म सन् १५२८ ई० में और देहावसान सन् १५८३ ई० अर्थात् सं० १६४० में हुआ था।[२] इनके चुटकुले बहुत प्रसिद्ध हैं, अकबर के दरबार में ये श्रृंगारिक रचनाएँ करते थे। इनका काव्य-जगत् अकबरी दरबार तक ही सीमित था। 'इनकी काव्य-रचना का उद्देश्य राज्य सभा का मनोरंजन ही था। इनके कवित्त और सवैये श्रृंगाररस की सरसता से ओत-प्रोत हैं और इनके छंद कदाचित समस्या-पूर्तियों के रूप में रचे गये थे।'[३] इनकी रचना अलंकार आदि काव्यांगों से पूर्ण होती थीं।[४] खोज-रिपोर्ट में इनकी एक प्राप्त रचना की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

कबित्त संग्रह—विषय श्रृंगार, देखिए ना० प्र० स० १६२३-२५।६७।

ध्रुवदास :

इनका काव्यकाल सं० १६६०-१७०० तक माना जाता है।[५] ये राधावल्लभ सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हितहरिवंश जी के सर्वप्रसिद्ध शिष्य थे। इन्होंने अपने सम्प्रदाय सम्बन्धी बयालिस ग्रन्थों की रचना की थी। "यदि भाषा-माधुर्य, शैली-वैविध्य, छंद कुतूहल को दृष्टि में रखकर उनकी रचना पर विचार किया जाए तो वे भक्तिकालीन और रीतिकालीन कवियों को जोड़नेवाले रससिद्ध कवि-भक्त माने जाएंगे।...कहीं-कहीं तो इनकी अलंकृत रचनाएं रीतिकालीन कवियों से भी बाजी मार ले जाती हैं। हितश्रृंगार लीला, रसमुक्तावली, सभामण्डल, श्रृंगाररस आदि रचनाओं का काव्य-स्तर रीतिकालीन देव, मतिराम, पद्माकर आदि से टक्कर लेने वाला है। काव्य-रूढ़ियों का उन्हें शास्त्रीय ज्ञान था और उसी के अनुसार उन्होंने नायिकाभेद नख-शिख, बारहमासा, ऋतुवर्णन, आदि का सर्वांगीण रूप से अपने ग्रन्थों में निर्वाह किया है।"[६] इनके कुछ ग्रन्थों को तो स्पष्ट रूप से रीतिकाव्य-सम्बन्धी ग्रन्थ कहा जा सकता है। खोजरिपोर्टों के आधार पर इनकी संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

मानरसलीला—विषय—राधाकृष्ण का मान-वर्णन, देखिए ना० प्र० स० १६००।१३ (दस)।

मानविनोदलीला—विषय—राधा का मानवर्णन, देखिए ना०प्र० स० १६०६-८।१५६ सी, १६०६-११।७३ ए।

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण।
२. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ३६५।
३. वही, पृ० ३६५।
४. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १६५।
५. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १८७।
६. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ २५८।

श्रृंगारमणि—विषय—राधा का नखशिखवर्णन, देखिए—ना० प्र० स० १९४१।४३।११७ ग

श्रृंगार सतलीला—विषय—राधाकृष्ण-विहार तथा सौन्दर्य-वर्णन, देखिए—ना० प्र० स० १९००।९, १९०६-८।१५९ ई०, १९०९-११।७३ एस।

प्रिया जू की नामावली—विषय—राधा के विभिन्न नाम, र० का० सत्रहवीं शताब्दी, देखिए—ना० प्र० स० १९४१-४३।११७ ङ च-छ।

इनके प्रायः अधिकांश ग्रन्थों में रीतिकाव्य की प्रवृत्ति झलकती है।

नन्द और मुकुन्द :

उनका समय लगभग सं० १६६० था। ये दोनों सगे भाई थे और सम्मिलित एवं अलग-अलग भी रचना करते थे। नन्द का अन्य नाम अनन्द और मुकुन्द का जनमुकुन्द या मुकुन्ददास था। ये पंजाब के हिसार जिले के जगर कैंटी नामक स्थान के रहने वाले भटनागर कायस्थ थे। इनके पिता का नाम चिन्तामणि था।[1] 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' में नन्द या आनन्द को तुलसीदास का शिष्य बताया गया है।[2] इन लोगों में कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की है। खोज-रिपोर्टों में इन ग्रन्थों की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

आसनमंजरीसार—विषय—कामशास्त्र। देखिए—ना० प्र० स० १९२९-३१।११ च।

कोक (भाषा)—विषय—कामशास्त्र, र० का० सं० १६७२ (१६७५) देखिए—ना० प्र० स० १९०९-११। १८३ ए बी, १९२३-२५।२९५, १९२९-३१। २२४, सं० २००४। ३०१।

कोकसार—(इस ग्रन्थ के अन्य नाम कोकमंजरी, कोकविलास तथा मदनकोक भी हैं)—विषय—कामशास्त्र, र० का० सं० १६६०, देखिए—ना० प्र० स० १९०२। ५, १९०६-८।१२६ ए, १९१७-१९।७, १९२०-२२।६ ए बी, १९२३-२५।१३ बी से जे तक, १९२६-२८।१० ए से के तक, सं० २००१।१६ क, ख, २००४।१३ क से ङ तक, २००४।१७६, २०१०-१२।४, पंजाब खोज विवरण १९२२-२४।५ दिल्ली खोज विवरण१९३१-७। इस ग्रन्थ को दोनों कवियों ने मिलकर लिखा है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इनके इन्द्रजाल, भागवतपुराण तथा भ्रमरगीत नाम के ग्रन्थ भी खोजरिपोर्टों में मिलते हैं।

चैन :

इनका समय लगभग सं० १६६१ था। ये दादूदयाल के शिष्य थे। इनकी

---

१. हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण, ना० प्र० स०, काशी।

२. वही, भाग २, पृष्ठ १४१।

रीति काव्य-सम्बन्धी खोज रिपोर्ट में प्राप्त ग्रन्थों की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

चित्रबन्ध काव्य—विषय—चित्रकाव्य, देखिए—ना० प्र० स०, सं० २००१। १५३।

इसके अतिरिक्त 'सबद फुटकर' नाम की एक और इनकी रचना सूचित की गई है।[1]

रघुनाथ :

इनका समय लगभग सं० १६६७ था। ये सम्राट् जहाँगीर के समकालीन थे और प्रसिद्ध कवि गंग के शिष्य।[2] खोज रिपोर्टों में सूचित इनके रीति-ग्रन्थ की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

रघुनाथ-विलास—विषय—अलंकार (संस्कृत रसमंजरी का अनुवाद) देखिए—ना० प्र० स० १९०६-८।३१०, पंजाब खोज विवरण १९२२-२४।८७।

रसमंजरी—विषय—नायिकाभेद (संस्कृत रसमंजरी का अनुवाद) देखिए—ना० प्र० स० १९२६-२८।३६७, सं०२००१।३१४

मोहन :

इनका उपनाम 'सहजसनेही' था। ये बादशाह जहांगीर के आश्रित 'कवि' थे। इनका समय लगभग सं० १६६७ था। ये मथुरा के रहने वाले थे।[3] इनकी शृंगारिक रचनाओं की सूचना खोज रिपोर्टों में दी गई है, संक्षिप्त रूप में जो इस प्रकार है—

कल्लोल केलि—विषय—संयोग शृंगार, देखिए—ना० प्र० स० १९१७-१९। ११२, सं० २००१-३।३०७ ख।

मोहन हुलास—विषय—शृंगार—ना० प्र० स० २००१-३।३०७ ग। इन रचनाओं के अतिरिक्त इनकी अष्टाचक्र तथा आनंदलहरी नामक दो और आध्यात्मिक रचनाओं की सूचना दी गई है।

मुबारक :

इनका जन्मकाल सं० १६४० और काव्य-काल सं०१६७० के लगभग माना जाता है।[4] 'इनका पूरा नाम सैयद मुबारक अली बिलग्रामी था। ये संस्कृत, फारसी और अरबी के अच्छे विद्वान् थे। कहा जाता है कि नायिका के केवल दस अंगों को

---

१. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, ना० प्र० स०, काशी।

२. खोज रिपोर्ट, ना० प्र० स० १९०६-८, पृष्ठ ३१०।

३. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, ना० प्र० स०।

४. क—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २१३।
ख—हिन्दी-साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ४२५।

लेकर एक-एक अंग पर इन्होंने सौ-सौ दोहों की रचना की थी। इन दोहों के अतिरिक्त इन्होंने फुटकल कवित्त एवं सवैयों की भी रचना की थी।[1] इनके प्राप्त शृंगार-रस ग्रन्थ अलक शतक और तिलकशतक माने जाते हैं। इन दोनों ग्रन्थों का प्रकाशन सन् १८९१ ई० में भारत जीवन प्रेस, वाराणसी से हुआ है। ना० प्र० स० की खोज रिपोर्टों में इनके ग्रन्थों की सूचना अप्राप्त है।

शार्ङ्गधर :

खोज-रिपोर्ट में सूचित इनके रीति-ग्रन्थ की प्रतिलिपि सं० १६७२ की प्रति से की गई है। इस आधार पर इनका समय सं० १६७२ के पूर्व ही हो सकता है। इनकी रचना की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

भावशतक—विषय—शृंगार वर्णन, लिपिकाल सं० १६७२, देखिए—हस्त-लिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, ना० प्र० स० काशी।

अज्ञात नाम कवि :

एक नवरस वर्णन नाम की रचना की सूचना खोज रिपोर्टों में मिली है जिसका लिपिकाल सं० १६७२ है।[2] इस आधार पर निःसन्देह यह रीतिकाव्य की रचना भक्तिकाल के अन्तर्गत लिखी गई होगी। इसकी संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

नवरस वर्णन—विषय—रसवर्णन तथा कृष्ण चरित्र, लिपि-काल सं० १६७२ देखिए—ना० प्र० स०, १९३८-४०।१८८।

केशवदास :

हिन्दी रीतिकाव्य के सर्वप्रसिद्ध आचार्य कवि केशवदास का समय सत्रहवीं शताब्दी का मध्यकाल था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनका जन्म एवं मृत्युकाल क्रमशः सं० १६१२ और १६७४ माना है। इतने प्रसिद्ध भक्तिकालीन रीतिकवि के विषय में यहाँ कुछ भी विशेष नहीं कहा जा सकता है। इनके ग्रंथों का प्रकाशन भी हो चुका है और उन पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है। इनकी रीतिबद्ध रचनाएँ कविप्रिया और रसिकप्रिया हैं। कविप्रिया में कवियों को कविता करने की शिक्षा दी गई है और रसिकप्रिया में नायक-नायिकाभेद लिखा गया है। ये रचनाएं अलग-अलग एवं ग्रंथावली के रूप में भी प्रकाशित की जा चुकी हैं। ये भक्तिकालीन हिन्दी रीतिकाव्य के सर्वविदित ग्रंथ हैं। खोज-रिपोर्टों में इन ग्रन्थों की सूचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

कविप्रिया—विषय—कविशिक्षा, रचना-काल सं० १६५८, ना० प्र० स०

---

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ४२५।

२. खोज रिपोर्ट—ना० प्र० स० १९३८-४०, पृष्ठ १८८।

१९००।५२, १९१७-१९।६६ सी, १९२०-२२।८२, बी १९२३-२५।२०७ ए, बी, सी, १९२६-२८।२३३ बी सी डी, १९२९-३१।१९२ डी ई, १९४१-४३।४८३ (अप्रकाशित)।

रसिक प्रिया—विषय—नायकनायिकाभेद, रचनाकाल—सं० १६४८, देखिए—ना० प्र० स० १९०३।८९, १९१७-१९।९६ ए बी, १९२०-२२।८२ सी, १९२३-२५। २०७ आइ, १९२६-२८।२३३ एफ जी, १९२९-३१।१९२ एफ, १९४१-४३।४८५ क ख (अप्रकाशित), सं० २०१०।१७ क, पंजाब खोज विवरण, १९२०-२४।५४ ए

इनके अतिरिक्त इस कवि के रामचन्द्रिका, जहांगीरजसचन्द्रिका, रतनबावनी, विज्ञानगीता, विवेकदीपिका, वीरसिंहदेव चरित्र नाम के ग्रंथ सर्वप्रसिद्ध हैं।[1] इनकी प्रकाशित रचनाओं तथा उन पर लिखी विवेचनाओं के अतिरिक्त यहाँ कुछ नहीं कहा जा सकता है।

निधान :

इनके रीति ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १६७४ वि० था। इनको किसी राजा जसवन्त सिंह के आश्रित बताया गया है जो समय की दृष्टि से ठीक नहीं जान पड़ता है।[2] खोज में प्राप्त इनके रीतिकाव्य-सम्बन्धी ग्रन्थ की संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

जसवंतविलास—विषय—नायकनायिकाभेद, रचनाकाल, सं० १६७४ वि० देखिए—ना० प्र० स० १९१२-१४।१२३।

विप्र :

इनका समय लगभग सं० १६७५ वि० था। ये जहाँगीर के समकालीन थे। इनके विषय में और कोई सूचना प्राप्त नहीं है। इनका यह नाम अनुमान के आधार पर ही माना गया है।[3] इन्होंने कोकशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा है जिसकी संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

कोकशास्त्र—विषय—कामशास्त्र, र० का० सं० १६७५, देखिए ना० प्र० स० २००४।२६३।

लीलाधर :

इनका रचनाकाल लगभग सं० १६७६ माना जाता है।[4] इनकी रीति काव्य-

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ १९९।
२. खोज रिपोर्ट, ना० प्र० स० १९१२-१४।१२३।
३. हिन्दी हस्तलिखित ग्रन्थों का संक्षिप्त विवरण, ना० प्र० स०, काशी।
४. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : विहारी, पृ० १८।

सम्बन्धी रचना नखशिख है।[1] ये जोधपुर के महाराज गर्जसिंह के आश्रित कवि थे। सूदन तथा भिखारीदास ने अपनी कवि सूचियों में इनको सम्मिलित किया है।[2] खोज-रिपोर्टों में इनके ग्रन्थों की सूचना अप्राप्त है।

रतनेश :

ये बुन्देलखण्ड के रहनेवाले थे। मिश्रबन्धुओं ने इनका समय सन् १६२१ ई० अर्थात् सं० १६७८ माना है।[3] इनकी नायिकाभेद सम्बन्धी पुस्तक खोजरिपोर्ट में सूचित की गई है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

कांताभूषण—विषय—नायकनायिकाभेद, पत्र—१० छंद १८०, लि० का० सं०१८७१ या सन् १८१४ ई०, देखिए ना० प्र० स० १९२०-२२।१६५।

व्रजपति भट्ट :

इनका जन्म सं० १६६० में हुआ था और अपने रीति-ग्रंथ रंगभाव माधुरी की रचना इन्होंने संभवतः सं० १६८० अर्थात् सन् १६२३ ई० में की थी। इनके पिता का नाम हरिदेव भट्ट था।[4] मिश्रबन्धुविनोद में संख्या दो सौ चौहत्तर पर इनकी सूचना दी हुई है। इनके खोजरिपोर्ट में सूचित रीति-ग्रन्थ का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

रंगभाव माधुरी—विषय—रस, नायिकाभेद, पट्ऋतु आदि वर्णन, रचना-काल सं० १६८०, देखिए ना० प्र० स० १९१२-१४।३३।

नोट—यह एक विशालकाय एक सौ सात पत्रों तथा तेरह सौ चौंतीस छन्दों का रीति-ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल कवि के जीवन-परिचय के साथ दिया हुआ है।

केशवदास चारण :

इनका समय लगभग सं० १६८१ था। ये मेवाड़ नरेश महाराजा गजसिंह के आश्रित कवि थे। खोज रिपोर्ट में इनकी प्राप्त रचना की सूचना इस प्रकार है।[5]

घासीराम :

इनका जन्म हरदोई के मल्लावाँ नामक स्थान में एक ब्राह्मण परिवार में

---

१ आचार्य विश्वनाथ प्रसाद 'मिश्र' : बिहारी, पृष्ठ १८।
२. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ५२१।
३. हिन्दी हस्तलिखित पुस्तकों की खोज का ग्यारहवां विवरण, १९२०-२२ पृ०१६५।
४. वही, १९१२-१४, पृ० ३३
५. वही, १९०२।२०।

सं० १६२३ में हुआ था और ये सं० १६८२ तक वर्तमान रहे।[१] 'शिवसिंह सरोज तथा दिग्विजय भूषण में उद्धृत इनके छन्दों से जान पड़ता है कि इन्होंने नखशिख नायिका-भेद तथा अलंकार जैसे विषय पर रचना की है। इनके काव्य में आलंकारिक चमत्कार विशेष रूप से परिलक्षित होता है।[२] इनकी पक्षी विलास नामक प्राप्त रचना अन्योक्तिपरक है। इसमें नायिकाभेद तथा श्रृंगाररस के साथ-साथ किसी पक्षी का भी बड़ी चतुराई के साथ वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ की कलात्मकता प्रशंसनीय है। खोज रिपोर्टों में सूचित इसकी संक्षिप्त सूचना इस प्रकार है—

पक्षीविलास—विषय—श्रृंगार, नायिका भेद तथा पक्षी-वर्णन, देखिए—ना० प्र० स० १९०९-११।९१, १९२३-२५।१२२, १९२६-२८।१३६६, सं० २००४।८७।

नोट—ग्रंथ का रचनाकाल सं० १६८० माना जाता है।[३]

अब्दुर्रहीम खानखाना :

अकबरी दरबार के सर्वप्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म सं० १६१० ई० में हुआ था और मृत्यु सन् १६२६ ई० अर्थात् सं० १६८३ में हुई।[४] ये हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं।

रहीम की रीतिकाव्य सम्बन्धी रचना बरवै नायिकाभेद है जिसमें बरवै छंद एवं सरल भाषा में नायिकाभेद वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाओं में भी श्रृंगार की मार्मिक उक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इनमें 'मदनाष्टक' की श्रृंगारिकता बहुत ही उच्चकोटि की है।

रहीम की रचनाओं के अनेक संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जो इस प्रकार हैं—

१—रहीम रत्नावली, संपादक मायाशंकर याज्ञिक, सन् १९२८ ई०।

२—रहीम विलास, संपादक ब्रजरत्नदास, सन् १९४८ ई०।

३—रहीम कवितावली, संपा० सुरेन्द्रनाथ तिवारी।

४—रहीम, संपादक, रामनरेश त्रिपाठी।

५—रहिमन विनोद, संपा० हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

---

१. खोज रिपोर्ट १९०९-११, पृ० ९१।

२. हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ १५६।

३. वही, पृष्ठ १५६।

४. क—रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २१०-१२।
 ख—हिन्दी साहित्य कोश, भाग २, पृष्ठ ४५४-५५।
 ग—खोज रिपोर्ट, १९०९-११, १९२०-२२, पृष्ठ १४०।

सुन्दर शृंगार—विषय—नायिकाभेद, रचनाकाल सं० १६८८, देखिए—ना० प्र० स० १६००।१०६, १६०२।३, १६०६-८।२४१ ए० १६१७-१६।१८४, १६२०-२२।१८८ ए० बी० सी०, १६२६-२८।४६६ बी० सी०, दिल्ली खोज विवरण १६३१।८७।

इनके अतिरिक्त 'सिंहासन बत्तीसी' नाम का भी इनका एक ग्रन्थ बताया जाता है।[1]

कुछ भक्तिकालीन रीतिकवियों के विषय में नाम के अतिरिक्त शेष सूचनाएँ इतिहास-ग्रन्थों तथा खोज-रिपोर्टों से प्राप्त नहीं हो सकी हैं। उनकी नामावली इस प्रकार है—

कविनाम	ग्रन्थनाम	रचनाकाल
मोहनदास	बारहमासा	सं० १६५०
बालकृष्ण	रसचन्द्रिका या रामचन्द्रप्रिया	सं० १६७५
गोप	अलंकारचन्द्रिका	सं० १६७०[2]
गंगा प्रसाद	(अज्ञात नाम कोई रीति ग्रन्थ)	सं० १६२०[3]

इन रीति कवियों के अतिरिक्त भक्तिकाल के अन्तर्गत कुछ ऐसे कवियों को भी पाया जाता है जिन्हें रीति परम्परा में स्वच्छन्द कवि कहा गया है। ये कवि आलम और रसखान हैं।[4] इन कवियों ने भी शृंगार की अभिव्यंजना की है, परन्तु अपनी प्रेम की पीड़ा में मतवाले होकर इन्होंने अपनी व्यथा व्यक्त की है। किसी भी प्रकार के साँचे में अपने भावों को ढालने का बिल्कुल प्रयास इन्होंने नहीं किया है। इसी कारण इनकी उक्तियाँ अत्यधिक मार्मिक होती गई हैं। विद्वानों ने इन्हें रीतिकाव्य की स्वच्छन्दधारा का कवि इसी कारण कहा है।

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २२०।
२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ६, पृष्ठ १६७।
३. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र : बिहारी, पृष्ठ १८।
४. वही, पृष्ठ १९।

षष्ठ अध्याय

सेनापति

परिचय :

सेनापति के जीवन के सम्बन्ध में अभी तक अत्यल्प जानकारी प्राप्त हो सकी है। इनके जीवन-मरण-सम्बन्धी सूचनाएँ अनुमान के आधार पर दी गई हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनका जन्मकाल सं० १६४६ के आसपास माना है।[1] नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा प्रकाशित खोज रिपोर्टों के आधार पर यह समय सं० १६८४ माना गया है।[2] अन्य विद्वानों ने भी इन दोनों के बीच का ही समय माना है जो अनुमानों के आधार पर है। इन विकट परिस्थितियों तथा सामग्री के अभाव में निश्चयपूर्वक कुछ कहना दुस्साहस जान पड़ता है।

सेनापति के 'कवित्तरत्नाकर' के एक पद के आधार पर इनकी यह रचना संवत् १७०६ की लिखी हुई है।[3] ग्रन्थ के रचनाकाल के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि कवि इस समय तक पूर्ण प्रौढ़ हो चुका था। यह उसकी अन्तिम कृति है। इसके बाद की किसी रचना का पता नहीं है। इसलिए इतना तो दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त तक ये वर्तमान थे और यही उनका कविताकाल भी हो सकता है।

कवि के वास्तविक नाम के विषय में भी निश्चित मत प्राप्त नहीं हो सके हैं। विश्वसनीय प्रमाणों के अभाव में यही स्वीकार करना पड़ता है कि सेनापति ही इनका वास्तविक नाम था। कवि-परम्परा के आधार पर इसी तथ्य को सत्य माना भी जा सकता है। कुछ लोगों ने 'सेनापति' कवि का उपनाम माना है परन्तु उपनाम जोड़ने की प्रणाली उस युग के हिन्दुओं में नहीं थी। 'कविताओं में उपनाम (तखल्लुस) संयुक्त करने की शैली यवन शैली है। सूर, तुलसी, केशव, बिहारी ये

लोग अपने नाम के अर्द्धभाग को ही ग्रहण करते थे, उपनाम को नहीं।' अतः सेनापति कवि का वास्तविक नाम जान पड़ता है।[1]

सेनापति ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में जो कुछ लिखा है उसी को आधार माना जा सकता है। अपने विषय में कवि ने लिखा है कि—

> **दीछित परसराम, दादौ है विदित नाम,**
> **जिन कीने जज्ञ, जाकी जग मैं बड़ाई है।**
> **गंगाधर पिता, गंगाधर की समान जाकौं,**
> **गंगातीर बसति अनूप जिन पाई है।**
> **महा जानि मनि, बिद्यादान हू कौं चिंता मनि,**
> **हीरामनि दीछित तैं पाई पण्डिताई है।**
> **सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी**
> **सब कबि कान दै सुनत कबिताई है।।[2]**

इस आधार पर कवि के पिता का नाम गंगाधर, पितामह का नाम परशुराम दीक्षित तथा गुरु का नाम हीरामणि दीक्षित था। अनूप शहर इनका निवास-स्थान था। अनूप शहर को सेनापति का निवासस्थान मानने में विद्वानों ने संकोच प्रकट किया है।[3] अनूप शहर का पुराना सम्बन्ध जहाँगीर के शासन-काल के अनूप सिंह बड़गूजर से है। सन् १६१० ई० में अपूर्व साहस एवं धैर्य के साथ अनूप सिंह ने एक चीते का सामना करके जहाँगीर की प्राणरक्षा की थी जिसके फलस्वरूप जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उन्हें अनूप शहर का परगना पुरस्कार स्वरूप दिया था।[4] तभी से यह क्षेत्र उनके वंशजों के अधिकार में था। फिर भी अभी तक सेनापति के निवासस्थान के विषय में किसी दूसरे निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा गया है। अतएव अनूप शहर को ही उनका निवासस्थान मानकर रास्ता आगे बढ़ाना पड़ा है।

सेनापति एक वैष्णव भक्त थे। जीवन से उन्होंने संन्यास ले लिया था। इसी कारण भक्तिकाव्य की रचनाएँ उन्होंने प्रस्तुत की हैं। भक्ति के क्षेत्र में उन्हें गोस्वामी तुलसीदास की परम्परा में माना जाना चाहिए। तुलसी की ही भाँति किसी भी धर्म का विरोध न करते हुए उन्होंने राम के प्रति अपनी अगाध भक्ति दिखाई है और शिव तथा गंगा के प्रति भी अपनी श्रद्धा प्रकट की है। इसी भावना के कारण उन्होंने वाराणसी आने की अभिलाषा प्रकट करते हुए कहा है कि—

---

१. भद्रदत्त शर्मा शास्त्री, सरस्वती पत्रिका, सन् १६५८ ई०, पृ० १७५।
२. कवित्त रत्नाकर : सम्पादक डा० उमाशंकर शुक्ल, १।५।
३. उमाशंकर शुक्ल : कवित्त रत्नाकर, भूमिका, पृ० २।
४. बुलन्दशहर गजेटियर, पृ० १४८।

पढ़ी और विद्या, गई छूटि न अविद्या, जान्यौ
अच्छर न एक, घोख्यौ कँयौ तन मन है।
तातैं कौ जै गुरु जाइ जगत-गुरु कौं, जातैं
ज्ञान पाइ जीउ होत चिदानन्द घन है।
मिटत है काम-क्रोध, ऐसौ उपजत बोध,
सेनापति कीनौ सोध, कह्यौ निगमन है।
वारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ
संकर तैं राम-नाम पढ़िवे कौं मन है॥[1]

इससे जीवन के प्रति कवि की विरक्ति की भावना का आभास मिलता है। इनकी विरक्त-भावना का संकेत शिवसिंह सेंगर ने भी किया है। उन्होंने लिखा है कि "सेनापति ने बाद में वृन्दावन में क्षेत्र-संन्यास ले लिया था और सारी वयस उन्होंने वहीं बिताई। इनके काव्य की प्रशंसा हम कहाँ तक करें, अपने समय के भानु थे। इनका 'काव्यकल्पद्रुम' ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर है।"[2] इससे ज्ञात होता है कि वृन्दावन से ही वाराणसी आने की अभिलाषा कवि ने व्यक्त की है। भक्ति के क्षेत्र में किसी एक सम्प्रदाय के अन्तर्गत इन्होंने अपने को सीमित भी नहीं रखा है।

कुछ विद्वानों ने भट्टनागेश दीक्षित और सेनापति के ऐक्य की सम्भावना करके दोनों को एक सिद्ध करने का प्रयास किया है।[3] इन लोगों ने दोनों के समय, परिस्थितियाँ, रचनाएँ एवं ज्ञानादि की एकता पर अधिक बल दिया है, परन्तु कोई ठोस आधार इसके लिए प्रस्तुत नहीं किया है। जिन आधारों पर दोनों की एकता सिद्ध की गई है वे उस युग की विशेषताएँ हैं जो प्रायः अनेक कवियों में मिल जाती हैं। अतः इन दोनों को एक मानना विवादास्पद ही है।

सेनापति स्वभाव के स्वाभिमानी जान पड़ते हैं। अपने समय के कवियों की प्रवृत्तियों से परिचित होकर उन्होंने अपने काव्य को सुरक्षित रखने की याचना की थी। किसी राजा को कवित्त रत्नाकर समर्पित करते समय उन्होंने कहा था कि—

बानी सौं सहित सुबरन मुँह रहै जहाँ
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
संख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं
राखी मति ऊपर सरस ऐसे साज कौं।
सुनौ महाजन चोरी होति चारि चरन की
तातैं सेनापति कहै तजि करि ब्याज कौं।

लीजियौ बचाई ज्यौं चुरावै नहि कोई सौंपी
बित्त की सो थाती मैं कवित्तन की राज कौ ॥[1]

इससे स्पष्ट है कि उस युग में कविता के भाव ही नहीं पूरे छन्द चुरा लिए जाते थे। इसी से चिंतित होकर कवि ने यह उक्ति कही है।

अपने काव्य के विषय में गर्वोक्ति भी कवि ने की है। इनको विश्वास है कि मेरा काव्य तेज बुद्धि वालों के लिए सदैव सरल सिद्ध होगा। मूर्खों के लिए वह अगम्य बन सकता है चाहे वह अभंग पद श्लेष हो या सभंग पद। ज्ञानी तथा छन्दःशास्त्र के विद्वानों के लिए वह सदैव ग्राह्य होगा—

मूढ़न कौ अगम, सुगम एक ताकौं, जाकी
तीछन अमल बिधि बुद्धि है अथाह की।
कोई है अभंग, कोई पद है सभंग, सोधि
देखैं सब अंग, सम सुधा के प्रवाह की।
ज्ञान के निधान, छन्द कोष सावधान, जाकी
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति कौ, सेनापति कवि सोई,
जाकी द्वै अरथ कबिताई निरवाह की ॥[2]

इसी प्रकार आगे के कई छन्दों में कवि ने अपनी काव्यकला की सराहना की है। उसके कथनानुसार उसमें अलंकार तो हैं ही अनुपम रस-ध्वनि भी वर्तमान है तथा पिंगल के सभी लक्षणों से परिपूर्ण है।[3] इस प्रकार की गर्वोक्तियों का कारण कवि की विद्वत्ता थी जिस पर उसे अटूट विश्वास था।

सेनापति का सम्बन्ध कुछ समय के लिए मुसलमानी दरबारों से भी था। किसी कारण से कवि को उनकी दासता से विरक्ति हो गई थी जिसका उल्लेख उनकी कविताओं में मिलता है। दरबारी प्रकृति से विरक्त भावनाओं का संकेत करते हुए वह कहता है—

केती करौ कोई पैयें करम लिख्यौई, तातें
दूसरी न कोई, उर सोई ठहराइयें।
आधी तें सरस गई बीति कै बरस, अब
दुज्जन-दरस-बीच न रस बढ़ाइयें।
चिंता अनुचित तजि, धीरज उचित
सेनापति ह्वै सुचित राजाराम जसगाइयै।

१. कवित्त रत्नाकर, १।१०।
२. वही, १।६।
३. वही, १।७, ८, ९।

चारि वरदानि तजि, पाइ कमलेच्छन के,
पाइक मलेच्छन के काहे कौं कहाइयै ॥[1]

आधी उम्र बीत जाने पर कवि अपने को दासता के सम्बन्धों से दूर रखना चाहता है। जान पड़ता है कि वह इनसे ऊब गया था इसीलिए भाग्य पर अवलंबित होकर इन सम्बन्धों से हटना चाहता है।

कवित्त रत्नाकर में एक स्थल पर सूर्यवली नाम के राजा की कवि ने प्रशंसा की है जो इस प्रकार है—

सूरवली वीर जसुमति कौं उज्यारौ लाल
चित्त कौ करत चैन वैनहि सुनाइ कै।
सेनापति सदा सुर मनी कौं वसीकरन
पूरन कर्‌यौ है काम सव कौं सहाइ कै।
नगन सघन धरै गाइन कौं मुख करै
एसौ तैं अचल छत्र धर्‌यौ है उचाइ कै।
नीके निज व्रज गिरिधर जिमि महाराज
राख्यौ है मुसलमान धार तैं वचाइ कै ॥[2]

इस प्रशंसा के अतिरिक्त इस नाम का और कोई छन्द उपलब्ध नहीं है। कहीं-कहीं राजसी ठाठ-वाट का वर्णन हुआ है परन्तु उन स्थलों पर सूर्यवली नाम नहीं आया है। वहुत सम्भव है कि ये व्रज प्रदेश के ही शासक थे और संन्यास लेने के वाद कवि ने उनकी प्रशंसा की है।

रत्नाकर में कवि ने स्वयं बतला दिया है।[1] किसी राजा को पूरा ग्रन्थ समर्पित करते समय कवि ने उसकी अच्छाइयों की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया है। यह तथ्य ज्ञात नहीं हो सका है कि वे महाराजा कौन थे।

सेनापति का समय भक्ति एवं रीतिकाल के सन्धिस्थल पर पड़ता है इसलिए दोनों कालों की प्रवृत्तियों का इनमें पाया जाना स्वाभाविक है। रीतिकाव्य उस समय विकसित हो रहा था और भक्तिकाव्य शिथिल। इसलिए रीति काव्य का ही प्रत्यक्ष स्वरूप सेनापति के काव्य में देखा जा सकता है। उनमें रीति की प्रवृत्तियाँ अधिक उभर कर सामने आई हैं परन्तु भक्ति तत्त्व शान्त है। कहीं-कहीं इनके भक्ति तत्त्व पर भी रीति काव्य छाया हुआ है। कवित्त-रत्नाकर की पाँचवीं तरंग में अन्य अलंकारों के अतिरिक्त चित्रालंकारों की योजना इसी प्रवृत्ति के कारण हुई है।

सेनापति में रीतिकाव्य की प्रवृत्तियाँ

संयोग-शृंगार वर्णन :

सेनापति का संयोग शृंगार-वर्णन भावात्मकता एवं कलात्मकता से परिपूर्ण है। कोई पक्ष इनमें किसी से कम नहीं है। इसका कारण यह है कि भावुक कवि जब रीति के प्रवाह में पड़ा तो उसमें दोनों पक्षों का समान रूप से पाया जाना स्वाभाविक हो गया। इसी कारण इनकी कविताएँ अत्यन्त उच्च कोटि की बन पड़ी हैं। इनकी कृति में भाव-भागीरथी एवं कला-कालिंदी का संयोग साहित्य की अनुपम घटना है। इनके पदों में ये दोनों तत्त्व झलकते दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ—एक नायिका के नेत्रों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अंजन सुरंग जीते खंजन कुरंग, मनि,
नैक न कमल उपमा कौ नियरात है।
नीके अनियारे अति चपल ढरारे, प्यारे,
ज्यौं ज्यौं निहारे त्यौं त्यौं खरी ललचात है।
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं,
जिनकौ निरखि हियौ हरषि सिरात है।
कान लौं बिसाल, काम भूप के रसाल, बाल
तेरे दृग देखे मेरौ मन न अघात है॥[2]

अनुप्रास की मधुर योजना के साथ शृंगार का गाढ़ा पुट इन पंक्तियों से झाँक रहा है। नायक की तरल पिपासा अभिव्यक्त हो रही है। 'मेरौ मन न अघात है' के द्वारा नायक की अतृप्त भावना व्यक्त हो रही है जिससे उसका आकर्षण उत्तरोत्तर

---

१. कवित्त रत्नाकर, ?।१० ।
२. सेनापति : कवित्त रत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, २।१ ।

बढ़ता ही गया है। शृंगार और अलंकार दोनों का नीर-क्षीर सामंजस्य इस पद में उपस्थित किया गया है।

शृंगार के क्षेत्र में लुका-छिपी के महत्त्व को सेनापति ने भी स्वीकार किया है। परकीया नायिकाओं का प्रेम इसी में सन्निहित रहता है। सेनापति ऐसी उक्तियों के चित्रण से चूके नहीं हैं। अवसर मिलने पर उनका सुन्दर उपयोग किया है। गुरुजनों के मध्य प्रेमियों की प्रेम-वार्ता सम्भव नहीं है। इसके लिए प्रेमीजन अपना अवसर निकाल लेते हैं। सेनापति की एक नायिका का ऐसा ही चित्रण देखिए—

सखी सुख-दैन स्यामसुन्दर कमल नैन,
मिस कै सुनाए बैन देखि गुरुजन मैं।
सेनापति प्रीतम की सुनत सुधा सी वानी,
उठि धाई बाम, धाम काम छांडि छन मैं।
छवि की सी छटा स्याम घन की सी घटा आई
झांकी चढ़ि अटा, पगी जोवन मदन मैं।
वे जु सीस वसन सुधारिबे कौं मिस करि,
कीनी पाइलागनी सौ लागि रह्यौ मन मैं॥[1]

नायिका ने प्रिय की वाणी सुनने और उसका दर्शन करने के लिए अटारी पर पदार्पण किया जिससे दोनों में प्रणाम हो सका। उसकी यही क्रिया नायक के हृदय में काँटे की तरह चुभ रही है। गुरुजनों की मर्यादा का ध्यान रख कर प्रेमप्रवाह को निरन्तर चलाते रहना भारतीय शिष्टता का द्योतक है। समाज की मर्यादा का इससे भी बड़ा उदाहरण सेनापति के संयोग शृंगार में वर्तमान है। नायक ने रस के वशीभूत होकर नायिका के पाँवों में महावर लगाने का यत्न किया परन्तु उसके इस कार्य को अनुचित कहकर नायिका ने वर्जित कर दिया—

फूलन सौं बलि की बनाइ गुही बेनी लाल,
भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाइ ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है।
ह्वै कै रस बस जब दीबे कौं महावर कै
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है।
चूमी हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं
कही प्राननाथ यह अति अनुचित है॥[2]

चाहा परन्तु रस के इस अवसर पर भी नायिका को भारतीय मर्यादा ने विचलित नहीं होने दिया। इस प्रकार के मर्यादापूर्ण शृंगार की योजना रीतिकालीन कवियों में कम ही मिलेगी। ऐसी मनोवृत्ति सेनापति में प्रधान रूप में पाई जाती है।

संयोग शृंगार के अन्तर्गत सीता और राम के जुआ खेलने की स्थिति का अद्भुत चित्रण सेनापति ने किया है। खेल के समय दोनों के प्रतिबिम्ब आभूषण के हीरों में पड़कर दिखाई देने लगे जिसको देखकर नव-दम्पती आत्मविभोर हो गए। दोनों के नेत्र उन्हीं की छाया पर जा लगे जिससे दोनों विस्मृत हो उठे।

सीता अरु राम, जुवा खेलत जनक-धाम,
सेनापति देखि नैंन नैकहू न मटके।
रूप देखि रानी, बारि फेरि पियैं पानी,
प्रीति सौं बलाइ लेत कैधौ कर चटके।
पहुँची के हीरन मैं दम्पति की झांई परी
चन्द बिबि मानौं मध्य मुकुर निकट के।
भूलि गयौ खेल दोऊ देखत परसपर,
दुहुन के दृग प्रतिबिंबन सौं अटके॥[1]

यह नव-दम्पती एक-दूसरे के अनुपम स्वरूप पर रीझे हुए थे। क्षीरसागर में इनके आनन्द विहार की अनुपम शोभा का भी कवि ने वर्णन किया है—

आनन्द मगन चन्द महा मनि मन्दिर मैं,
रमैं सियराम सुख, सीमा है सिंगार की।
भौन के गरभ छबि छीर की छिटकि रही,
बिबिध रतन जोति अंबर अपार की।
दोऊ बिहसत बिलसत सुख सेनापति,
सुरति करत छीर सागर बिहार की॥[2]

वस्तुतः इन प्रेमियों की रूप-छटा तथा आनन्द विहार का चित्रण करके कवि को कभी सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ। उनकी जो मूर्ति कवि के मानस में वर्तमान थी उसको वह व्यक्त करना चाहता था। इसी कारण अनेक प्रकार से अनेक पदों में कवि ने उनका शृंगारिक रूप चित्रित किया है।[3]

सेनापति ने संयोग शृंगार का कोई कोना अपनी अभिव्यक्ति से छोड़ा नहीं है। नायिका के आलिंगित सुख का वर्णन भी इन्होंने रूपकात्मक ढंग से किया है।[4]

---

१. कवित्त रत्नाकर, ४।२० ।
२. वही, ४।२१ ।
३. वही, ४।१७-१६ ।
४. वही, ३।५८ ।

पदों में आना स्वाभाविक हो गया है। इसीलिए वियोग-वर्णन में प्रवास-वर्णन अधिक हुए हैं। फिर भी अन्य प्रकार के विशेष वर्णन भी इनमें पाये जाते हैं चाहे उनकी मात्रा भले ही कम हो। वियोग के क्षेत्र में पूर्वराग वर्णन की मात्रा इसी कारण कम है। जो वर्णन प्राप्त हैं उनमें भावात्मकता की कमी नहीं है। उदाहरण के लिए कवित्त रत्नाकर का एक पद देखिये—

नन्द के कुमार मार हू तैं सुकुमार, ठाढ़े
हुते निज द्वार, प्रीति-रीति परवीन हैं।
निकसि हौं आई, देखि रही सकुचाइ, सेना-
पति जदुराई मोहिं देखि हँसि दीन हैं।
तब तैं है छीन छवि, देखिबे कौं दीन, सब
सुधि-बुधि हीन हम निपट अधीन हैं।
बिरह मलीन, चैन पावत अली न, मन
मेरौ हरि लीन तातैं सदा हरि लीन हैं॥[1]

नायिका ने नायक का दर्शन कर लिया जिसका फल यह हुआ कि उसका मन ही हर लिया गया। नायिका को देखकर नायक का हँसना इसका कारण है। नायक के प्रत्यक्ष दर्शन ने नायिका को विरह-विह्वल बना दिया। किसी को देखकर प्रेमपूर्वक उसके लिये हँसना विशेष प्रभावशाली होता है। कवि ने नायक की इस क्रिया का सुन्दर वर्णन अनेक पदों में किया है।[2] नायक की रूपमाधुरी नायिका को इतना अधिक प्रभावित किए हुए है कि इसके दर्शन मात्र के लिये वह सदैव तरसती रहती है। सीधी-सादी भाषा में इसका करुण क्रन्दन देखिये—

रूप कै रिझावत हौ, किन्नर ज्यों गावत हौ,
सुधा बरसावत हौ लोयन स्रवन कौं।
हिय सियरावत हौ, जियहू तैं भावत हौ,
गिरिधर ज्यावत हौ वर-वधू जन कौं।
रसिक कहावत हौ, यामैं कहा पावत हौ,
चेटक लगावत हौ सेनापति मन कौं।
चितहिं चुरावत हौ, कबहूं न आवत हौ,
लाल तरसावत हौ हमैं दरसन कौं॥[3]

नायक की रूप-माधुरी तथा उसकी मधुरवंशी नेत्रों तथा कानों के लिये सुधा बरसाती रहती हैं। मानो उनको चेटक लगाने की शक्ति प्राप्त हो गई है। नायिका

१. कवित्त रत्नाकर, २।१३।
२. वही, २।१४, १५।३।
३. वही, २।१७।

के मन को चुरा लेने पर दर्शन न देना तथा उसकी आत्मा को तरसाना अधिक कष्ट-कर है। इसीलिये वह हैरान है।

मान-वर्णन :

सेनापति ने मान का अच्छा वर्णन किया है। लघु और गुरु दोनों प्रकार के मान का चित्रण इन्होंने किया है, परन्तु मध्य मान का वर्णन नहीं किया है। संभवतः भावावेश के कारण ऐसा हुआ है। लघु मान के वर्णन में नायक के अपराधसूचक सभी लक्षणों को देखकर भी इनकी नायिका मात्र यही कहती है कि दर्पण में अपना मुख क्यों नहीं देखते हो—

> आए परभात सकुचात, अलसात गात,
> जाउक तिलक लाल भाल पर लेखियै।
> सेनापति मानिनी के रहे रति मानिनी के,
> ताही तैं अधर रेख अंजन की रेखियै।
> सुख रस भीने, प्रानप्यारी बस कीने पिय,
> चिन्ह ए नवीने परतछ्छ अछ्छ पेखियै।
> होत कहा नींदे, एतौ रैनि के उनींदे अति,
> आरसीलै नैंना आरसी लै क्यों न देखियै॥[1]

नायक को परतियगामी जानकर भी नायिका का कुछ न कहना उसके पतिव्रत धर्म का परिचायक है। व्यंजना के द्वारा केवल दर्पण देखने को वह कहती है। आगे नायिका का मधुर व्यंग्य भी दर्शनीय है। नायक से वह कहती है—

> नीके रमनी के उर लागे नख-छत, अरु
> घूमत नयन, सब रजनि जगाए हौ।
> आए परभात, बार-बार हौ जँभात, सेना-
> पति अलसात, तऊ मेरे मन भाए हौ॥
> कहा है सकुच मेरी, हौं तौ हौं तिहारी चेरी,
> मैं तौ तुम निधनी कौं धन करि पाए हौ।
> आवत तौ आए, सुधि ताकी है कि नाहीं जाके,
> पाइ के महाउर की खौरि करि आए हौ॥[2]

रमणी के नख-क्षत आपके हृदय पर सुशोभित हो रहे हैं। नेत्र रात्रि-जागरण की सूचना दे रहे हैं। आपका अलसाना और बार-बार जँभाई लेना फिर भी मुझे भला मालूम हो रहा है। आप मेरी चिन्ता न करें, मेरा संकोच न करें, मैं

---

१. कवित्त रत्नाकर, २।३१।
२. वही, २।३२।

तो आपकी दासी हूँ और आपको ही अपनी सम्पत्ति समझती हूँ। आप तो चले आये परन्तु उस महिला की सुधि आपको है या नहीं जिसके पगों की महावर आपकी खौरि का कार्य कर रही है। इस प्रकार नायिका ने सारी बातें कह दीं परन्तु आक्रोश व्यक्त नहीं किया।

गुरु मान के वर्णन में नायक नायिका के पैरों पर पड़ता है और उससे क्षमा चाहता है। इस पर नायिका कहती है—

मो मन हरत, पै अनत बिहरत, इत
डरत डरत पग धरनि धरत हौ।
ताही कौं सुहाग, सब ही तैं बड़ भाग जासौं,
करि अनुराग रस-रीति सौं ढरत हौं॥
साँचे और ही सौं झूठे हम सौं सुहासपन,
सेनापति औसरैं हू हमैं बिसरत हौ।
तब वह कीनी, रैनि बसे उनही के, अब
पाइ परि मोहिं अपराधिनी करत हौ॥[1]

आपका सच्चा प्रेम तो उस नायिका के साथ है जिसके साथ आप अनुरागपूर्वक ढलते हैं। मुझसे तो बनावटी परिहास करते हैं। तब तो आपने अन्यत्र रह कर रात्रि गँवाई और अब मेरे पाँवों पर गिर कर मुझे अपराधिनी बना रहे हैं। यह कैसा न्याय है? उस नायिका का समाचार पूछती हुई वह कहती है—

बिन ही जिरह, हथियार बिन ताके अब,
भूलि मति जाहु सेनापति समझाए हौ।
करि डारी छाती घोर घाइन सौं राती-राती
मोहिं धौं बतावौ कौन भाँति छूटि आए हौ।
पौढ़ौ चलि सेज, करौं औषद की रेज बेगि,
मैं तुम जियत पुरबिले पुन्य पाए हौ।
कीने कौन हाल! यह बाघिन है बाल! ताहि,
कोसति हौं लाल, जिन फारि-फारि खाए हौ॥[2]

नायिका ने नायक की प्रेयसी को बाघिन कह कर उसके प्रति रोष प्रकट किया है। इसी कारण नायक के शरीर पर नखक्षत को देखकर उसके प्रति सहानुभूति दिखलाई है। घने घावों का ऐसा चित्रण भारतीय मर्यादा के अनुकूल भी नहीं पड़ता है। इन वर्णनों के अतिरिक्त और भी कवि ने मान-वर्णन किया है, जो विस्तार भय के कारण यहाँ नहीं दिया जा सकता।[3]

---

१. कवित्त रत्नाकर, २।३४।
२. वही, २।३५।
३. वही, २।३३, ३५।

प्रवास-वर्णन :

सेनापति का प्रवास-वर्णन अधिक सफल हुआ है। इनकी नायिकाएँ पति के वियोग में तड़पती दिखाई गई हैं। इनका पति किसी कारण से विदेश चला गया है। इसके पत्र आते रहते हैं, परन्तु उनसे यह ज्ञात नहीं होता कि वे स्वयं कब आ रहे हैं। नायिका इस अनिश्चितता के कारण विह्वल होकर कहती है कि—

वैसौ करि नेह एक प्रान विवि देह, अब
ऐसी निठुराई करि कौलौ तरसाइहौ।
विरह तै ताते, सेनापति अति राते, ऐसे
कब दुख मोचन ए लोचन सिराइहौ॥
पाती पीछे-पीछे हम आवत हैं निरधार,
यह हरि वेर हरि लिखत बनाइ हौ।
मोंहि परतीत न तिहारी कछू, कहा जानौ।
कौन वह पाती जाके पीछे आप आइहौ॥[1]

अधैर्य की अवस्था में मनुष्य ऐसा ही सोचता है। नायिका को पूर्व प्रेम की स्मृति अधिक सता रही है। विरह में प्रेमालाप की सारी क्रियाएँ उससे छूट गई हैं, परन्तु प्रीति की लगन उसके हृदय में ऐसी चुभी हुई है कि उसका छूटना असम्भव दिखाई दे रहा है—

छूट्यौ ऐबौ जैबौ, प्रेम-पाती कौं पठैबौ छूट्यौ,
छूट्यौ दूरि-दूरि हू तें देखिबौ दृगन तें।
जेते मधियाती सब तिन सौं मिलाप छूट्यौ
कहिबौ सन्देस हू कौं छूट्यौ सकुचनतें।
एतौ सब बातैं सेनापति लोक-लाज-काज
दुरजन त्रास छूटी जतन जतन तैं।
उर अरि रही, चित चुभि रही देखौ एक,
प्रीति की लगनि क्यों हूं छूटति न मन तैं॥[2]

सभी छूटने के साथ-साथ दुर्जनों का भय भी नायिका को हो जाता रहा। उसे प्रिय का वियोग ऐसा कष्ट दे रहा है कि उसकी आकृति योगिनी के समान हो गई है। इसी कारण निरन्तर अश्रु-स्रवण से अपने उरोजों को शिव-मूर्ति के रूप में उसने जल-मग्न कर रखा है—

लाल के वियोग तें, गुलाव हू तें लाल, सोई
अरुन वसन ओढ़ि जोग अभिलाख्यो है।

---

१. कवित्त रत्नाकर, २।१९।
२. वही, २।२१।

सैन सुख तज्यौ, सज्यौ रैन दिन जागरन,
भूलि हू न काहू और रूप-रस चाख्यौ है।
प्यारी के नयन अँसुवान बरसत, तासौं
भीजत उरोज देखि भाउ मन भाख्यौ है।
सेनापति मानो प्रानपति के दरस-रस,
शिव को जुगल जलसाई करि राख्यौ है॥[1]

प्रिय के समीप आने की सूचना पाने के लिए नायिका उतावली हो रही है इसी कारण उसने अपना योगी वेश धारण कर रखा है।

पीड़ा के आवेग में उसका समुचित उपाय न करने पर वह बढ़ती ही जाती है। नायिका की वियोगावस्था में यही हालत हुई है। सखियाँ ज्यों-ज्यों उसका उपचार करती जा रही हैं, व्यथा त्यों-त्यों बढ़ती जा रही है। प्रिय का स्मरण करते ही उसकी दिनचर्या व्यतीत हो रही है। वियोग की ऐसी स्थिति में नायक का पत्र भेजना प्यासे को ओस चटाने के सदृश है—

ज्यों-ज्यों सखी सीतल करति उपचार सब,
त्यों-त्यों तन बिरह की बिथा सरसाति है।
ध्यान कौं धरत सगुनौतियौ करत, तेरे
गुन सुमिरत ही बिहाति दिन-राति है।
सेनापति जदुवीर मिलैं ही मिटैगी पीर,
जानत हौ प्यास कैसे ओसनि बुझाति है।
मिलिबे के समै आप पाती पठवत, कछू
छाती की तपति पति पाती तैं सिराति है॥[2]

पति के परदेश चले जाने पर नायिका की सखियाँ उसकी विरहाग्नि को शान्त करने का उपाय करती हैं फिर भी उन्हें कोई सफलता इस क्षेत्र में प्राप्त नहीं होती है। गुलाब आदि के जो भी शीतल उपचार किए जा रहे हैं वे लोहे के घन की भाँति नायिका के हृदय पर चोट करते जा रहे हैं।[3] सखियों का प्रयास असफल होता जा रहा है। इसी कारण वे नायिका से ही आराधना करती हुई कहती हैं—

कोऊ तुव ध्यान करै, तेरौ गुनगान कोऊ,
प्रान की कहत प्रान, ज्ञान विसरायौ है।

---

१. कवित्त रत्नाकर, २।२३।
२. वही, २।३६।
३. वही, २।४३।

तो सौं उरझाइ, मन गिरै मुरझाइ, सकै
कौन सुरझाइ, काहू मरम न पायौ है।
सुधा तें सरस ताकौ तेरौ है दरस, तेरे
ताकौ न तरस सेनापति मन आयौ है।
तेरे हँसि हेरे हरि, हिये ऐसे हाल होत,
हाला में हलाइ मानौ हलाहल प्यायौ है ॥[1]

कोई सखी नायिका की व्यथा का मर्म समझ नहीं पाती है। उसकी पीड़ा बढ़ती जा रही है। वस्तुतः उसने नायक का सौन्दर्यपान कर लिया है जो उसे विष के सदृश प्रभावित किए हुए है। इसी कारण उसकी यह स्थिति बनी हुई है।

वियोगिनी की मार्मिक स्थिति का भी चित्रण कवित्त-रत्नाकर में पाया जाता है। विरह-विह्वल नायिका का एक अद्भुत चित्र देखिए—

जौतें प्रानप्यारे परदेस कौं पधारे तौतें,
बिरह तें भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहि कमल-नैनी,
सेनापति अनमनी बैठियै रहति है।
कागहि उड़ावै, कौहू कौहू करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि के बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कै पढ़ति, कौहू
प्रीतम कौं चित्र मैं सरूप निरखति है ॥[2]

नायिका अपने हाथों पर कपोल रखे हुए अनमनी सी बैठी रहती है। कभी सगुन के लिए कौआ उड़ाती है कभी वियोग के दिन गिनती है कभी प्रिय के पत्रों को पुनः पढ़कर उसमें से नया अर्थ निकालती है कभी उसके चित्रों में अपना स्वरूप देखती रहती है। उसकी स्थिति अत्यन्त जटिल हो गई है। व्यथा की अवस्था में वह सोचती है—

कौनैं बिरमाए, कित छाए, अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल मेरे ता दिन सफल ह्वै हैं,
जा दिन बदन-छबि देखौं नन्द-लाल की।
सेनापति जीवन-अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।४४।
२. वही, ३।६१।

इतनी कहत, आँसू बहत, फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाईं ब्रज-बाल की ॥[1]

प्रिय को आने में कहाँ, और किस कारण विलम्ब हुआ यह सोचती हुई नायिका बेहाल पड़ी है। इसी बीच में अश्रुपूरित उसके बाएँ नेत्र फड़कने लगे। प्रिय के आगमन की सूचना उसे मिल गई।

सेनापति का नायक भी नायिका की ही भाँति विरह व्याकुल दिखाया गया है। नायिका के वियोग में वह साधना में लीन है फिर भी नायिका उसे विस्मृत नहीं हो पाती है। उसकी मधुर स्मृति सताती ही रहती है। उसकी योग की सारी साधना उसी के लिए की जा रही है। नायक की योग साधना देखिए—

सुनि कै पुरान राखै पूरन कै दोऊ कान,
विमल निदान मति ज्ञान कौं धरति है।
सदा अपमान, सनमान, सब सेनापति,
मानत समान, अभिमान तैं विरति है।
सेई है परन-साला सह्यौ घाम, घन पाला,
पंचागिनि ज्वाला, जोग, संजम, सुरति है।
लीनी सौक माला, अरे अंगुरीन जप-छाला,
ओढ़ी मृगछाला पै न बाला विसरति है ॥[2]

पुराणों को सुनते-सुनते उसके कान भर गए हैं, मान-अपमान अब उसके लिए समान अर्थ रखते हैं, स्वयं अभिमान से दूर रहता है, जाड़ा, गर्मी का कोई असर उस पर नहीं होता, सदैव पंचाग्नि तापता रहता है, जप करते-करते उसकी अँगुलियों में छाले पड़ गए हैं, इस प्रकार उसने योगसाधना की पूरी प्रक्रिया पूरी कर ली है, फिर भी नायिका का विस्मरण उसे नहीं हो पाता है। सभी सुख-सामग्री के वर्तमान रहते हुए भी कृष्ण को उनकी राधा की स्मृति सताती रहती है। इसीलिए वे कहते हैं कि—

लोल हैं कलोल पारावार के अपार, तऊ
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति हैं।
सेनापति नीकी पटवास हू तैं ब्रज-रज,
पारिजात हू तैं वन-लता सरसति हैं ॥
अंग सुकुमारी, संग सोरह-सहस रानी,
तऊ छिन एक पै न राधा विसरति हैं ॥

---

१. कवित्त-रत्नाकर, २।६८।
२. वही, २।२७।

कंचन अटा पर जराऊ परजंक, तऊ
कुंजन की सेजै वे करेजे खरकति हैं ॥[1]

राधा के साथ कुंजलीला में जो आनन्द आता था वह मुझे अन्यत्र दुर्लभ है। समुद्र की उत्ताल तरंगों को भी वहाँ की जमुना की लहरें मात कर देने वाली हैं। पटवास से अच्छी वहाँ ब्रजरज तथा पारिजात से बढ़कर वनलताओं के आनन्द हैं। वस्तुतः राधा के कुंजों में जो आनन्द आता था वह स्वर्ण-जटित महलों के जड़ाऊ पलंगों पर नहीं मिल सकता है, कृष्ण को उनकी स्मृति अत्यधिक कष्ट दे रही है। उन्हें स्वर्णिम महलों के आनन्द से बढ़कर सुख राधा के साथ निकुञ्जों में मिलता था। उसे भूलना कठिन है।

कामदशाओं का वर्णन :

वियोग-वर्णन की शास्त्रीय पद्धति सेनापति ने अपनाई है इसलिए वियोग की अवस्थाओं का उनमें वर्णन पाया जाना स्वाभाविक है। प्रायः सभी अवस्थाओं के चित्रण इनमें मिलते हैं। उदाहरण के लिए उनके पद दिए जा रहे हैं—

अभिलाषा—

सहज बिलास हास हिय के हुलास तजि,
दुख के निवास प्रेम पास परियत है।
भूलि जात धाम, सोच बाढ़त है आठौं जाम,
बिना काम तरसि तरसि मरियत है।
मिल न पैये, बिन मिलै अकुलैयै अति
सेनापति ऐसे कैसे दिन भरियत है।
कहा कहौं तोसौं मन, बात सुनि मोसौं,
वाको देखिबौ कठिन तासौं नेह करियत है॥[2]

प्रिय-मिलन की उत्कट अभिलाषा से प्रेरित नायिका हैरान होकर कहती है कि जिसको देखना ही दुश्वार है उससे प्रेम करना कहाँ तक सफलता लाएगा। तरस-तरस कर मरने और अकुलाने में नायिका की चिन्ता-दशा भी अभिव्यक्त की गई है।

चिन्ता—

लगौ मन मोहि, तातैं सूझत न मोहि सखी,
मदन तिमिर मेरौ जीउ रह्यौ दवि है।

+ + +

१. कवित्त-रत्नाकर, २।३८।
२. वही, दूसरी तरंग, पद सं० ३८।

छाँड़ि दै अपार बार बार उपचार मेरे
हो-तम के हरिवे कौ प्रीतम की छबि है ॥[१]

उपचारों को अनावश्यक सिद्ध करना नायिका की उद्वेग दशा का भी द्योतन करता है।

स्मृति—

कौनैं बिरमाए कित छाए अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
+ + +
इतनी कहत, आँसू बहत, फरकि उठी
लहर लहर दृग बाँई ब्रज-बाल की ॥[२]

गुण-कथन—

कौहू तुव ध्यान करैं, तेरौ गुनगान कौहू,
आन की कहत आन, ज्ञान बिसरायौ है।
+ + +
तेरे हरि हेरे हरि, हिये एसे हाल होत,
हाला मैं हलाइ मानौं हलाहल प्यायौ है ॥[३]

उद्वेग—

हितू समझावैं, गुरुजन सकुचावैं, बैन
सिख कै सुनावैं, पै न चैन लहियत है।
+ + +
कौहू जौ अचानक मिलै तो मिलै मारग मैं,
वाकी उत जैवौ अब कैसे सहियत है ॥[४]

उन्माद—

बिरह बिहाल उपचार तैं न बोलै बाल
बोली जो बुलाई नाम कान्ह कौं सुनाइ कै।
+ + +

---

१. कवित्त-रत्नाकर, दूसरी तरंग, पद सं० ४६।
२. वही, पद सं० ६८।
३. वही, पद सं० ४४।
४. वही, पद सं० ६३।

को है ? कित आई ? सेनापति न बसाई सखी
कान्ह कान्ह करि कल कान कीनो आइ कै ।।[1]

नायिका का बेहोश होना उसकी जड़ता का लक्षण है। उसे बीमार जानकर गुरुजनों का हैरान होना व्याधि के लक्षण हैं। इस प्रकार इस पद में कई वियोगावस्थाओं का चित्रण कवि ने एक साथ किया है।

प्रलाप—

बीती है अवधि, हम अबला अवध, ताहि,
बधि कहा लैहौ, दया कीजै जीव जन्त की।
कहियौ पथिक परदेसी सौं कि घन पीछे,
ह्वै गई सिसिर, कछू सुधि है बसन्त की ।।[2]

व्याधि—

नीके हौ निठुर कन्त, मन लै पधारै अन्त,
मैंन मयमन्त, कैसे बासर बराइहौं।
आसरौ अवधि कौं, सो अवध्यौ बितीत भई
दिन दिन पीत भइ, रही मुरझाइ हौं ।।[3]

दिनोंदिन पीला होने के कारण नायिका की व्याधि अवस्था झलक रही है।

जड़ता—

बाल, हरिलाल के वियोग तैं बिहाल, रैनि,
बासर बरावै बैठि बर की निसानी सौं
+ + +
रही इकचक, मानौ चतुर चितेरे, तिय,
रंचक लिखी है कोई कंचन कै पानी सौं।[4]

वियोग के कारण नायिका का आभास इतना हलका हो गया है कि उसकी स्थिति ज्ञात नहीं हो रही है। शैया पर ऐसा जान पड़ता रहा है कि किसी चतुर चितेरे ने कंचन के पानी से उसका आभास मात्र दे दिया है।

वियोग में मरण की स्थिति चित्रित नहीं की जाती है। उसका आभास मात्र

---

१. कवित्त-रत्नाकर, पहली तरंग, पद सं० ६५।
२. वही, दूसरी तरंग, पद सं० ६७।
३. वही, तीसरी तरंग, पद सं० ३०।
४. वही, दूसरी तरंग, पद सं० ४७।

दे दिया जाता है। सेनापति ने भी ऐसा ही किया है। उनकी नायिका कहती है—

लागै न निमेष, चारि जुग सौं निमेष भयौ,
कही न बनत कछू जैसी तुम कन्त कौ।

+ + +

मिलन की आस तैं उसास नाहीं छूटि जात,
कैसे सहौं सासना मदन मयमन्त की॥

प्रिय की स्थिति देखकर नायिका विह्वल हो उठती है और उसे पुनः प्रिय-मिलन की आशा समाप्त होती जान पड़ती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सेनापति के वियोग-वर्णन में शास्त्रीय पद्धतियों का पूर्णरूपेण पालन हुआ है फिर भी कवि के पद हल्के होने नहीं पाए हैं। भावनाओं का गांभीर्य उनमें बना हुआ है। यदि कहीं कुछ हल्कापन जान पड़ता है तो वह अलंकारों के भार के कारण जो कि कवि का उद्देश्य था।

आलम्बन-वर्णन :

शृंगार के आलम्बन नायक-नायिका होते हैं। सेनापति ने इनका भी वर्णन किया है। इनके लिए अलग से किसी पद को इन्होंने नहीं लिखा है परन्तु 'कवित्त रत्नाकर' में ही ऐसे पद मिलते हैं जो कवि की इस प्रवृत्ति का द्योतन करते हैं। उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

मुग्धा नायिका—

लोचन जुगल थोरे थोरे से चपल, सोई
सोभा मन्द पवन चलत जलजात की।
पीत हैं कपोल, तहाँ आई अरुनाई नई
ताही छवि कर ससि आभा पात पातकी।
सेनापति काम भूप सोवत सो जागत है,
उज्वल विमल दुति पैये गात गात की।
सैसव-निसा अथौत जोवन-दिन उदौत,
बीच बाल-बधू छाँई पाई परभात की॥[1]

इस पद की नायिका अज्ञात यौवना है। उनके यौवनागम की कोई सूचना यहाँ नहीं दी गई है। काम-भूप के नवजागरण की सूचना द्वारा नायिका की मुग्धता को दर्शाया गया है।

---

१. कवित्त रत्नाकर, दूसरी तरंग, पद सं० २६।

ज्ञात यौवना—

काम-केलि-कथा कनाटेरी दै सुनन लागी,
जऊ अनुरागी वाल केलि के रसन है।
तरुन के नैना पहिचानि, जिय मैं की जानि,
लागी दिन द्वैक ही तैं भौं हनि हसन है।।
चम्पे के से फूल, भुज-मूल की झलक लागी
सेनापति स्याम जू के मन मैं वसन है।
सूधी चितवन तिरछौं ही सी लगन लागी,
विन ही कुचन लागी कंचुकी लसन है।।[1]

प्रौढ़ा स्वाधीन पतिका—

नैन नीर बरसत, देखिवे कौं तरसत,
लागे काम सरसत पीर उर अति की।
पाए न संदेसे तातैं अधिक अंदेसे बढ़े,
सोचै सुकुमारि पै न कहै मन गति की।
ताही समै काहू औचकाही आनि चीठी दीनों,
देखत ही सेनापति, पाई प्रीति रति की।
माथे पै चढ़ाई, दोऊ दृगनि लगाई, चूमि
छाती लपटाई राखी पाती प्रानपति की।।[2]

प्रोषितपतिका—

सजनी तिहारी सव रजनी गंवाई जागि,
सेनापति द्यौस मग जोवत गंवाए हैं।
चैत चाँदनी चितै भई विहाल वाल तव,
ताके प्रान राखिवे कौं वानक वनाए हैं।
लै कै कर वीन, परवीन संग की अलीन,
रवन तिहारे गीत स्रवन सुनाये हैं।
ताही एक राति उन लालन तिहारे गुन।
पलक लगाए नैंक पल कल गाए हैं।।[3]

प्रोषितपतिका के वहुत से उदाहरण कवित्त-रत्नाकर में दिए जा सकते हैं।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, दूसरी तरंग, पद सं० ५० ।
२. वही, पद सं० ६० ।
३. वही, पद सं० ५२ ।

खंडिता—

वागौं निसि-वासर सुधारत हौं सेनापति,
करि निसि वास रस धारत सुरत हौ।
दै कै सरबस भरमावत हौ उनैं, मेरौ
मन सरवस भरमावत रहत हौ॥
सादर, सुहास, पन ता ही कौं करत लाल,
सादर सुहासपन ताही कौ करत हौ।
भानौ अनुराग महाउर कौं धरत भाल
मानौं अनुराग महा उर कौं धरत हौ॥[1]

खंडिता का वर्णन कई पदों में किया गया है।[2] मान के प्रसंग में प्रायः इन्हीं पदों का कवि ने वर्णन किया है।

बचनविदग्धा—

झूंठे काज कौं बनाइ, मिस ही सौं घर आइ
सेनापति स्याम बतियान उधरत हौ।
आई कै समीप, करि साहस, सयान ही सौं,
हंसी हंसी वातन ही बांह कौ धरत हौ।
मैं तो सब रावरे की बात मन मैं की पाई,
जाको परपंच एतौ हम सौं करत हौ।
कहाँ एती चतुराई; पढ़ी आप जदुराई,
आंगुरी पकरि पहुँचा कौं पकरत हौ॥[3]

उत्कंठिता—

भौन सुधराए सुख साधन धराए, चार्यौ
जाम यौं वराए सखी आज रति राति है।
आयौ चढ़ि चन्द, पै न आयौ बसुदेव-नन्द,
छाती न थिराति आवी राति नियराति है।
सेनापति प्रीतम की प्रीति की प्रतीति मोहिं,
पूंछति हौं तोहि मौसी और को सुहाति है।
किन विरमाए, केलि-कला कै रमाए, लाल
अजहूं न आए धीर कैसे धरि जाति है॥[4]

---

१. कवित्त-रत्नाकर, दूसरी तरंग, पद सं० ७२।
२. वही, पद सं० ३३-३५।
३. वही, पद सं० ३०।
४. वही, पद सं० ५१।

इस प्रकार नायिका-भेद के अनेक उदाहरण कवित्त-रत्नाकर में मिलते हैं। अधिक विस्तार के कारण सबको यहाँ नहीं दिया जा सकता है। नायक-भेद के भी उदाहरण अधिक प्राप्त हैं। धृष्ट तथा दक्षिण नायक के लिए कवित्त-रत्नाकर की दूसरी तरंग के कुछ पद द्रष्टव्य हैं।[1] मानो वे इन नायकों के उदाहरण स्वरूप ही लिखे गए हैं। उनको अधिक विस्तार भय के कारण यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

रूप-वर्णन :

सेनापति का रूप-वर्णन प्रायः युवावस्था का हुआ है। युवा होने के पूर्व के स्वरूप पर यदि कवि की दृष्टि कभी गई है तो मात्र शैशवावस्था तक ही सीमित रह गई है। उसके भी केवल दो पद कवित्त-रत्नाकर में मिलते हैं।[2] इन स्थलों पर भी कवि ने ये वर्णन नायिका को यौवनागम से पूर्व किशोरावस्था का स्वरूप दिखाने के लिए किया है। यौवन-वर्णन में इन रूपों का चित्रण विशेष सौन्दर्य की वृद्धि करता है। इसी कारण कवि ने इनका वर्णन किया है।

नायिकाओं के यौवन का सर्वाधिक आकर्षक समय सोलहवाँ वर्ष होता है। कवि को भी यह विशेष प्रिय रहा है। इसी कारण कवि ने कहा है कि—

षोडस बरस की है, खानि सब रस की है,
जो सुख बरस की है, करतां सुधारी है।
ऊजरी कनक, मनि गूजरी झनक, ऐसी
गूजरी बनक बनी, लाल तन सारी है।
सौंह मो तिहारी, सेनापति है बिहारी ! मैं तो
गति-मति हारी जब रंचक निहारी है।
नन्द के कुमार वारी, प्यारी सुकुमार वारी,
भेष मारवारी मानौं नारी मार वारी है॥[3]

षोडश वर्षीय एक युवती को देखते ही नायक की 'गति-मति' समाप्त हो गई। मारवाड़ियों की स्त्रियों जैसा वेश बनाए वह नायिका रति के सदृश जान पड़ रही थी। ऐसी सब सुखों की वर्षा करने वाली नायिका को देखकर उसे प्रभावित होना स्वाभाविक है। वस्तुतः यह अवस्था विशेष आकर्षण पैदा करने वाली होती है। नायिका के प्रत्येक अंग अपने नव-विकसित स्वरूप को अपनी शक्ति भर आकर्षक बनाए रहते हैं। इसीलिए कवियों को भी यह समय लुभाता रहा है।

नायिकाओं का रूप-वर्णन करते समय उन्हें शोभा, कान्ति, दीप्ति एवं माधुर्य

---

१. कवित्त-रत्नाकर, तरंग २, पद सं० ३२-३५, ४५।
२. वही, पद सं० ३६, तथा ५०।
३. वही, पद सं० ५९।

से युक्त दिखाया गया है। उनके ऐसे ही सौन्दर्य की चर्चा कवि को विशेप प्रिय रही है। उनका चित्रण करते हुए कवि कहता है—

लोचन बिसाल, लाल अधर प्रवाल हू तैं,
चंद तैं अधिक मंद हास की निकाई है।
मन लै चलति, रति करति सुहासपन,
बोलति मधुर मानौ सरस सुधाई है।
सेनापति स्याम तुम नीके रस बस भए,
जानति हौं तुम्हैं उन मोहिनी सी लाई है।
काम की रसाल काढै विरह के उर साल,
ऐसी नव बाल लाल पूरे पुन्य पाई है ॥[1]

रूप का यह स्वरूप नायिकाओं को भोग की ओर उन्मुख करने वाला है। नायक कृष्ण इसी कारण 'रस-बस' हुए जान पड़ते हैं। अयत्नज अलंकारों से आभूषित नायिका का स्वरूप ऐसा आकर्षक होता है कि उस ओर युवकों का आकृष्ट हो जाना स्वाभाविक होता है। इसी कारण पद का आकर्षण और अधिक बढ़ा हुआ है।

कवि ने अपनी युवतियों का रूप-चित्रण प्रिय से मिलाने के लिए किया है। उनकी मिलनोत्सुकता को दर्शाने में उसको विशेष आनन्द आता रहा है। ऐसी स्थितियों में नायिका-भेद की नायिकाओं की भी अच्छी कल्पना की गई है। एक आगतपतिका नायिका प्रिय के आने की प्रतीक्षा में बैठी है। उसकी शोभाश्री को देखकर कवि कहता है कि—

लाल मनरंजन के मिलिबे कौ मंजन कै,
चौकी बैठि बार सुखवति वर नारी है।
अंजन, तमोर, मनि, कंचन, सिंगार बिन,
सोहत अकेली देह सोभा कै सिंगारी है।
सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी,
देखि कै दृगन जिय उपमा विचारी है।
ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन,
परवीन गाइन की ज्यों अलापचारी है ॥[2]

यहाँ कवि ने साज-विहीन नायिका का स्वाभाविक सौन्दर्य दर्शाया है। स्नान के बाद यहाँ उसके अंग-प्रत्यंगों की आभा आभूषणहीन होकर प्रस्फुटित हो रही है। इस पर कवि ने कहा है कि कृत्रिम शृंगारों से विहीन नायिका अपने स्वाभाविक स्वरूप में ही इस प्रकार शोभित हो रही है जैसे किसी गायक की अलाप। आभूषित होने

---

१. कवित्त-रत्नाकर, दूसरी तरंग, पद सं० २६।
२. वही, दूसरी तरंग, पद सं० ५४।

नायिका के नेत्र से घट कर दिखाया गया है। इस प्रसंग में नेत्रों की चितवन का कवि ने अच्छा भावात्मक चित्रण किया है। उनकी भावमयी मुद्रा का स्वरूप देखिए—

चंचल, चकित चल, अंचल में झलकति,
दुरे नव नेह की निसानी प्रानप्रिय की।
मदन की हेति, डारै ज्ञान हू के कन रेति,
मोहे मन लेति, कहे देति बात हिय की।
पैनी, तिरछौहीं, प्रीति-रीति ललचौंही, कुल
कानि सकुचौहीं, सेनापति ज्यारी जिय की।
नैंक अरसौहीं, प्रेम-रस बरसौहीं, चुभी
चित में हंसौहीं, चितवनि ताही तिय की॥[1]

इस पद्य में कवि ने युवती के नेत्रों के सभी गुणों को दर्शाया है। वे चंचल, चकित प्रकाशवान, पैने, तिरछे, प्रीति के लिए ललचाने वाले, सामाजिक मर्यादा का संकोच करने वाले, अलसाए, प्रेम-रस वर्षाने वाले एवं हंसमुख मुद्रा बनाने वाले हैं। इस प्रकार नायिका की सभी मुद्राएँ, नेत्रों के द्वारा इससे अभिव्यक्त हो जा रही हैं और पद्य की स्वाभाविकता भी बनी हुई है। इन सभी भाव-मुद्राओं का स्वाभाविक ढंग से कवि ने चित्रण भी किया है। मदन के आवेश में होने पर यही चितवन हृदय की सारी बातें अपने संकेतों द्वारा व्यक्त करने की क्षमता रखती हैं। ऐसे भावों को भी यहाँ कवि ने व्यक्त किया है।

चितवन के पश्चात् नायिका की भृकुटियों का वर्णन किया गया है। इनकी काम की कमान तथा तीखे तीर से उपमा दी गई है। नायिकाओं के घूंघट की ओट से इनके प्रहार अत्यन्त भयावह होते हैं। अगणित कामी पुरुष इन्हीं के प्रहार से घायल होकर सिसकते रहते हैं। इनके सम्बन्ध न तोड़ने पर टूटते हैं और न छोड़ने पर छूटते हैं, तीखे तीर के सदृश सदैव कलेजे में चुभते रहते हैं।[2] इसके पश्चात् कवि ने अधरों का वर्णन किया है। यह वर्णन अत्यन्त सरस हुआ है। अधर का लालित्य दिखाते हुए कवि कहता है—

केसरि निकाई, किसलय की रताई लिए,
झांई नाहि जिनकी धरत अलकत है।
दिनकर-सारथी ते सेना देखियत रति,
अधिक अनार की कली ते आरकत हैं।
लाली की लसनि, तहां हीरा की हसनि राजै,
नैना निरखत, हरखत आसकत हैं।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, २।३।
२. वही, २।८।

जीते नग लाल, हरि लालहि ठगत, तेरे
लाल लाल अधर रसाल झलकत हैं ।।[1]

केसर की निकाई, नव पल्लव की अरुणिमा, अलवत प्रातःकालीन अरुणोदय अनार के दाने, लाल नग तथा गेहूँ की अरुणिमा से अधरों का लालित्य बढ़ कर कवि ने दिखाया है। अन्तिम पंक्ति में अधरों से गेहूँ के दाने के बरसने की कवि ने कल्पना की है जो अत्यन्त स्वाभाविक है। यह पद अधरों का सौन्दर्य प्रकट करने में पूर्ण सक्षम है।

अधरों के पश्चात् कवि ने केशों का वर्णन किया है। यह वर्णन अधरों के पहले ही होना चाहिये था। जान पड़ता है कि समय-समय पर कवि ने अपने पदों को बनाया है इसीलिए उनमें क्रम नहीं है और सम्पादन करते समय उनका क्रम नहीं लग पाया है। केशों का कवि ने अच्छा वर्णन किया है। इनका यह पद देखिए—

कालिंदी की धार निरधार है अधर
गन अलि के धरत जा निकाई के न लेस है।
जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि,
घन इन्द्रनील कीरति कराई नाहि ए सहैं।
एड़िन लगत सेना हिय के हरष कर,
देषत हरत रति कंत के कलेस हैं।
चीकने, सघन, अंधियारे तें अधिक कारे,
लसत लछारे सटकारे, तेरे केस हैं ।।[2]

नायिका के लटकते हुए खुले केश ऐसे जान पड़ते हैं मानो अन्तरिक्ष में निराधार यमुना की धारा लटक रही हो। भ्रमरों के समूह इन केशों की थोड़ी-सी भी सुन्दरता नहीं रखते हैं। शेषनाग और मयूर इनकी तुलना में टिक नहीं सकते। नीलम इनके समान काला हो नहीं सकता, चिकने, सघन तथा अँधियारे से भी अधिक काले इस नायिका के लच्छेदार एवं सटकार केश हैं। इनको देखते ही प्रिय के सभी कष्ट दूर हो जाते हैं। इस पद में उपमानों का उपयोग नायिका के सौन्दर्य को अत्यधिक विकसित कर दे रहा है।

इस पद के अतिरिक्त नखशिख-वर्णन के पद कवित्त रत्नाकर में नहीं मिलते हैं। जिन पदों में अंगों के वर्णन मिलते हैं वे केवल एक अंग का नहीं बल्कि समस्त अंगों का वर्णन करते हैं। इस संदर्भ में कवि की दृष्टि जिन अंगों पर गई है उन्हीं का वर्णन उसने इन पदों में किया है। उदाहरण के लिए पद देखिए—

---

१. कवित्त-रत्नाकर, २।६।
२. वही, पद सं०।

मधुर अमोल बोल, टेढ़ी है अलक लोल,
मैनका न ओल जाकी देखे भाइ अंग के।
रति की समान सेनापति की परम प्यारी,
तोहि देखे देवौ बस होत है अनंग के।
सरस बिलास सुधाधर सौं प्रकास हास
कुच मानौं कुम्भ दोऊ मदन मतंग के।
दीरघ, ढरनि, अनियारे, कजरारे प्यारे,
लोचन ए तेरे मद-मोचन कुरंग के॥[1]

इस पद्य में कवि नायिका का स्वरूप चित्रण करना चाहता है। इसी प्रसंग में हास, कुच, नेत्र आदि अंगों का भी वर्णन उसने किया है। ये सभी अंगनायिका के स्वरूप को उद्भासित करने के लिए प्रयोग में लाए गए हैं। यहाँ इनका वर्णन करना कवि का लक्ष्य नहीं है बल्कि नायिका के स्वरूप का चित्रण करना लक्ष्य है। इन अंगों का वर्णन प्रसंगानुकूल होकर हो गया है।

रूप-वर्णन के सन्दर्भ में कवि ने रूढ़ उपमानों का ही नए ढंग से उपयोग किया है। उपमानों में नवीनता का सर्वथा अभाव है परन्तु इनका प्रयोग कवि ने इस ढंग से किया है कि भाव नए उत्पन्न हो गए हैं। ढूँढ़-ढूँढ़ कर कोमल उपमानों को कवि ने इस सन्दर्भ में जुटाया है और उनको माँज कर और अधिक चिकना बना दिया है।

उद्दीपन-वर्णन :

सौंदर्यगत—सौन्दर्यगत उद्दीपन का आधार होता है किसी भी सुन्दर वस्तु को देखकर उसके प्रति आकर्षण पैदा होना स्वाभाविक इसी कारण होता है। नायक-नायिकाओं के विषय में भी यह तथ्य सत्य है। सुन्दर स्त्री तथा पुरुष को देखकर उन पर लुभा जाना भावुक हृदय के लिए साधारण बात है। सेनापति के काव्य में इस तथ्य के भी सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक नायिका के सौन्दर्य को देखकर नायक मुग्ध हो गया है। उसकी प्रत्येक भंगिमाएं तथा नया रूप-रंग नायक के हृदय में पीड़ा पहुँचा रहे हैं। उसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

कुन्द से दसन घन, कुन्दन बरन तन,
कुन्द सो उतारि धरी क्यों बनै बिछुरि कै।
सोभा सुख-कन्द, देख्यौ चाहियै बदन-चन्द,
प्यारी जब मन्द मुसकाति नैक मुरि कै।
सेनापति कमल से फूलि रहे अंचल में,
रहे दृग चंचल दुराए हू न दूरि कै।

---

1. कवित्त-रत्नाकर, २।१२।

पलकें न लागैं, देखि ललकैं तरुन मन,
झलकैं कपोल, रहीं अलकें बिथुरि कै ॥[1]

नायिका युवती है इसलिए उसकी सौन्दर्यश्री प्रस्फुटित हो रही है। उसको एक बार देख लेने पर युवकों की नींद का हराम हो जाना स्वाभाविक है। तरुण छैले उसकी प्राप्ति के लिए ललकते रहते हैं। उसकी बिथुरी अलकों से ढँके कपोलों का बाहर झाँकना नायकों का निरन्तर आवाहन करता रहता है। सौन्दर्य के ऐसे ही स्वरूप को देखकर कवि के गिरिधर न्यौछावर होते रहे हैं—

मानहु प्रवाल ऐसे ओठ लाल लाल, भुज
कंचन मृनाल तन चम्पक की माल है।
लोचन विसाल, देखि भौंहे गिरधर लाल,
आज तुही बाल तीनि लोक में रसाल है।
तोहि तरुनाई सेनापति बनि आई, चाल
चलति सुहाई मानौं मंथर मराल है।
नैंक देखि पाई, मो पै बरनी न जाई, तेरी
देह की निकाई सब गेह की मसाल है ॥[2]

प्रवाल की भाँति ओठ, कंचन मृणाल की भाँति भुजाएँ तथा चम्पक के हार के सदृश शरीर और उसके बड़े-बड़े नेत्रों को देखकर नायक का लुब्ध हो जाना स्वाभाविक है। उसके सौन्दर्य की गतियाँ नायक को मोह लेती हैं। नायक ने अकस्मात् उस नायिका को देखा और भावाभिभूत हो गया। वस्तुतः पूरे भवन में वह मशाल पुंज की तरह शोभित हो रही है। उसका वर्णन करना साधारण शक्ति से परे की चीज है।

सेनापति का नायक नायिकाओं के सौन्दर्य पर इसी प्रकार रीझता रहा है। नायिकाओं का सौन्दर्य भी ऐसा चित्रित किया गया है जिसके सम्मुख तरुण व्यक्तियों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। क्षण-क्षण परिवर्तित उनका स्वरूप किसी भी नायक को क्यों नहीं लुभा लेगा। नायिका की ऐसी ही देह-दीप्ति का चित्रण करते हुए कवि ने कहा कि—

चन्द की कला सी, चपलासी, तिय सेनापति,
बालक के उर बीज आनन्द के बोति है।
जाके आगे कंचन में रंचक न पैये रुचि,
मानौं मनि-मोती-लाल-माल आगे पोति है।
देखी प्रीति गाढ़ी, पँधे तनसुख ठाढ़ी, जोर
जोबन की बाढ़ी खिन खिन और होति है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, २।१०।
२. वही, दूसरी तरंग, पद सं० ४०।

अति ही चपल ए विलोचन हठीले आली,
कुल कौं कलंक कछू मन मैं न आन्यौ है।
सेनापति प्यारे सुख सोभा-सुधा-कीच-बीच,
जाइ परे जोरावर बरज्यौ न मान्यौ है।
मैं तौ मतिहीन नैंन फेरिबे कौं मन-हाथी,
पठयौ मनाइ नेह-आँदू उरझान्यौ है।
पंकज की पंक मैं चलाए गज की-सी भांति,
मन तौ समेत नैन तहाँ मस सान्यौ है॥[1]

मेरे नेत्र अत्यन्त हठीले हैं जो कुल के कलंक का भी ध्यान नहीं रखते। उन्हीं कार्यों का परिणाम यह है कि मनरूपी हाथी कीचड़ में जा फँसा। अब उसे निकाल पाना दुश्वार हो गया। यदि किसी प्रकार ये रुकते हैं तो भी इनकी स्थिति ठीक नहीं होती। सारी शिक्षा के बाद भी उन पर शासन प्रिय का ही रहता है। ये उसी के वशीभूत हो जाते हैं। रूप के ये ऐसे लोभी होते हैं कि भला-बुरा भी पहचानने की इनमें क्षमता नहीं होती। सारी सुख-सम्पदा छोड़कर ये बैरागी बन जाते हैं। इनकी स्थिति अद्‌भुत होती है।[2]

नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं के मात्र ऐसे ही चित्रण कवित्त-रत्नाकर में पाए जाते हैं। इनकी भावात्मकता में ही कवि ने अधिक आनन्द लिया है। इनके कार्यों का अधिक चित्रण नहीं किया है।

दूती-वर्णन :

सेनापति ने दूतियों का वर्णन उनके जातीय आधार को दिखाकर नहीं किया है। यहाँ केवल दूतियों के कार्य को दिखाया गया है। ये सभी दूतियाँ नायिका की ही जान पड़ती हैं। नायक को प्रसन्न करके नायिकाओं से मिलाना इनका कार्य जान पड़ता है। इसीलिए नायक से आराधना करती हुई ये कहती हैं—

सहज निकाई मो पै बरनी न जाई, देखै
उरवसी हू कौं बिन दरप करति है।
तोहि पाइ कान्ह, प्यारी होइगी विराजमान,
ऐसे जैसे लीने संग दरपक रति है।
देखे ताहि जियौं, बिन देखे पै न पानी पियौं
सेनापति ऐसी अति अर पकरति है।

1. कवित्त-रत्नाकर, २।६४।
2. वही, २।१६।

तातैं घनस्याम ताके आप ही पधारौ धाम,
जातें सब सुखन की अरप करति है ॥[1]

नायिका को सभी गुणों से सम्पन्न बताती हुई नायक के प्रति उसकी ढलनशीलता को वह अभिव्यक्त करती है। नायक को अनुकूल बना लेना उसका लक्ष्य है। इसी कारण वह उसकी प्रार्थना करती है। नायिका की विशेषता बताती हुई कहती है—

सो गज गमनि है, असोग जग-मनि देख,
जात सेनापति है सो पैग से नापति है।
तेरे अब लाइक है, सोई अब लाइ कहै,
सची सील-गति जातैं सची सी लगति है।
बालम तिहारी उन बाल-मति हारी निद्रा,
नाहिं नैंक रति जातैं नहिनैं करति है।
न दरप धारी, करि आदर पधारी, तिय,
जोबन बनति पिय! कीनी नव नति है ॥[2]

मार्ग में नायिका का पग नापते हुए चलना उसके भोलेपन को प्रकट करता है। वस्तुतः वह इन्द्राणी की तरह जान पड़ती है। रूठे हुए नायक को समझाती हुई दूती कहती है कि नायिका का तुम्हारे प्रति विशेष अनुराग नहीं है अतः तुम्हें अवसर से लाभ उठाना चाहिए। इसलिए अहंकार छोड़कर नायिका के पास जाओ। उसका यौवन विकास की ओर है अतः तुम्हारी ओर पुनः उसका ध्यान हो सकता है। यह दूती बातचीत करने में कुशल जान पड़ती है इसीलिए नायक से कलात्मक वार्ता कर रही है।

नायिका की ओर से नायक में आकर्षण पैदा करना दूतियों का कार्य होता है। सेनापति की दूती इस कार्य में भी पीछे नहीं है। नायक की उत्कण्ठा जगाते हुए नायिका से मिलने के लिए उसे प्रेरित करती हुई कहती है—

नूतन जोबनवारी मिली ही जो बन बारी,
सेनापति बनवारी मन मैं बिचारियै।
तेरी चितवनि ताके चुभी चित बनिता कैं,
है उचित बनि ताके मया कै पधारियै।
सुधि न निकेतन की बाढ़ी उनके तन की,
पीर मीनकेतन की जाइ कै निवारियै।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, २।७१।
२. वही, २।५८।

तो तजि अनवरत वाके और न वरत,
कीजै लाल नव रत बाल न बिसारियै ॥[1]

आपकी चितवन नायिका के हृदय में चुभी हुई है कृपया उसे काम-पीड़ा से मुक्त कीजिए। उसने आपको प्राप्त करने का व्रत ले लिया है इसलिए अन्यत्र किसी को पाने की इच्छा का उसके लिए प्रश्न ही नहीं है। अत. आप उस पर दया करें। आपके विरह में उसकी स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई है। आपके आगमन की आशा ने नायिका को अधिक सताया। अब भी उसका उद्धार करें—

विरह तिहारे घन वन उपवनन की,
लागति हवाई जैसी लागति हवाई है।
सेनापति स्याम तुव आवन अवधि-आस,
ह्वै करि सहाई बिथा केतियौ सहाई है।
तजि निठुराई, आइ ज्यावौ जदुराई, हम
जाति अबलाई जहाँ सदा अ-बलाई है।
दरस, परस, कृपा-रस सींचि अंग-लता,
जो तुम लगाई सोई मदन लगाई है ॥[2]

जिस अंग-रूपी लता को आपने प्रेमपूर्वक लगाया था उसे अब कामदेव ने जला दिया है। अब भी यदि आपकी कृपा उस नायिका पर नहीं हुई तो वह अबला क्या कर सकती है। इसी प्रकार दूतियों का वर्णन अनेक पदों में कहीं-कहीं कवि ने किया है।[3].

इस प्रकार सेनापति की दूतियाँ अपना कार्य करने में पूर्ण समर्थ दिखाई गई हैं। इनके दूतियों के वर्णन में भी पदों की भावात्मकता निरन्तर बनी हुई है और उनके कलात्मक व्यापार भी दिग्दर्शित होते गए हैं।

प्रकृति-वर्णन :

सेनापति का प्रकृति-वर्णन हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि है। प्रकृति के ऐसे अनूठे चित्र इनकी रचना में पाए जाते हैं जो शृङ्गारी कवियों में कम ही मिलेंगे। प्रकृति के प्रति इनका अपार अनुराग इनकी रचनाओं से ज्ञात होता है। प्रकृति का उद्दीपक स्वरूप ही इन्होंने दिखाया है। परन्तु आलम्बन के चित्रों के भी पद इनमें प्राप्त होते हैं। यथास्थान उनको दिखाया जाएगा। ऋतु-वर्णन तो इनके जैसा और किसी शृंगारी कवि ने नहीं किया है। इनके ऋतु-वर्णन में प्रकृति-निरीक्षण पाया

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।८।
२. वही, ३।९।
३. वही, ५।७९-८०, ८२।

जाता है।[1] इनकी निरीक्षण शक्ति अद्भुत थी। गहराई में पैठकर स्वतन्त्र चिन्तन का इनको अभ्यास था। प्रकृति-वर्णन में इसके उदाहरण पाए जाते हैं।

सेनापति प्रकृति-वर्णन की पूर्ण क्षमता रखते हुए भी परम्परित प्रथा का पालन करते चले हैं। उद्दीपन के रूप में ऋतु-वर्णन करना इनकी इसी प्रथा का परिचायक है। परम्परा के मोह के ही कारण इनके ऋतु-वर्णन के प्रसंग में ही बारहमासा का भी वर्णन किया गया है। प्रायः सभी महीनों का नाम लेकर कवि ने उनकी गणना कराई है। ऋतुओं के प्रसंग में महीनों का ब्यौरेवार चित्र सामने नहीं आ पाया है इसी कारण बारहमासा-वर्णन लक्षित नहीं हुआ है। वस्तुतः यहाँ बारहमासा और ऋतु-वर्णन का सामंजस्य उपस्थित किया गया है। दोनों का एक साथ चित्रण करके कवि ने उनका अलग-अलग अर्थ लगाने का कार्य पाठकों पर छोड़ दिया है। वस्तुतः इन वर्णनों को बारहमासा एवं ऋतु-वर्णन दोनों प्रसंगों में आवश्यकतानुसार रखा जा सकता है। यहाँ उनका ऋतु-वर्णन की दृष्टि से चित्रण किया जाएगा।

सेनापति के समान ऋतु-वर्णन करने वाले बहुत कम कवि मिलेंगे। उनका प्रकृति-प्रेम यहाँ उभर कर सामने आया है। उसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। वसंत का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

> बरन बरन तरु फूले उपवन बन,
> सोई चतुरंग संग दल लहियत है।
> बंदी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल है,
> गुन्जत मधुप गान गुन गहियत है।
> आवे आस-पास पुहुपन की सुवास सोई
> सोंधे के सुगंध माँझ सने रहियत है।
> सोभा को समाज, सेनापति सुख-साज, आज
> आवत वसन्त रितुराज कहियत है॥[2]

इस पद में रूपक के द्वारा कवि ने वसन्त का चित्रण किया है। एक दूसरा पद देखिए—

> लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
> स्याम रंग भेंटि मानों मसि में मिलाए हैं।
> तहाँ मधु-काज आइ बैठे मधुकर-पुन्ज,
> मलय पवन उपवन-बन धाए हैं।
> सेनापति माधव महीना में पलास तरु,
> देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं!

---

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २१५।
२. कवित्त-रत्नाकर, ३।१।

आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौं
विरही दहन काम क्वैला परचाए हैं ॥[1]

टेसू के फूल अत्यधिक रक्तिम हो जाने पर श्यामाभा लिए हुए जान पड़ते हैं। उनको कवि ने कहा है विरहियों को जलाने के लिए कवि ने आधे सुलगे हुए अंगारों को जलाकर फैला रखा है। कवि की ये पंक्तियाँ बिम्बग्रहण कराने में पूर्ण सक्षम हैं। वसंत की इन उन्मादक रेखाओं के अतिरिक्त कवि ने संयोगावस्था के भी मनोहर चित्र खींचे हैं।[2] वसन्त-वर्णन का कोई कोना कवि की लेखनी से छूटने नहीं पाया है।

ग्रीष्म ऋतु के चित्रण में कवि की दृष्टि सर्वप्रथम उससे बचने के यंत्रों की ओर गई है। गरमी से बचने के लिए सारे यत्न किए गए हैं, फव्वारे आदि लगा कर ठीक किए गए हैं फिर भी उसकी तपन कम नहीं हुई है। नदी, तालाब, कुएँ सूख गए हैं, पृथ्वी लाल हो गई है। उसका चित्रण कवि की भाषा में देखिए—

सेनापति ऊँचे दिनकर के चलति लुवैं,
नद, नदी, कुवैं कोपि डारत सुखाइ कै।
चलत पवन, मुरझात उपवन वन,
लाग्यौ है तवन, डार्‌यौ भूतलौ तचाइ कै॥
भीषम तपत रितु ग्रीषम सकुचि तातैं,
सीरक छिपी है तहखानन मैं जाइ कै।
मानौ सीत काल, सीत-लता के जमाइबे कौं,
राखे हैं विरंचि बीज धरा मैं धराइ कै॥[3]

गरमी की भयंकरता में शीत समूल नष्ट हो जा रही है जिसको बीजरूप में लोगों ने तहखानों में छिपा रखा है ताकि शीतकाल में पुनः इसका बीजारोपण हो सके। जेठ की दुपहरी का सन्नाटा भी प्रसिद्ध है। लोगों के दरवाजे वन्द रहते हैं। कहीं कोई पत्ता भी नहीं खटकता बिलकुल अर्द्धरात्रि का दृश्य उपस्थित रहता है।[4] इसी प्रकार कई पदों में कवि ने ग्रीष्म ऋतु का अच्छा वर्णन किया है। तप्त भूमि की विह्वल स्थिति के हृदयग्राही चित्र उपस्थित किए गए हैं। भयंकर लू की आततायी लपटों का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

सेनापति तपन तपति उतपति तैसौ,
छायौ उत पति, तातैं विरह वरत है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।४।
२. वही, ३।६।
३. वही, ३।१२।
४. वही, ३।१३।

लुवन की लपटैं, ते चहूँ ओर लपटै, पै,
ओढ़े सलिल पटैं (?) न चैन उपजत है।
गगन गरद धूंधि दसौ दिसा रही रुंधि,
मानौं नभ भार की भसम बरसत है।
वरनि बताई, छिति-व्यौम की तताई, जेठ
आयो आतताई पुट-पाक सौं करत है।।[1]

चारों तरफ भयंकर लू के साथ गर्द-गुब्बार छाया हुआ है। इसका चित्रण करते हुए कवि कहता है कि मानो नभ को ब्रह्मा ने भाड़ बना दिया है और उसी की तप्त भस्म पृथ्वी पर उड़ेल रहा है। जेठ मांह सारे संसार को पुट-पाक बना दे रहा है। पुट-पाक धातु आदि की भस्म बनाने के लिए वैद्य लोग उसे मिट्टी के मुंहबन्द बर्तन में रखकर आग में पकाते हैं। पृथ्वी को उसी प्रकार जेठ पका रहा है। सारा संसार उसी में तप्त हो रहा है।

गरमी के पश्चात् पावस-ऋतु का वर्णन होना चाहिए परन्तु सेनापति ने जेठ-असाढ़ी का वर्णन किया है। यह वर्णन कवि ने परम्परा का ध्यान न करके अपनी स्थिति के अनुकूल किया है। भारतीय वातावरण में इसका विशेष महत्त्व होता है। प्रचंड गरमी से तप्त मानव को प्रथम वर्षा से कुछ राहत मिलती है परन्तु उस स्थिति में उमस भी भयंकर होती है। शीत और ताप की मध्यावधि में विकल मनुष्य छटपटाता रहता है। उसका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तपै इत जेठ, जग जात है जरनि जर्‌यौ,
तापकी तरनि मानौं मरनि करत है।
उतहिं असाढ़ उठे नूतन सघन घटा,
सीतल समीर हिय धीरज धरत है।
आधे अंग ज्वालन के जाल विकराल, आधे
सीतल सुभग मोद हीतल भरत है।
सेनापति ग्रीषम तपत रितु भीषम है,
मानो बड़वानल सौं वारिधि वरत है।।[2]

गरमी की भयंकरता तथा पावसागमन की शीतलता के मध्य मनुष्य पड़ा हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि समुद्र में बड़वाग्नि जल रही है। इसी प्रकार के कई पद इस वर्णन में गाए गए हैं जो भावात्मकता की दृष्टि से उच्चकोटि के हैं।

वर्षा ऋतु का वर्णन अत्यन्त व्यापक रूप में कवि ने किया है। वियोगिनी

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।१५।
२. वही, ३।१६।

नायिकाओं को यह ऋतु विशेष कष्टप्रद है। उन्हीं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

आई रितु-पाउस कृपाउस न कीनी कंत,
छाइ रह्यौ अंत, उर विरह दहत है।
गरजत घन, तरजत है मदन, लर-
जत तन-मन नीर नैननि बहति है।
अंग-अंग भंग, बोलै चातक विहंग, प्रान
सेनापति स्याम संग रंगहि चहत है।
धुनि सुनि कोकिल की विरुहिनि को किलकी,
केका के सुने तैं प्रान एकाकी रहत है ॥[1]

इस ऋतु की कोई वस्तु स्थान पाने से छूटने नहीं पाई है। एक-एक को कवि ने चुन-चुनकर स्थान दिया है—

दामिनि दमक, सुरचाप की चमक, स्याम
घटा की झमक अति घोर घनघोर तैं।
कोकिला, कलापी, कल कूजत हैं जित-तित,
सीकर ते सीतल, समीर की झकोर तैं।
सेनापति आवन कह्यौ है मनभावन, सु
लग्यौ तरसावन विरह-जुर जोर तैं।
आयौ सखी सावन, मदन सरसावन, ल-
ग्यौ है बरसावन, सलिल चहुँ ओर तैं ॥[2]

वर्षा ऋतु की सारी वस्तुओं का यहाँ भावात्मक चित्रण कवि ने किया है। इसके पश्चात् उसे नवल वधू के रूप में चित्रित किया गया है। प्रकृति के सभी आभूषणों को धारण करके वर्षा-रूपी नवल वधू श्रावण मास से अपना विवाह करवा डालती है।

यहाँ प्रकृति का रूपकात्मक ढंग से कवि ने अच्छा वर्णन किया है।[3] वर्षा में वियोगिनी नायिका को श्रावण की रात बावन के डग जैसी जान पड़ती है। विह्वल होकर वह कहती है—

दूरि जदुराई, सेनापति सुखदाई देखौ,
आई रितु पाउस, न पाई प्रेम-पतियाँ।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।२५।
२. वही, ३।२६।
३. वही, ३।२७।

धीर जलधर की, सुनत धुनि धरकी, है
दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ।
आई सुधि वर की, हिए मैं आनि खरकी, तू
मेरी प्रानप्यारी यह पीतम की बतियाँ।
बीती औधि आवन की, लाल मनभावन की,
डग भई बावन की, सावन की रतियाँ॥[1]

नायक की यह बात कि 'तू मेरी प्रान प्यारी' है नायिका को अधिक कष्ट दे रही है। इसी चिन्ता में उसे श्रावण की सुहावनी रात और अधिक कष्ट दे रही है।

प्रकृति का एक उद्दीपनकारी दृश्य और देखिए—

उन एते दिन लाए, सखी अजहूँ न आए,
उनए ते मेह भारी काजर पहार से।
काम के बसीकरन, डारै अब सीकरन,
तातैं ते समीर जे हैं सीतल तुसार से।
सेनापति स्याम जू कौ बिरह छहरि रह्यौ,
फूल प्रतिकूल तन डारत पजार से।
मोर हरखन लागे, घन बरखन लागे,
बिन वर खन लागे बरख हजार से॥[2]

एक-एक क्षण नायिका को प्रिय के वियोग में सहस्र वर्ष की भाँति लग रहा है। प्रकृति के सभी तत्त्व यहाँ उसे पीड़ा पहुँचाते हुए दिखाए गए हैं। वर्षाऋतु का व्यापक चित्रण करने में कवि को विशेष आनन्द आता रहा है। इसी कारण कई पदों में वर्षा का उच्च कोटि का आलंबन स्वरूप भी इन्होंने चित्रित किया है। यथास्थान उनका भी वर्णन किया जाएगा।

शरद् ऋतु का वर्णन अपने पदों में कवि ने अत्यन्त भावुक होकर किया है। प्रकृति का स्मरण आते ही कवि की आत्मा मानो विह्वल हो उठती है। उसकी शरण में आकर वह आराधना करने लगती है। शरद् ऋतु का चित्रण करते हुए कवि कहता है—

पाउस निकास तातें पायौ अवकास, भयौ
जोन्ह कौं प्रकास, सोभा ससि रमनीय कौं।
बिमल अकास, होत बारिज बिकास, सेना-
पति फूले कास, हित हंसन के हीय कौं।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।२८।
२. वही, ३।३२।

छिति न गरद, मानौ रंगे हैं हरद सालि
सोहत जरद, को मिलावै हरि पीय कौं।
मत्त हैं दुरद, मिट्यौ खंजन-दरद, रितु
आई है सरद सुखदाई सब जीय कौं ॥[1]

शरद् की सभी वस्तुओं को गिनाने के साथ-साथ 'को मिलावै हरि पीय को' की ध्वनि भी मुखरित होती गई है। केवल इसीलिए कवि की नायिका हैरान भी है। क्वार के महीने में स्वच्छ बादलों की छिट-पुट स्थिति का एक चित्र देखिए—

खंड-खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
सेनापति मानौं सृंग फटिक पहार के।
अंबर अडंबर सौं उमड़ि घुमड़ि, छिन
छिछके छछारे छिति अधिक उछार के।
सलिल सहल मानौं सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के ॥[2]

पछुवा हवा चल रही है जिससे रजत-सदृश बादलों के टुकड़े पूरब की ओर जा रहे हैं, इनकी यह स्थिति कवि को अधिक पसन्द आई है। शरद् ऋतु की चाँदनी कवियों को विशेष मोहती रही है। उनका भी रमणीय चित्र कवि की भाषा में देखिए—

कातिक की राति थोरी-थोरी सियराति, सेना-
पति है सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं।
उदित बिमल चन्द, चाँदनी छिटकि रही,
राम कैसौ जस अध ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन है ॥[3]

शरद् चाँदनी में सारा संसार क्षीर सागर की भाँति दिखाई दे रहा है। इस ऋतु की कोई भी प्रधान वस्तु कवि के वर्णन में स्थान पाने से वंचित न हो पाई है।

शरद् के बाद हेमन्त ऋतु का कवि ने वर्णन किया है। इस समय में सुबह

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।३७।

२. वही, ३।३८।

३. वही, ३।४०।

तेल लगाना, गरम पानी से स्नान करना, धूप खाना तथा शाल ओढ़ना सुखदायक होता है। कवि ने इनका वर्णन एकत्र किया है।[1] एक रूपकात्मक वर्णन द्वारा नायिका के कुचों में ही गरमी का शेष रह जाना दिखाया गया है। कवि ने इसका अच्छा वर्णन किया है—

सूरै तजि भाजी, बात कातिक मौं जब सुनी,
हिम की हिमाचल तैं चमू उतरति है।
आए अगहन, कीने गहन दहन हू कौं,
तित हू तैं चली, कहूं धीर न धरति है।
हिय में परी है हूल दौरि गहि, तजी तूल,
अब निज मूल सेनापति सुमरति है।
पूस मैं त्रिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
गढ़वै गरम भई, सीत सौं लरति है॥[2]

हिमाचल से बरफ की सेना उतरती चली आ रही है। इस बात की सूचना मिलते ही गरमी सूर्य को छोड़कर भाग खड़ी हुई। अगहन मास से अग्नि का सहारा उसने लिया फिर भी उसका धैर्य जाता रहा और उसे भी छोड़कर सूर्य का आश्रय लेना पड़ा परन्तु कुछ ही समय बाद उस आश्रय को छोड़कर अपने मूल उद्गम कुच-रूपी सुमेर पर्वत पर उसे जाना पड़ा। अनेक आश्रयों के ग्रहण करने पर भी जब गरमी अपने अस्तित्व की रक्षा न कर सकी तो उसे अपने उद्गम-स्थान की शरण लेनी पड़ी। अनेक उपायों से असमर्थ होने पर अपने गढ़ के अन्दर से ही अपनी रक्षा करने का उपाय उसने सोचा। कलात्मक ढंग से नायिका के कुचों का महत्त्व भी कवि ने स्थापित कर दिया है और हेमन्त का अच्छा वर्णन भी हो गया है।

जाड़े में भारतीय जनता हाथ फैला कर आग तापती रहती है। कवि का कथन है कि शीत के भय से लोग अग्नि को बचाने के लिए मानो उसे छाती में छिपाए हों।[3] इन दिनों दिन छोटा हो जाता है और रात्रि द्रोपदी के चीर की भाँति बड़ी हो जाती है। उसका जल्दी अन्त ही नहीं होता है। इसीलिए कन्त से न रूठने का सखियां आग्रह करती हैं।[4]

जाड़े की काम-वेदना उन्हें असह्य होती है इसीलिए कहती हैं—

पूस के महीना काम-वेदना सही ना जाइ,
भोग ही के द्यौस निसि विरह अधीन के।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।४३।
२. वही, ३।४४।
३. वही, ३।४५।
४. वही, ३।४६।

भोर ही कौं सीत सो न पावत छुटन, त्यौंही
राति आइ जाति है, दुखित गन दीन के।
दिन की नन्हाई सेनापति बरनी न जाइ,
रंचक जनाई मन आवै परवीन के।
दामिनी ज्यौं भानु ऐसे जात है चमकि, ज्यौं न
फूलन हू पावत सरोज सरसीन के॥[1]

दिन की धूप से रात्रि की सरदी छूटने भी नहीं पाती है तब तक पुनः रात्रि आ जाती है। दिन बिल्कुल छोटा होता है। सूर्य की भाँति अपनी चमक दिखाकर अस्त हो जाता है। उसकी इस शीघ्रता में सरोवर के कमल भी पुष्पित नहीं हो पाते हैं।

शिशिर ऋतु में अत्यधिक ठंडक पड़ती रहती है। दिन छोटा तथा रात्रि बड़ी हो जाती है। सूर्य सहस्र कर वाला नहीं बल्कि सहस्र चरणों वाला होकर भागने लगता है जिससे अन्धकार पुनः घिर कर अपना स्थान बना लेता है। कोक और कोकी की भी दयनीय स्थिति हो जाती है। ये मिलने के लिए आतुर रहते हैं परन्तु जब तक इनका अभिसार होता है तब तक दिन समाप्त हो जाता है और बेचारे प्रेमी को आधे रास्ते से ही लौट आना पड़ता है। इसी प्रकार उसकी दिनचर्या बीतती रहती है।[2] भयंकर जाड़े का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

आयौ जोर जड़कालौ, परत प्रबल पालौ,
लोगन कौं लालौ पर्‌यौ, जियें कित जाइ कै।
ताप्यौ चाहैं बारि कर, तिन न सकत टारि,
मानौं हैं पराए, ऐसे भए ठिठराइ कै॥
चित्र कैसी लिख्यौ, तेजहीन दिनकर भयौ,
अति सियराइ गयौ घाम पतराइ कै।
सेनापति मेरे जान सीत के सताए सूर
राखे हैं सकोरि कर अंबर छपाइ कै॥[3]

भयंकर जाड़े की स्थिति में हाथों से एक तिनका भी उठाना मुश्किल हो रहा है मानो हाथ अपने नहीं रहे। धूप अत्यन्त पतली हो गई है। शीत से सूर्य भी त्रस्त है इसीलिए अपनी किरणों को समेट रखा है। जाड़े की भयंकरता के सम्मुख उसकी एक भी लगने वाली नहीं है। इसी प्रकार दिन की छोटाई, रात्रि की बढ़ाई तथा जाड़े की भयंकरता का कवि ने अनेक पदों में वर्णन किया है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।४७।
२. वही, ३।५१।
३. वही, ३।५५।

शिशिर के अन्त में वसन्त का आगमन होता है। इसी समय होली का त्योहार भी मनाया जाता है। सेनापति की दृष्टि भी इस पर पड़ी है और होली का इन्होंने भी अच्छा वर्णन किया है। इस अवसर पर नायिका की स्थिति का चित्रण करते हुए कवि कहता है---

चौरासी समान, कटि किंकिनी विराजति है,
साँकर ज्यौं पग जुग घुँघरू बनाई है।
दौरी बे-संभार उर अंचल उघरि गयौ,
उच्च कुच कुंभ मनु, चाचरि मचाई है।
लालन गुपाल, गोरि केसेरि कौ रंग लाल,
भरि पिचकारी मुँह ओर कौं चलाई है।
सेनापति धायौ मत्त काम कौं गयंद जानि,
चोप करि चपै मानौं चरखी छुटाई है ॥[1]

होली के अवसर पर नायिका नायक के ऊपर रंग छोड़ने के लिये दौड़ी। नायक ने उसकी यह क्रिया देख कर अपनी पिचकारी चलाई जिससे बीच में ही उसे रुक जाना पड़ा। नायक की पिचकारी ऐसी छूटी मानो मतवाले हाथी के सम्मुख आतिशबाजी की चरखी छोड़ी जा रही है। उनकी यह क्रीड़ा कवि को विशेष पसन्द आई है इसीलिए वह कहता है—

नवल किसोरी भोरी केसरि तैं गोरी, छैल
होरी में रही है मद जोवन के छकि कै।
चपे कैसी ओज, अति उन्नत उरोज पीन,
जाके बोझ खीन कटि जाति है लचकि कै।
लाल है चलायौ, ललचाइ ललना कौं देखि
उघरारौ उर, उरवसी ओर तकि कै।
सेनापति सोभा कौं समूह कैसे कह्यौ जात,
रह्यौ है गुलाल अनुराग सौं झलकि कै ॥[2]

चित्रण में इनकी आत्मा रमती रही है। इसी कारण इनकी रचनाओं में प्रकृति का आलम्बन स्वरूप भी पाया जाता है। उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं। गरमी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

वृष कौ तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल विकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पंछी विरमत है।
सेनापति नैंक दुपहरी के ढरत, होत
धमका विषम, ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौं सीरी ठौर कौं पकरि कौनौं
घरी एक वैठि कहूं घामैं वितवत है॥[1]

कवि का यह शुद्ध प्रकृति-चित्रण है। दोपहरी की वेला में गरमी की भयंकरता असह्य होती है। हवा का चलना भी प्राय: वन्द हो जाता है। उस समय कवि कहता है कि मेरी समझ से पवन भी ठंडी छाया में रुक कर कहीं गरमी व्यतीत कर रहा है। इसी प्रकार सावन महीने का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सेनापति उनए नए जलद सावन के,
चारि हू दिसान घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने, न बखाने जात काहू भाँति
आने हैं पहार मानौं काजर के ढोइ कै।
घन सौं गगन छयौ, तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानौं रवि गयौ खोइ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम करि
मेरे जान याही तें रहत हरि सोइ कै॥[2]

वर्षा का अन्धकार इन दिनों इतना व्यापक हो जाता है कि लगभग चार महीने तक सूर्य का प्रकाश दुर्लभ रहता है इसीलिए भगवान भी रात्रि के भ्रम में पड़कर चार महीने सोए रहते हैं। इस प्रकार के और भी वर्णन कवित्त-रत्नाकर में मिलते हैं जिनको यहाँ विस्तार-भय के कारण नहीं दिखाया जा रहा है।

अनुभाव, संचारी भाव वर्णन :

सेनापति के कवित्त-रत्नाकर में अनुभावादि का वर्णन स्वतंत्र रूप में नहीं पाया जाता है। कवित्तों के वर्णन में इनका सहयोग लिया गया है परन्तु व्यापक

---

१. कवित्त-रत्नाकर ३।११।
२. वही, ३।३१।

चित्रण के रूप में नहीं पाया जाता है। केवल शृंगारिक अनुभावों का वर्णन करने वाला एक भी पद सम्भवतः कवित्त-रत्नाकर में नहीं मिलेगा। शृंगार-वर्णन के प्रसंग में रस का अंग बन कर अवश्य इनका चित्रण हुआ है। कहीं-कहीं नायिकाओं के वियोग में अश्रु आदि के चित्रण पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए एक वर्णन देखिए—

> चले तें तिहारे पिय बाढ़्यौ है वियोग जिय,
> रहियै उदास छूटि गयौ है सहाई सौ।
> लोचन स्रवत जल, पल न परति कल,
> आनंद कौं साज सब धर्‌यौ है उठाइ सौ।
> सेनापति भूले से सदा रहियत तोतें
> ज्ञान, प्रान, तन, मन, लीनौ है चुराइ सौ।
> कछू न सोहाइ, दिन राति न बिहाइ, हाइ
> देखे तें लगत अब ऊजर सौ पाइसौ ॥[1]

इसी प्रकार उसके बाद के कवित्त में भी नायिका अश्रु प्रवाहित करती है। एक विच्छित्ति हाव का भी उदाहरण देखिए—

> मालती की माल तेरे तन कौं परस पाइ,
> और मालतीन हू तें अधिक बसाति है।
> सोने तें सरूप, तेरे तन कौं अनूप रूप,
> जातरूप-भूपन तें और न सुहाति है।
> सेनापति स्याम तेरी सहज निकाई रीझे,
> काहे कौं सिंगार कै कै बितवति राति है।
> प्यारी और भूपन कौं भूपन है तन तेरौ,
> तेरियै सुबास और बास बासी जाति है।[2]

आलस्य संचारी भाव का एक चित्र देखिए—

> नीके रमनी के उर लागे नख-छत अरु
> घूमत नयन, सब रजनि जगाए हौ।
> आए परभात, बार-बार ही जंभात, सेना-
> पति अलसात, तऊ मेरे मन भाए हौ।
> कहा है सकुच मेरी, हौं तौ हौं तिहारी चेरी,
> मैं तो तुम निधनी कौं धन करि पाए हौ।

हेम-रथ बैठे महारथी हेम बानन सौं
गगन में दोउ राम-रावन लरत हैं ॥[1]

यह युद्ध-वीर का उदाहरण है। एक और ऐसा ही उदाहरण देखिए—

चुरइ सलिल, उच्छलइ भानु, जलनिधि-जल झंपिय।
मच्छ कच्छ उच्छरिय, पिख्खि अहिपति उर कम्पिय।
लपट लग्गि उच्छरत, चटकि फुट्टत नग पत्थर।
सेनापति जय-सद्द, विरद, बोलत विद्याधर।
अति ज्वाल-जाल पज्जलिय घिरि, चहुइ भग्गि बाड़वअनल।
प्रगट्यौ प्रचण्ड पत्ताल जिमि, राम-बान-पाउक प्रबल ॥[2]

दया-वीर—

पूरवली जासौं पहिचान ही न कीहू, आइ
भयौ न सहाइ जो सहाइ की ललक मैं।
पहिले ही आयौ, वैरी वीर कै मिलायो, छिन
छुवायौ सीस लाल-पद नख की झलक मैं।
सेनापति दया-दान-वीरता बखानै कौन,
जो न भई पीछे, आगे होनी न खलक मैं।
परम कृपाल, रामचन्द भुवपाल, बिभी-
षन दिगपाल कीनो पाँचई पलक मैं ॥[3]

दान-वीर—

रावन कौं वीर, सेनापति रघुवीर जू की
आयौ है सरन, छाँड़ि ताही मद-अंध कौं।
मिलत ही ताकौं राम कोप कै करी है ओप,
नामन कौं दुज्जन, दलन-दीन बन्ध कौं।
देखौ दान-वीरता, निदान एक दान ही मैं,
कीने दोऊ दान, को बखानै सत्यसंध कौं।
लंका दसकंधर की दीनी है विभीषन कौं,
संकाऊ विभीषन की दीनी दसकंध कौं ॥[4]

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ४।६४।
२. वही, ४।४४।
३. वही, ४।३६।
४. वही, ४।४०।

धर्म वीर—

वज्र हू दलत, महा कालै संहरत, जारि
भसम करत प्रलै काल के अनल कौं।
झंझा पवमान अभिमान कौं हरत बाँधि,
थल कौं करत जल जल करें थल कौं।
पव्वै मेरु-मंदर कौं फोरि चकचूर करैं,
कीरति कितीक, हनै दानव के दल कौं।
सेनापति ऐसे राम-बान तऊ विप्र हेत
देखत जनेऊ खैंचि राखै निज बल कौं॥[1]

परशुराम के जनेऊ को देखकर राम ने अपनी शक्ति को समेट लिया। उन्हें ब्राह्मण समझकर अपनी धर्म-भावना से प्रेरित हो उठे और उनसे युद्ध नहीं किया। यहाँ राम के धर्म-भीरुत्व के साथ-साथ मर्यादा का संयम भी बना हुआ है।

रौद्र रस—

भीज्यौ है रुधिर, भार भीम, घनघोर धार,
जाकौं सत कोटि हू तैं कठिन कुठार है।
छत्रियन मारि कै, निछत्रिय करी है छिति
बार इकईस, तेज-पुंज कौं अधार है।
सेनापति कहत कहाँ है रघुवीर कहौ ?
छोह भर्‍यौ लोह, करिबे कौं निरधार है।
परत पगनि, दसरथ कौं न गनि, आयौ
अगनि-सरूप जमदगनि-कुमार है॥[2]

भयानक रस—

बिरच्यौ प्रचंड बरिबंड है पवन पूत,
जाके भुजदंड दोऊ गंजन गुमान के।
इत तैं पखान चलैं, उत तैं प्रबल बान,
नाचे हैं कबंध, माचे महा घमसान के।
सेनापति धीर कोई धीर न धरत सुनि
घूमत गिरत गजराज है दिसान के।

---

१. कवित्त-रत्नाकर ४।२८।
२. वही, ४।२९।

बरजत देव कपि तरजत रावन कौं
लरजत गिरि गरजत हनूमान के ॥[1]

हनुमान की गर्जना से चारों तरफ भयंकरता छा गई है। एक और भयानक रस का उदाहरण देखिए—

हहरि गयौ हरि हिए धर्धकि धीरत्तन मुक्किय।
ध्रुव नरिंद थरहर्‌यौ मेरु धरनी धरि धुक्किय।
अखिल पिख्खि नहिं सकइ सेस नख्खिन लागीय तल।
सेनापति जय सद्द, सिद्धि उच्चरत बुद्धि बल।
उद्दंड चंड भुजदंड भरि, धनुष राम करषत प्रबल।
टुट्टिय पिनाक निर्घात सुनि, लुट्टिय दिगंत दिग्गज विकल ॥

अद्भुत रस—

सकल सुरेस, देस देस के नरेस, आइ
आसनन बैठे जे महा गरूर धरि कै।
जोवन के मद, कुल-मद भुज-बल-मद,
संपति के मद सौं रहे निदान भरि कै।
सेनापति कहै राम रूप धरषित भूप,
ह्वै रहे चकित पै न रहे धीर धरि कै।
भूल्यौ अभिमान, देखे भानु-कुल-भानु, सब
ठाढ़े सिंहासनन तै ह्वै रहे उतरि कै ॥[2]

राम के स्वरूप को देखकर सबका चकित रह जाना अद्भुत रस का सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार चौथी तरंग का ५० वाँ पद भी अद्भुत रस का सुन्दर उदाहरण है।

हास्य रस—

चंडिका-रमन, मुंड-माल मेरु करिबे कौं,
मुंड कुंभकरन कौं माग्यौ चित चाइ कै।
सेनापति संकर के कहे अनगन गन,
गरब सौं दौरे दर-बर सब धाइ कै।
जोर कै उठायौ, जुरि-मिलि कै सबन तौहौ
गिरि हू तै गरुओ, गिर्‌यौ है डगुलाइ कै।

१. कवित्त-रत्नाकर ४।३७।
२. वही, ४।१२।

हाली भुव, गगन की आली चांप चूर भई
काली भाजी, हंस्यौ है कपाली हहराइ कै ॥[1]

करुण रस—

करुण रस की अच्छी योजना कवित्त-रत्नाकर में नहीं पाई जाती है। करुण विप्रलम्भ के उदाहरण इस प्रसंग में दिए जा सकते हैं। इसके लिए देखिए दूसरी तरंग के सरसठवाँ तथा अड़सठवाँ छन्द।

शान्त रस—

कीनो बालापन बालकेलि मैं मगन मन,
लीनो तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं।
अब तू जरा मैं पर्‌यौ मोह पीजरा मैं, सेना-
पति भजु रामै जो हरैया दुख पीर कौं।
चितहि चिताउ भूलि काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसो ताउ, न बचाउ है सरीर कौ।
लेहु देह करि कै, पुनीत करि लेहु देह,
जीभै अवलेह देह सुरसरि नीर कौ॥[2]

शांत रस के और भी उदाहरण पाँचवीं तरंग में छन्द ११, १४, ३१, ४४ आदि में मिलते हैं।

वीभत्स रस के समुचित उदाहरण कवित्त-रत्नाकर में नहीं मिलते हैं। सम्भवतः उस ओर कवि की दृष्टि न गई हो। फुटकल पदों की रचना में उनका छूट जाना अस्वाभाविक नहीं है।

अलंकार वर्णन :

सेनापति के काव्य में अलंकारों का प्रयोग खूब हुआ है। अपनी प्रत्येक बात को कवि अलंकृत करके प्रकट करता रहा है। इसी प्रवृत्ति के कारण कवित्त-रत्नाकर की पहली तरंग में श्लेष अलंकारों का ही वर्णन किया गया है। कवि अपनी भाषा को सुसज्जित करके उपस्थित करना चाहता था। इसलिए भाषा की रंगीनी के अच्छे दृश्य यहाँ देखने को मिलेंगे। इसी कारण शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा चित्रालंकार के भी उदाहरण इनकी रचना में प्राप्त होते हैं। इन अलंकारों का वर्णन भी कवि ने पूरे मनोयोग के साथ किया है। जहाँ रस-परिपाक पर दृष्टि रखी गई है वहाँ अलं-

---

१. कवित्त-रत्नाकर ४।६२।
२. वही, ५।१२।

कारों पर भी गम्भीर दृष्टिपात किया गया है। कवित्त-रत्नाकर का कोई कोना अलंकार-वर्णन से छूटा नहीं है। प्रायः प्रत्येक तरंग में इसका भरपूर उपयोग किया गया है। उनकी वाणी के अलंकृत स्वरूप पर नीचे विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्लेष वर्णन :

श्लेष अलंकार कवि को विशेष प्रिय रहा है। इसी कारण प्रायः पहली तरंग के सभी पदों में श्लेष का ही वर्णन किया गया है। श्लेष के दो भेद अभंग और सभंग होते हैं। सेनापति ने इन दोनों का वर्णन किया है। अपने कवित्तों में इसकी घोषणा भी की है।[1] अभंग पद श्लेष में पद को तोड़े-मरोड़े बिना ही अर्थ लगाया जाता है। इसका एक उदाहरण देखिए—

> **सारंग धुनि सुनावै घन रस बरसावै**
> **मोर मन हरखावै अति अभिराम है (?)**
> **जीवन अधार बड़ी गरज करनहार**
> **तपति हरनहार देत मन काम है।**
> **सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति**
> **पावत अधिक तन मन बिसराम है।**
> **संपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ**
> **आयौ घनस्याम सखि मानौं घनस्याम हैं॥**[2]

इस खण्ड में किसी भी पद को तोड़ना नहीं पड़ा है। सभी का अर्थ पूर्ण पद को लेकर ही लगाया गया है। अन्तिम पंक्ति में कवि ने अपने मंतव्य को प्रकट कर दिया है कि हे सखी! काले मेघ क्या आ गए अर्थात् काले मेघ और कृष्ण का वर्णन साथ-साथ किया गया है। मेघ के पक्ष में कवि कहता है कि चातक बोल रहे हैं, मेघ प्रचुर जल वरसा रहे हैं, मोर मन को प्रसन्न कर रहे हैं। जीवन के आधार बादल गर्जना कर रहे हैं, गरमी शान्त हो रही है, काम उत्पन्न हो रहा है। इन बादलों की छाया में संसार के प्राणी विश्राम पाते हैं। बिजली (संपै) को साथ में लिए हुए ये बादल आ गए। इस प्रकार बिना किसी पद को भंग किए ही मेघों के पक्ष में पूरा अर्थ लग जाता है। घनश्याम के विषय में भी यही बात है। कृष्ण वंशी बजाते हैं जिससे अत्यधिक आनन्द हो रहा है, मेरे मन को उसकी ध्वनि प्रसन्न कर रही है। वे मेरी बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले तथा हृदय के कष्टों को दूर करने वाले हैं और मन में काम उत्पन्न करते हैं। संसार के लोग उनकी शीतल छाया में विश्राम पाते हैं। ऐश्वर्य को साथ में लिए हुए उसकी वर्षा करने वाले वे कृष्ण आपके सामने हैं। इस प्रकार कृष्ण के पक्ष में भी बिना किसी

---

१. कवित्त-रत्नाकर, १-६।
२. वही, १।१२।

पद को भंग किए ही सारा अर्थ बैठ जाता है। अभंग पद श्लेष का एक दूसरा उदाहरण देखिए—

> व्यापी देस देस बिस्व कीरति उज्यारी जाकी
> तीतै संग लीने जामैं केवल सुधाई है।
> सुर-नर-मुनि जाके दरस कौं तरसत
> राखत न खर तेजै कला की निकाई है।
> करन के जोर जीति लेत है निसा कलंकै
> सेवक हैं तारे ताकी गनती न पाई है।
> राजा रामचन्द्र अरु पून्यौ कौ उदित चंद
> सेनापति बरनी दुहू की समताई है ॥[1]

इस पद में राजा रामचन्द्र और पूर्णिमा के चन्द्रमा का वर्णन किया गया है। यहाँ भी बिना किसी पद को भंग किए ही सारा अर्थ स्पष्ट हुआ जा रहा है।

सभंग पद श्लेष में पदों को तोड़कर उनका अर्थ बैठाया जाता है। इसका उदाहरण देखिए—

> नाहीं नाहीं करैं थोरी माँगे सब दैन कहैं
> मंगन कौं देखि पट देत बार बार हैं।
> जिनकौं मिलत भली प्रापति की घटी होति
> सदा सब जन मन भाए निरधार हैं।
> भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य
> कन कन जोरैं दल पाठ परिवार हैं।
> सेनापति बचन की रचना बिचारौ जामैं
> दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार हैं ॥[2]

इस पद में दाता और सूम का साथ-साथ वर्णन किया गया है। 'सब दैन कहै' को तोड़कर 'सबदै न कहैं' कर देने से दोनों पक्षों में अर्थ लग जाता है। इसी प्रकार 'कन कन जोरे' को 'कनक न जोरे', 'दल पाठ परिवार हैं' को 'दान पाठ परि वारैं हैं' कर देने से सभी अर्थ लग जाते हैं। इसी प्रकार सभंग पद श्लेष का एक और उदाहरण देखिए—

> अधर को रस गहैं कण्ठ लपटाइ रहैं
> सेनापति रूप सुधाकर तें सरस हैं।
> जे बहुत धन के हरन हारे मन के हैं
> हीतल में राखे सुख सीतल परस है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, १।११।

२. वही, १।४०।

आवत जिनके अति गजराज गति पावै
मंगल है सोभा गुरु सुन्दर दरस है।
और है न रस ऐसौ सुनि सखी साँची कहौं
मोतिन के देखिबे कौं जैसौ कछू रस है ।।[1]

इस पद में केवल दो शब्दों का श्लेषार्थ समझ लेने पर पूरा अर्थ समझ में आ जाता है। 'गुरु' शब्द का अर्थ वृहस्पति और बृहत् है तथा 'मोतिन के' का अर्थ मोती और मो तिनके अर्थात् नायक श्रीकृष्ण के हैं। इससे यह स्पष्ट हुआ कि मोतियों और श्रीकृष्ण के अर्थ में यह पद लिखा गया है। कोई नायिका अपनी सखी से कहना चाहती है कि मुझे सबसे अधिक सुख कृष्ण के दर्शन से ही प्राप्त होता है। इस बात को गुरुजनों के संकोच के कारण प्रत्यक्ष रूप में कहने में वह असमर्थ है इसलिए श्लेष का सहारा लेती है। प्रकाश में वह अपनी बात मोतियों की प्रशंसा करने में कह जाती है और श्लिष्ट वचनों द्वारा गुप्त रूप से अपनी बात भी प्रकट कर देती है। नायिका की इस गोपनीयता द्वारा उसकी लज्जाशीलता प्रकट होती है। मोतियों के अर्थ में वह कहती है कि बुलाक के रूप में मोती अधरों का रस ग्रहण करती और माला के रूप में गले में लिपटी रहती है। उसकी कान्ति चन्द्रमा से भी अधिक सुखद है। इनकी कीमत भी अधिक है। इनको हृदय पर धारण कर लेने पर शीतल स्पर्श का सुख प्राप्त होता है। इनके अच्छी प्रकार से आ जाने पर हाथी गजराज की गति प्राप्त करता है। माँग में इनका सुन्दर दर्शन वृहस्पति का-सा हल्का पीलापन लिए जान पड़ता है। वस्तुतः इनको देखने में जैसा आनन्द प्राप्त होता है वैसा अन्यत्र नहीं है। कृष्ण के पक्ष में नायिका कहती है कि जो कृष्ण मेरे अधरों का रसपान करते हैं और कंठ से लिपटकर रहते हैं उनका सौन्दर्य चन्द्रमा से बढ़कर है। उनके पास अतुल सम्पत्ति है, अनेक प्रेमिकाएँ हैं। वे मन को मोहित कर लेते हैं। उनके आलिंगन करने से हृदय को शीतल सुख प्राप्त होता है। उनकी कृपा से गज ग्राह से मुक्ति पा गया। उनकी दृष्टि मंगलप्रद है, उनका दर्शन अत्यन्त सुन्दर है। मुझे उनको देखने में जैसा आनन्द प्राप्त होता है वैसा कहीं नहीं। इस प्रकार पूरे पद को अत्यन्त सरल ढंग से कवि ने श्लेषपरक बना दिया है।

श्लेष के माध्यम से सेनापति ने चमत्कार खूब दिखाया है। एक पद में नायिका को तलवार के सदृश उन्होंने चित्रित किया है—

कौल की है पूरी जाकी दिन दिन बाढ़ै छवि
रंचक सरस नय झलकति लोल है।
रहै परि यारी करि संगर में दामिनी सी
धीरज निदान जाहि बिछुरत को लहै।

1. कवित्त-रत्नाकर, १।६२।

यह नव नारि साँची काम की सी तरवारि
अचरज एक मन आवत अतोल हैं।
सेनापति वाहैं जब धारैं तब वार बार
ज्यों ज्यों मुरि जात त्यों त्यों कहत अनोल है ॥[1]

इस पद में नथ का अर्थ नथुनी और तलवार की मूठ पर लगा हुआ छल्ला है। उसके बाद प्रायः सभी शब्दों के अर्थ सरल हैं। स्त्री की गतिविधि काम की तरवार का कार्य करती है। दोनों की भंगिमाएँ युवकों के लिए अत्यधिक आकर्षक हैं इसलिए दोनों अर्थों में पद का लग जाना सरल हो गया है। इसी प्रकार नायिका को अनेक रूपों में कवि ने दिखाया है। सोने की मुहर, कामदेव की वाटिका, मेंहदी, कामदेव की पगड़ी, रागमाला, शमादान, फूलों की माला, पद्मिनी, अमरावती चौपड़, नवग्रह की माला, अर्जुन की सेना, कान में पहनने की लौंग, ग्रीष्म ऋतु तथा पुष्प अनेक रूपों में नायिका को कवि ने चित्रित किया है।[2] इन पदों में कवि की प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है। सरल हिन्दी भाषा में दोनों अर्थों की सार्थक योजना कवि के इसी गुण का द्योतन करती है।

श्लेष-वर्णन के प्रसंग में कवि की भाषा की विद्वत्ता अद्वितीय है। इसीलिए *परस्पर-विरोधी बातों को भी एक ही पंक्ति में कहने में वह समर्थ हो पाता है।* एक पद में भोगिनी और वियोगिनी का साथ-साथ कवि वर्णन करता है—

विरह हुतासन वरत उर ताके रहैं
वाल महो पर परी भूख न गहति है।
सेवती कुसुम हू तैं कोमल सकल अंग
सून सेज रत काम केलि कौं करति है।
प्रान पति हेत गेह अंग न सुधारैं जाके
घरी है बरस तन मैं न सरसति है।
देखो चतुराई सेनापति कविताई की जु
भोगिनी की सौरि कौं वियोगिनी लहति है ॥[3]

संयोगावस्था में नायिका प्रिय के साथ है। अपनी भूख भी वह भूल गई है और वियोगावस्था में विरहाग्नि के कारण उसका हृदय जल रहा है। संयोगावस्था में पुष्प-शैया लीन अनुरक्त होकर वह रतिक्रीड़ा करती है और वियोगावस्था में रति-शैया के सूनी रहने से काम-केलि की कामना करती रहती है। संयोग के कारण एक वर्ष भी एक घड़ी के समान व्यतीत हो जाता है और वियोग के कारण एक-एक घड़ी

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।६५।
२. वही, ३।१४, १३, १६-२२ तक तथा २७, ३१, ३५, ३७, ८७ और ९४।
३. वही, ३।२५।

एक-एक वर्ष के समान लगते हैं। इस प्रकार संयोग और वियोग दोनों पक्षों का साथ साथ कवि ने वर्णन कर दिया है। यह कवि की भाषा और विद्वत्ता का प्रभाव है।

इसी प्रकार की विद्वत्ता का प्रकाशन और भी कवि ने किया है। एक पद में जाड़ा और गरमी दोनों का एक साथ ही कवि ने वर्णन कर दिया है—

रजनी के समै बिन सीरक न सोयौ जात
प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है।
रंगित सुबास राखै भूपति रुचिर साल
सूरज की तपति किरनि तन ताई है।
सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात परै
आँगन ही कल ज्यों त्यों अगिनि बताई है।
ग्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति
लीजियै समुझि एक भाँति सी बनाई है॥[1]

सेनापति का कथन है कि यहाँ ग्रीष्म ऋतु और हिम ऋतु दोनों एक प्रकार से चित्रित की गई हैं। यह कवि के कौशल का द्योतक है। भाषा की सरलता के कारण दोनों पक्षों में सहज ही अर्थ भी लगाया जा सकता है। उसी प्रकार शंकर और विष्णु का वर्णन एक साथ किया गया है—

सदा नंदी जाकौं आसा कर है विराजमान
नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं।
जो है सब भूतन कौं अंतर निवासी रमै,
धरै उर भोग भेष धरत नगन कौं।
जाति बिन कहैं जानि सेनापति कहैं मानि
बहुधा उमाधव कौं भेद छांड़ि मन कौं॥[2]

इस पद में 'गौरी' का अर्थ पार्वती और श्वेत वर्ण है। इसी प्रकार 'मदन कौं' का अर्थ कामदेव को और मदों को, 'रमै' का अर्थ रमा और रमना, 'नगन' का अर्थ पर्वत और नग्न है। अन्तिम पंक्ति में 'बहुधा उमाधव' का अर्थ पदों को तोड़कर लगाया जाता है। 'उमाधव' का अर्थ उमा के पति अर्थात् शिव और 'बहुधाउ माधव' का अर्थ 'प्रायः विष्णु' लगाया जाता है। इसी कारण इस पद में यमक अलंकार भी हो जाता है। इस प्रकार शंकर और विष्णु दोनों का वर्णन एक साथ हो जाता है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।५० ।
२. वही, ३।३८ ।

एक दूसरे के विरोधी तत्त्वों का अनेक पदों में कवि ने वर्णन किया है। शब्दों का ऐसा चयन उन्होंने अपने पदों में किया है, जो दो विपरीत अर्थों को एक साथ ध्वनित करते हैं। इसी पद्धति से दुष्ट और गुणी राजाओं का वर्णन एक साथ ही इन्होंने किया है।[1] इसी प्रकार भावती और अनभावती स्त्रियों का भी एक साथ ही वर्णन किया गया है।

> निरखत रूप हरि लेत गद ही कौं सब
> भूल है सुनी कौ कछू कह्यौ न परत है।
> अंगना सरूप यातैं भावति जो नाहैं नारि
> जोवत ही जाकौं मुख सो मन बरत है।
> चित मैं न आवै नैंक सरस कौं देखत ही
> तन तरुनापौ देखैं चित उत रत है।
> सेनापति प्यारी कौं बखानौ कैं कुप्यारी हू कौं
> वचन के पेच पटतर ही करत है॥[2]

कहने का ढंग कवि ने अनूठा अपनाया है, इसी कारण सरलतापूर्वक दोनों पक्षों में अर्थ लग जाता है। प्रथम पंक्ति में 'गद' का अर्थ रोग और गधी है। प्रिय स्त्री को देखते ही समस्त रोग दूर हो जाते हैं और अप्रिय स्त्री को देखते ही गधी के समान ज्ञात होती है। उसका स्वरूप देखने वालों के हृदय में शूल की भाँति चुभता है। यही अर्थ अनभावती के पक्ष में लगता है कि उस कुरूपा का स्वरूप शूल के समान है। इसी प्रकार 'अंगना' का अर्थ देवांगनाओं से प्रिय स्त्री के पक्ष में है और अंग ना अप्रिय स्त्री के पक्ष में है। इसी प्रकार पूरा पद दोनों पक्षों में लग जाता है और सरस अर्थों की अभिव्यंजना करता है। अगले पद में भी कवि ने उन्हीं अर्थों की व्यंजना भावती और अनभावती के पक्षों में की है।[3]

सेनापति के श्लेप-वर्णन में एक ही पद के तीन-तीन अर्थों की अभिव्यंजना की गई है। कवि ने तीनों अर्थों को ध्वनित करने के लिए पद के अन्त में कह दिया है कि 'हरि रवि अरुन तमी कौं बरनत हैं।' कवि के अभिप्राय इसी माध्यम से व्यक्त हुए हैं। कवि का कथन है कि वाणी की मर्यादा भी इसी में है कि विभिन्न अर्थ स्वतः निकलते चले जायँ। अपने पद की अभिव्यक्ति में कवि कहता है—

> तारन की जोति जाहि मिलै पै विमल होति
> जाके पाइ संग मैं न दोप सरसत है।
> भुवन प्रकास उर जानियैं ऊरघ अध

---

१. कवित्त-रत्नाकर, १।४३, ४५।
२. वही, १।८८।
३. वही, १।८[illegible]।

सोउ लही मध्य जाके जग तै रहत है।
कामना लहत द्विज कौसिक सरब विधि
सज्जन भजत महातम हित रत है।
सेनापति बैन मरजाद कविताई की जु
हरि रबि अरुन तमी कौं बरनत है ॥[१]

विष्णु के अर्थ में कवि कहता है उसके मिलने पर तारन अर्थात् नेत्रों की ज्योति स्वच्छ हो जाती है, हृदय का अन्धकार दूर हो जाता है, उसको पाकर समुद्र (न दीप) शोभित हैं। उसके हृदय का प्रकाश समस्त संसार में जाना जाता है अर्थात् ऊपर-नीचे सर्वत्र उसी का प्रकाश है। वह उसी में अर्थात् संसार में ही व्याप्त है जिसमें स्वयं रहता है, क्योंकि विष्णु जगत् में है और जगत् विष्णु में। द्विज विश्वामित्र उसी की कृपा से अपनी कामनाएँ पूर्ण करते रहे हैं। सज्जन लोग उसी को भजते रहते हैं।

सूर्य के पक्ष में कवि कहता है कि उसके उदित होने पर नेत्रों की ज्योति स्वच्छ हो जाती है। दीपक की सीमा समाप्त हो जाती है। उसके प्रकाश को ऊपर-नीचे सर्वत्र जाना जाता है। सोता हुआ व्यक्ति भी उस समय जग जाता है। उल्लू पक्षी अपनी कामनाएं पूर्ण नहीं कर पाता है। सज्जन व्यक्ति सब प्रकार से उसकी पूजा करता है और घोर अन्धकार से मुक्त हो जाता है।

इसी प्रकार रात्रि के पक्ष में कवि कहता है कि रात्रि में नक्षत्रों की ज्योति स्वच्छ होती है। कामोद्दीपन होने लगता है। (मैं न दीप सरसत है) सारे संसार में ऊपर से नीचे तक प्रकाश नहीं रहता है। सारा संसार इस बीच में सोता ही रहता है। उल्लू पक्षी सब प्रकार से अपनी मनोकामनाएँ पूरी करता है। मनुष्य शैयाओं पर सोकर सारी रात बिताता है। इस प्रकार एक ही पद में तीन-तीन अर्थों को कवि ने ध्वनित किया है।

कवित्त-रत्नाकर की पहली तरंग में श्लेष पदों का ही चयन किया गया है परन्तु कुछ पदों में श्लेष अलंकार नहीं है। कहीं भंग पद यमक तथा कहीं प्रतीप अलंकार का वर्णन किया गया है।[२] खींच-तान पर इन पदों के एक-आध शब्दों में ही श्लेष सिद्ध किया जा सकता है। इसी प्रकार कई पदों में श्लेष अलंकार नाम-मात्र को है। उदाहरणस्वरूप कवित्त-रत्नाकर की पहली तरंग के २३, ४६, ४७ आदि कवित्तों में उत्प्रेक्षा अलंकार की प्रधानता है श्लेष की नहीं। इसी प्रकार अनेक अन्य पदों में भी प्रधानता उपमा आदि की है श्लेष की नहीं। फिर भी सेनापति को श्लेष-वर्णन करने में पूरी सफलता मिली है। हिन्दी के सरल शब्दों द्वारा अपनी श्लिष्ट वाणी को प्रकट करने में ऐसी सफलता भाषा के दूसरे कवि को नहीं मिली है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, १।७४।

२. वही, १।६६-६७।

सेनापति के श्लेष-वर्णन में बौद्धिक चमत्कार के साथ-साथ हास्य की तरलता भी मिलती रहती है, इसी कारण इनकी अलंकृत वाणी को पढ़ते समय भी पाठक का हृदय अनुरंजित होता रहता है। पदों की अन्तिम पंक्तियों में प्रायः कवि ने यह बता दिया है कि इस पद में किन-किन अर्थों की अभिव्यंजना की गई है। इस कारण मस्तिष्क की कसरत पाठक को नहीं करनी पड़ती है। कवि के निर्देशानुसार वह अर्थ को आसानी से बैठा लेता है।

कवित्त-रत्नाकर में श्लेष के अतिरिक्त अन्य अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है। उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

यमक—

घर के रहत जाके सेनापति पैयै सुख
जातैं होत प्रान समाधान भली भाँति है।
जाकी सुभ गति देखे मानियै परम रति
नैंक बिन बोले सुधि बुधि अकुलाति है।
देखत ही देखत बिलानी आगे आँखिन के
कर गहि राखी सो न क्यौं हू ठहराति है।
रस दै कै राखी सरबस जानि बार बार
नारी गई छूटि जैसे नारी छूटि जाति है॥[1]

यमक अलंकार के भी अभंग और सभंग दो प्रकार हो सकते हैं। अभंग में पदों को तोड़ा नहीं जाता है और सभंग में अपनी इच्छानुसार तोड़ा जाता है। सेनापति ने इन दोनों का खूब वर्णन किया है। कवित्त-रत्नाकर की पहली तरंग में इनके अनेक उदाहरण मिलते हैं।[2] उन सबको यहाँ उद्धृत करना अनावश्यक विस्तार बढ़ाना होगा। उक्त पद में नारी छूटना का अर्थ नायिका का वशीभूत न होना और प्राणान्त होना दोनों लगाया गया है। दोनों अर्थों को बैठाने में कवि को पूरी सफलता मिली है।

अनुप्रास—श्लेष तथा अनुप्रासों का प्रयोग सेनापति ने अपने काव्य में बहुत अधिक किया है। अपनी कविता में सरसता लाने के लिए इसका प्रयोग उन्होंने किया है और उसमें अधिक सफलता भी मिली है। उनकी इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप कवित्त-रत्नाकर की पाँचवीं तरंग में कुछ ऐसे छन्दों की योजना की गई है जो प्रायः एक ही अक्षर से बने हुए हैं। उदाहरण के लिए देखिए—

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।७२।
२. वही १।२८, ४, ... ५२, ५८ आदि।

लोली लल्ला लल्लली लै लो लीला लाल।
लालौ लीलौ लोल लै लै लै लीला लाल ॥[1]

एक दूती का कथन देखिए—

हरि हरि हारी हारिहै हेरि, हरी हेरि।
हीरे हीरे हार है रे हरि हीरै हेरि ॥[2]

इन छन्दों में केवल कवि का चमत्कार दिखाया गया है। इनका अर्थ उतना अच्छा नहीं है जितना इनमें मानसिक श्रम करना पड़ता है। इसी प्रकार एक और अनुप्रास का उत्तम उदाहरण देखिए—

नीकी मति लेह, रमनी की मति लेहु मति,
सेनापति चेत कछु पाहन अचेत है।
करम करम करि करमन कर, पाप
करम न कर मूढ़, सीस भयौ सेत है।
आवै बनि जतन ज्यौं, रहै बनि जतनन,
पुन्न के बनिज तन मन किन देत है।
आवत बिराम, बैस बीती अभिराम, तातैं
करि बिसराम भजि रामैं किन लेत है ॥[3]

इस पद की प्रथम पंक्ति में ही कवि पूरे पद का सारांश बता दे रहा है कि रमणी की मति न ग्रहण कीजिए अन्यथा संसार में कष्ट होगा। प्रायः प्रत्येक पंक्ति में अनुप्रास की सुन्दर छटा है।

उपमा—कवि का अपनी भाषा पर पूर्ण अधिकार है इसलिए उपमाओं का प्रयोग इन्होंने अत्युत्तम किया है। सुन्दर उपमा का प्रयोग कवि की अनुभवशीलता का परिचायक होता है। उपमाएँ उसकी विज्ञता को प्रकट करती हैं। परम्परित उपमा का ही कवि का प्रयोग देखिए—

बिंब हैं अधर-बिंब, कुंद से कुसुम दंत,
उरज अनार निरखत सुखकारी है।
राजै भुजलता, कोटि कंटक कटाछ अति,
लाल-लाल कर किसलै के अनुकारी है।
सेनापति चरन बरन नव पल्लव के
जंघन कौं जुग रंभा थंभ दुति धारी है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ५।७३।
२. वही, ५।७९।
३. वही, ५।११।

मन तौ मुनिन हू कौ, जो वन-विहारी हुतौ,
सो तौ मृगनैनी तेरे जोवन विहारी है ।।[1]

यहाँ कवि ने परम्परित उपमानों का ही प्रयोग अपने ढंग से किया है । इसी प्रकार उपमा के सभी प्रभेदों के उदाहरण कवित्त-रत्नाकर से प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

रूपक—

वरन वरन तरु फूले उपवन वन,
सोई चतुरंग संग दल लहियत है ।
वंदी जिमि बोलत विरद वीर कोकिल हैं,
गुंजत मधुप गान गुन गहियत है ।
आवै आस-पास पुहुपन की सुवास सोई
सौंधे के सुगंध मांझ सने रहियत है ।
शोभा कौं समाज, सेनापति सुख-साज, आज
आवत वसंत रितुराज कहियत है ।।[2]

रंग-विरंगे उपवन के फूल ऋतुराज की चतुरंगी सेना हैं । कोयल और भौंरों की गुंजार उसके वन्दीजनों के गान हैं । फूलों की मादक गंध उसे आत्मविभोर किए हुए है । सौन्दर्य से सम्पन्न, सुख से समृद्ध वसंत अपनी शाही समृद्धि के साथ आगमन कर रहा है, सारी दुनिया उसकी प्रतीक्षा में लगी है । इसी प्रकार सांग रूपक का एक और उदाहरण देखिए—

लहुरी लहरि दूजी ताँति सी लसति, जाके
वीच परे भौंर फटिका से सुधरत हैं ।
परे परवाह पानि ही में जे वसत सदा,
सेनापति जुगति अनूप वरनत हैं ।
कोटि कलिकाल कलमष सव काक जिमि,
देखे उड़ि जात पात पात ह्वै नसत हैं ।
सोहन गुलेला से वलूला सुरसरि जू के
लोल हैं कलोल ते गिलोल से लसत हैं ।।[3]

यहाँ रूपक के द्वारा गंगा की महिमा गाई गई है । सांसारिक सभी पाप इस सुरसरि के स्पर्श से समाप्त हो जाते हैं ।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, २।२५ ।
२. वही, ३।१ ।
३. वही, ५।६४ ।

संदेह अलंकार—

पच्छन कौं धरे किधौं सिखर सुमेर के हैं,
बरसि सिलान, क्रुद्ध जुद्धहिं करत हैं।
किधौं मारतंड के द्वै मण्डल अडंबर सौं,
अंबर मैं किरन की छटा बरसत है।
मूरति कौं धरे सेनापति द्वै धनुरवेद,
तेज रूपधारी किधौं अस्त्रनि अरत हैं।
हेम-रथ बैठे, महारथी हेम बानन सौं,
गगन में दोऊ राम-रावन लरत हैं॥[1]

सन्देह के द्वारा राम और रावण की भयंकर युद्ध-लीला को उपस्थित करने का अच्छा प्रयास कवि ने किया है। सन्देह अलंकार के और भी पदों में अच्छे प्रयोग पाए जाते हैं।[2]

भ्रांतिमान—

सिसिर में ससि कौं सरूप पावै सविताऊ,
घाम हू मैं चाँदिनी की दुति दमकति है।
सेनापति होत सीतलता (?) है सहस गुनी,
रजनी की झाँईं वासर (?) में झमकति है।
चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है।
चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलिन सकति है॥[3]

जाड़े की विपन्नता में दिन भी रात जैसी ही स्थिति बनाए रहता है, इसीलिए प्रकृति के पदार्थों को भ्रम हो जाता है कि दिन होता ही नहीं है।

अनन्वय—

चंद दुति मंद कीने, नलिन मलिन तैं ही,
तो तें देव अंगनाऊ रंभादिक तर है।
तोसी एक तुही, अरु तोसे तेरे प्रतिबिंब,
सेनापति ऐसे सब कवि कहत रहैं।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ४।६४।
२. वही, ४।८, ३।३५।
३. वही, ३।५०।

समुझैं न वेई, मेरे जान यों कहत जेई,
प्रतिबिंब वैह तेरे भेष निरंतर हैं।
यातैं मैं विचारित प्यारी परे दरपन बीच,
तेरे प्रतिविंव पै न तेरी पटतर है ॥[1]

अनन्वय अलंकार में उपमेय और उपमान दोनों एक ही होते हैं। उनका कारण यह होता है कि उपमेय के समान गुण वाला उपमान कवि को प्राप्त नहीं होता है। दुनिया में वह अकेली वस्तु होती है। यहाँ ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने अनन्वय अलंकार के उदाहरण के लिए ही इस पद की रचना की है।

व्यतिरेक—

मंद मुसकान कोटि चंद तें अमंद राजै,
दीपति दिनेस कोटि हू तें अधिकानियै।
कोटि पंचवान हू तें महा वलवान, कोटि
काम धेनु हू तें महादानि जग जानियै।
और ठौर झूंठो वरनन ऐतौ सेनापति,
सीतापति याहू तें अधिक गुन-[illegible]यै।
ऐसी अति उकति जुगति मो वतावौ जासों,
राजा राम तीनि लोक नाइक वख[illegible][2]

यहाँ उपमेय राम की विशेषता उपमान चन्द, सूर्य, [illegible]देव, कामधेनु से अच्छी वताई गई है। इसलिए यहाँ व्यतिरेक का सुन्दर उदाहर[illegible]स्थित होता है।

विशेषोक्ति—

ज्यों ज्यों सखी सीतल करति उपचार सब,
त्यों त्यों तन विरह की विथा सरसाति है।
ध्यान कों धरत सगुनौतियौ करतु तेरे,
गुन सुमिरत ही विहाति दिन-राति है ॥[3]

सखियाँ नायिका की विरहाग्नि की शान्ति के लिए जितना ही उपचार करती हैं उसकी विरह-ज्वाला उतनी ही वढ़ती जाती है। परिपूर्ण कारण के होते हुए भी कार्य नहीं हो पा रहा है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, २।५३।
२. वही, ४।४।
३. वही, २।३६।

उत्प्रेक्षा—इस अलंकार का सेनापति ने अधिक उपयोग किया है। उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं।

वस्तूत्प्रेक्षा—

उदित बिमल चन्द, चांदनी छिटकि रही,
राम कैसौ जस अध ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
मानहु जगत छीर-सागर मगन हैं॥[1]

यहाँ विमल चाँदनी राम के यश की तरह फैली हुई है, ऐसा जान पड़ता है कि चाँदनी नहीं सृष्टि पर क्षीर सागर फैला हुआ है। इसके और भी अनेक उदाहरण कवित्त-रत्नाकर में प्राप्त हैं।[2]

हेतूत्प्रेक्षा—

बरन्यौ कबिन कलाधर कौं कलंक, तैसौ,
को सकै बरनि, कवि हू की मति छीनी है।
सेनापति बरनी अपूरब जुगति ताहि,
कोबिद बिचारी कौन भाँति बुद्धि दीनी है।
मेरे जान जेतिक सौं सोभा होत जानी राखि,
तेतिकै कलान रजनी की छबि कीनी है।
बड़तौ के राखे, रैनि हू तें दिन ह्वै है, यातें,
अगरी मयंक तें कला निकासि लीनी है॥[3]

ब्रह्मा ने चन्द्रमा को सम्पूर्ण कलाओं का आगार इसलिए नहीं बनाया कि दिन की महत्ता बनी रहे। केवल कुछ कलाओं को ही चन्द्रमा को प्रदान किया, कुछ को उसमें से निकाल लिया है। शायद इसी कारण चन्द्रमा की कालिमा आज भी दिखाई देती है। यह कालिमा नहीं चन्द्रमा का खाली स्थान है जहाँ से कलाओं को निकाल लिया गया है।

फलोत्प्रेक्षा—

सेनापति ऊंचे दिनकर के चलति लुवैं,
नद, नदी, कुवैं कोंपि डारत सुखाइ कै।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ३।४०।
२. वही, २।३८, ३।१५।
३. वही, ३।४।

पुकार पहुँचने के पूर्व ही ईश्वर का सहायता के लिए पहुँचना अत्यन्तातिशयोक्ति है।

अक्रमातिशयोक्ति—

कोई एक गाइन अलापत हो साथी ताके,
लागे सुर दैन, सेनापति सुख-दाइ कै।
तौ ही कही आय, सुर न दीजै प्रवीन, हौं
अलापिहौं अकेलौ, मित्त सुनौ चित्त चाइ कै।
धोखे 'सुरनदी जै' के कहत-सुनत, भए
तीन्यौ तीनि देव, तीनि लोकन के नाइकै।
गाइन गरुड़ केतु भयौ, द्वै सखाऊ भए
धाता महादेव, बैठे देव लोक जाइ कै॥[1]

गायक के साथी ने अपने सहयोगी को मना किया कि आप 'सुर न दीजै' मैं अकेला ही अलापूँगा। धोखे से उसके मुख से 'सुर नदी जै' निकल गया। फिर क्या था? सभी देवगण प्रभावित हो गए। यहाँ कार्यकारण बिना क्रम के एक साथ ही हो गए हैं इसलिए अक्रमातिशयोक्ति अलंकार है।

चपलातिशयोक्ति—

चले तै तिहारे पिय बाढ़्यौ है वियोग जिय,
रहियै उदास छूटि गयौ है सहाई सौ।
लोचन स्रवत जल, पल न परति कल,
आनंद कौं साज सब धर्‌यौ है उठाइ सौ।
सेनापति भूले से सदा रहियत तौतैं
ज्ञान, प्रान, तन, मन लीनौ है चुराइ सौ।
कछू न सोहाइ, दिन राति न बिहाइ, हाइ
देखे तैं लगन अब अजर सौं पाइसौ॥[2]

प्रिय के चले जाने के बाद नायिका की अत्यन्त कारुणिक स्थिति हो जाएगी। उसी स्थिति का ज्ञान प्रिय को वह करा रही है। प्रिय चला जाएगा इसकी सूचनामात्र से उसकी हालत खराब हो रही है।

प्रतीप—

तेरे नीकी बसुधा है वाके तौ न बसुधा है
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति भानियै।

१. कवित्त-रत्नाकर, ५।६३।
२. वही, २।२२।

सूर सभा तेरी जोति होति है सहसगुनी
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै।
सेनापति सदा बड़ी साहिबी अचल तेरी
निस-दिन चंद चल जगत बखानियै
महाराज रामचंद चंद तें सरस तू है
तेरी समता कौ चंद कैसे मन आनियै ॥[1]

यह श्लेष-वर्णन का पद है लेकिन इसमें प्रतीप अलंकार है। श्लेष अलंकार नहीं है। इसमें उपमानों को उपमेय से घटकर बताया गया है। राजा रामचन्द्र को चन्द्रमा से अधिक सम्पन्न एवं वैभवशाली बताया गया है। सेनापति ने प्रतीप अलंकार का प्रयोग कवित्त-रत्नाकर में बहुत अधिक किया है। इसके अनेक उदाहरण पहली तरंग में ही मिल जाएँगे।

व्याज-स्तुति—

धीवर कौं सखा है, सनेही बन चरन कौं,
गीध हू कौं बन्धु सबरी कौं मिहमान है।
पंडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं
छाती विप्र-लात कौं धरैया तजि मान है।
व्याध अपराध-हारी स्वान समाधान-कारी
करै छरी दारी, बलि हू कौं दरवान है।
ऐसौ अवगुनी! ताके सेइबे कौं तरसत,
जानियै न कौन सेनापति के समान है ॥[2]

यहाँ ईश्वर की उसके कारनामों को दिखाकर स्तुति की गई है। उसके कार्यों द्वारा निन्दा के बहाने प्रशंसा की गई है। उसे धीवर का सखा, बन्दरों का मित्र, गीध का बन्धु, सबरी का मेहमान, पांडवों का दूत, अर्जुन का सारथी, बहेलिये के अपराध को दूर करने वाला आदि कहकर उसकी व्याजस्तुति की गई है।

उल्लेख—

अमर-अवन, दल-दानव-दवन मन
पवन-गवन पुजवन जन चाइ कौं।
कामना कौं बरसन, सदा सुभ दरसन,
राजत सुदरसन चक्र हरि राइ कौं ॥[3]

---

1. कवित्त-रत्नाकर १।७६।
2. वही, ५।१९।
3. वही, ५।१३।

यहाँ ईश्वर का अनेक प्रकार से वर्णन किया गया है। जहाँ एक ही व्यक्ति का अनेक रूपों में वर्णन किया जाता है वहाँ उल्लेख अलंकार होता है।

अर्थान्तरन्यास—

पति के अछत, सुरपति जिन पति कीनी,
जाके नख-सिख, रोम-रोम भर्‌यौ पाप है।
देह दुति गई, तई, वन में परवान भई
लाग्यौ बिकराल रिषिराज कौं सराप है।
सोई है अहिल्या, सिय-सिवा के समान भई,
पतिव्रत पाइ पायौ सती कौं प्रताप है।
सेनापति बेद में बखानैं, तीनि लोक जानैं,
सो तौं महाराजा रामचंद कौं प्रताप है॥[1]

यहाँ प्रस्तुत अर्थ का समर्थन अप्रस्तुत अर्थ द्वारा किया जा रहा है। अहिल्या की विशेषताओं को बताते हुए कवि ईश्वर की कृपालुता की ओर संकेत कर रहा है। इसी माध्यम में अहिल्या का भी गुणगान करता जा रहा है। यह अर्थान्तरन्यास का सुन्दर उदाहरण है।

प्रौढोक्ति—

मालती की माल तेरे तन कौं परस पाइ,
और मालतीन हू तैं अधिक बसाति है।
सोने तैं सरूप, तेरे तन कौ अनूप रूप,
जात रूप-भूषन तैं और न सुहाति है।
सेनापति स्याम तेरी सहज निकाई रीझे,
काहे कौं सिंगार कै कै बितवति राति है।
प्यारी और भूषन कौं भूषन है तन तेरौ,
तोरियै सुबास और बास बासी जाति है॥[2]

यहाँ कवि का कथन है कि मालती की माला से अधिक सुन्दर तेरा शरीर स्वतः है, स्वर्णिम आभूषण से अधिक आकर्षक तेरा वर्ण है, तेरी ही गंध से दुनिया के पुष्पों को गंध प्राप्त होती है, इसलिए शृंगार करने में समय नष्ट न कर। यहाँ उत्कर्ष के हेतु के न रहने पर भी उसकी कल्पना कर ली गई है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ५।४८।
२. वही, २।२८।

संसृष्टि—

> छूटे आवैं काज भिन्न करत संजोए साज
> अवगुन गहै नेह रूप सरसात है।
> तीछन करयौ है जातें होति पति जोति करै
> लाल उर लागे अरि गात सियरात है।
> सेनापति बरने समान करि दोऊ तिनैं
> जानत हैं जान जाके ज्ञान अवदात है।
> निसान कौं पाइ परै घन ही के अंतर तैं
> छूटि जात मान जैसे बान छूटि जात है॥[1]

यहाँ प्रथम पंक्ति में क्रमसंगत अलंकार, 'नेह रूप सरसात' में दृष्टान्त, 'लाल उर लागे अरि गात सियरात' में विरोधाभास पूरे पद में श्लेष और उपमा अलंकार है। इस प्रकार कई अलंकारों की संसृष्टि की गई है। इसी प्रकार अलंकार के भी उदाहरण पहली तरंग के अनेक पदों में मिलते हैं।

इससे कवि की अलंकरण की प्रवृत्ति का आभास मिलता है। कविता में चमत्कार लाने का कवि को विशेष शौक रहा है। इसीलिए विभिन्न अलंकारों का इनमें प्रयोग पाया जाता है। अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों की ओर इनकी रुचि विशेष रही है। इसी कारण शब्दालंकारों की ओर कवि का झुकाव अधिक रहा है। श्लेष अलंकारों का वर्णन इसी कारण कवि ने सर्वाधिक किया है।

चित्रालंकार-कमलबंध :

चमत्कार तथा अलंकारों के प्रयोग द्वारा कवि की प्रौढ़ भाषा शक्ति एवं बौद्धिक विकास का पता चलता है। चमत्कार-प्रदर्शन के व्यामोह में पड़ जाने के कारण चित्रालंकारों की योजना इन्होंने बनाई है। इनमें कमलबन्ध का एक उदाहरण देखिए—

> को मंडन संसार ? गीत मंडन पुनि को है ?
> कहा मृगपति कौं भच्छ ? कहा तरुनी मुख सोहै ?॥
> को तीजौ अवतार ? कवन जननी गन रंजन ?
> को आयुध बलदेव हृदय दानव-दल गंजन ?॥
> राज अंग निज रंग पुनि कहा नरिंद रावत सकल ?
> सेनापति राखत कहा ? सीतापति कौं याहु बल॥[2]

---

१. कवित्त-रत्नाकर १।८२।
२. वही, ५।६८।

इसी प्रकार दो और छन्दों में कमलबन्ध का ही कवि ने चित्रण किया है।[1] इनके चित्रण में कवि के बौद्धिक श्रम तथा उसके परंपरा के व्यामोह का पता चलता है। इसी व्यामोह में पड़कर उसने इन चित्रालंकारों को दिखाया है। कवित्त-रत्नाकर की पाँचवीं तरंग के अन्त में इसी प्रकार बौद्धिक चमत्कार दिखाने वाले छन्दों को कवि ने रखा है।[2] इन छन्दों से कवि का बौद्धिक आयास मात्र ज्ञात होता है। इनसे न कोई चित्र बनता है और न अच्छा अर्थ ही निकल पाता है।

छंद :

सेनापति का कवित्त-रत्नाकर मुक्तक काव्य है। तरंगों में संजोकर इनके भक्तिकाव्य को प्रबन्धात्मकता प्रदान करने की कोशिश की गई है, परन्तु इसमें सफलता नहीं मिली है। भक्तिकाव्य का कोई भी पद अपनी सम्बद्ध घटना के लिए दूसरे पदों पर आश्रित नहीं है। उसको अलग कर देने पर भी उसका आकर्षण ज्यों का त्यों बना रहता है। इसलिए इनका साहित्य मुक्तक काव्य की श्रेणी में रखा जाना चाहिए।

मुक्तक काव्य में गीतों की प्रधानता होती थी। सेनापति ने गीत न लिखकर कवित्त, छप्पय, कुंडलिया और दोहा छन्द लिखे हैं। इनके कवित्त छन्द इन्हें विशेष प्रिय हैं। इसीलिए इनका प्रयोग अपनी रचना में बहुत अधिक इन्होंने किया है। प्रायः इनकी पूरी रचना इसी छन्द में लिखी गई है। अन्य छन्दों का प्रयोग जगह-जगह कवि ने किया है।

सेनापति भाषा के प्रकांड पण्डित थे। अपने ज्ञान का प्रकाशन भी जगह-जगह उन्होंने किया है। इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने अमत्त छन्द का एक पद प्रस्तुत किया है जिसमें मात्राओं का सर्वथा अभाव होता है। वह पद है—

> असरन सरन, सकल खल करषन,
> दशरथ तनय, सघन अघ धरषन।
> जलज जयन, चर अचर अयन, जल
> मदन सयन, अरचन जन हरषन।
> अचल धरन, गज दरद दलन, जग
> रछन करन, सस-धर गन दरसन।
> नरक हरन, जय कहत तरत नर,
> अरचन चरन गगन-चर अनगन ॥[3]

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ५।६७, ६८।
२. वही, ५।७०-७६।
३. वही, ५।७०।

इसी प्रकार इस छन्द के आगे के छन्दों में भी कवि की प्रकाशन प्रवृत्ति ही झलकती है। एक ही अक्षर वाले छन्दों की योजना कवि ने इसीलिए की है।[1] कवित्त-रत्नाकर की पाँचवीं तरंग के छन्द ७३ में कवि ने केवल 'ल' अक्षर से काम लिया है।

सेनापति ने अपने प्रचलित समय के उपयुक्त छन्दों का सर्वथा उपयोग किया है। उनका समय रीति की ओर अग्रसर था इसलिए उन्होंने उन्हीं छन्दों की ओर ध्यान दिया जो उस समय अधिक प्रचलित थे अर्थात् रीतिकाव्य में प्रयुक्त होते थे और अपने प्रयास में कवि को पूरी सफलता मिली है।

भाषा :

सेनापति की भाषा ब्रजी थी। ब्रजभाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार था। उसे अपनी इच्छानुकूल इसी कारण उन्होंने ढालने में सफलता पाई है। उनकी भाषा उनके हृदय से निकले हुए उद्गारों से ओत-प्रोत है यद्यपि उसमें अपना निजी सौन्दर्य अधिक नहीं है। भाषा का सौन्दर्य भावों की तन्मयता के फलस्वरूप न होकर अलंकारों की तड़क-भड़क के कारण ही है।[2] यह गुण तत्कालीन हिन्दी के प्रायः सभी कवियों में था। रीति कवियों का यह विशेष गुण था। फिर भी सेनापति की भाषा अलंकारों के वशीभूत होकर भावों को विकृत करने वाली नहीं है। उसमें चित्र-चित्रण की शक्ति प्रस्फुटित होती गई है और भावनाएँ साथ-साथ तीव्रतर होती गई हैं। कोई भाव अलंकार भार से कहीं भी हल्का होने नहीं पाया है। वस्तुतः सेनापति ब्रजभाषा के दक्ष कवि थे। इनका श्लेष वर्णन इस बात का प्रमाण है। साधारण से साधारण शब्दों में दो अर्थों को ध्वनित करने की शक्ति भर देना कवि के भाषा प्रयोग की शक्ति का ही द्योतक है। भाषा की आत्मा से सम्पूर्ण परिचित होने पर ही यह कार्य सम्भव है।

सेनापति संस्कृत के विद्वान् थे। ब्रजभाषा में रचना करते हुए संस्कृत की ओर भी उनका आकर्षण दिखाई देता है। कहीं-कहीं यह आकर्षण प्रकाश में आया है। संस्कृत-प्रधान शब्दावली का इनका एक छप्पय देखिए—

श्री वृन्दावन-चंद सुभग धाराधर सुन्दर।
दनुज-बंस-बन-दहन, बीर जदुबंस-पुरन्दर।
अति बिलसनि बनमाल, चारु सरसीरुह लोचन।
बक [illegible], बिहित बसुदेव विमोचन।
सेनापति कमला हृदय, कालिय-फन-भूषन चरन।
कल्यानद [illegible] सदा गोबरधन गिरिवर-धरन ॥[3]

संस्कृत के तत्सम शब्दों से पूरा पद भरा हुआ है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी संस्कृत तत्सम शब्दों के उदाहरण मिलते हैं। इससे कवि की विज्ञता का परिचय मिलता है।

सेनापति के समय तक विदेशी भाषाओं का प्रभाव व्यापक रूप में हो चुका था। साधारण बोल-चाल की भाषा में फारसी और अरबी के शब्दों का प्रयोग अवाध गति से हो रहा था। किसी कवि का उनसे बचकर चलना उस परिस्थिति में सम्भव न था। सेनापति ने भी उनका प्रयोग अपनी भाषा में किया है।

फारसी के प्रयुक्त इनकी भाषा के शब्द हैं फानुस, पाइपोस, बरदार, दादनी, रोसन, समादान, कौल, मिट्टी, आसना, गोसे, ज्यारी, रुख, बाजी, गिरह, गरद, जरद, गरूर, गरज, जवाहिर, हमाम, सुथरी, मुहर, यारी, रजाई, दुलहिन आदि। इसी प्रकार अरबी के भी कुछ शब्द हैं जैसे इतबार, महल, निवास, अरस इत्यादि। खड़ीबोली के रूप भी इनकी भाषा में मिलते हैं जैसे 'कोइ महाजन ताकी सरिकौं न पूजै नभ'[1] में कोइ शब्द खड़ी बोली का है।

सेनापति की भाषा में ऐसा प्रवाह पाया जाता है जो कवि के चित्रों को सामने लाकर खड़ा कर देता है। इनकी रचना के किसी पद को पढ़कर पाठकों को असन्तोष इसी कारण नहीं होता है। पद का पूरा चित्र सामने खड़ा हो जाता है। कवित्त-रत्नाकर की दूसरी तथा तीसरी तरंगों में ऐसे ही पद पाए जाते हैं। पहली तरंग में श्लेष का वर्णन है फिर भी कवि की भाषा प्रवहमान बनी हुई है।

कवित्त-रत्नाकर में ओज तथा प्रसाद गुण प्रधानता से पाए जाते हैं। ओज गुण के लिए शब्दों के द्वित्व रूप को इन्होंने अपनाया है। उदाहरणार्थ—

> पिक्खि हरिन मारीच, थप्पि लक्खन सिय तत्थह।
> चल्यौ बीर रघुबत्ति क्रुद्ध उद्धत धनु हत्थह।
> परत पग्ग-भर मग्ग, कित्ति सेनापति बुल्लिय।
> जलनिधि-जल उच्छलिय, सब्ब पब्बै गन डुल्लिय।
> दब्बिय जु छित्ति पत्ताल कहै, भुजंग-पत्ति भग्गिय सटकि।
> रक्खिय जु हट्ठि सुट्ठिय कठिन, कमठ पिट्ठि टुट्टिय चटकि॥[2]

इसी प्रकार की भाषा कवित्त-रत्नाकर की चौथी तरंग के छन्द सं० १५, १६, ३०, ४५ आदि में भी हैं। इन स्थलों पर द्वित्व वर्णो द्वारा अनुप्रास की योजना कवि ने अच्छी की है। वस्तुतः ओज वर्णन के अवसर पर वीरगाथा काल की शैली को कवि ने अच्छा माना है। इसके लिए अनुप्रास और शब्दों के द्वित्व रूपों का प्रयोग किया गया है।

---

[1] कवित्त-रत्नाकर, १।६६।
[2] वही, ४।३०।

प्रसाद गुण का प्रयोग पहली तरंग के अतिरिक्त कवित्त-रत्नाकर में सर्वत्र पाया जाता है। भाषा की सरलता तथा सुबोधता इसके निर्माण में सहायक होती है। सेनापति की भाषा का यही गुण रहा है। सरलतम भाषा में उच्च भावों को व्यक्त कर देना इनकी वाणी का प्रधान गुण है। इसी कारण प्रसाद गुण का निर्माण स्वभावत: होता गया है। कहीं-कहीं ओज और प्रसाद का मिश्रित रूप भी कवित्त-रत्नाकर में पाया जाता है। इन स्थलों पर भी कवि की वाणी पूर्ण सफल रही है।[1]

माधुर्य गुण का समावेश कवित्त-रत्नाकर में कम हुआ है। प्राय: ओज और प्रसाद का ही सर्वत्र प्रयोग किया गया है। फिर भी इनकी भाषा में माधुर्य गुण के उदाहरण प्राप्त होते हैं। एक पद इसी प्रकार का देखिए—

नूपुर कौं झनकाइ मन्द ही धरति पाइ
ठाढ़ी आइ आँगन, भई ही सांझी वार सी।
करता अनूप कीनी, रानी मैंन भूप की सी
राजै रासि रूप की, विलास कौं अधार सी।
सेनापति जाके दृग दूत ह्वै मिलत दौरि
कहत अधीनता कौं होत है सिपारसी।
गेह कौं सिगार सी सुरत सुख-सार सी, सो
प्यारी मानौ आर सी चुभी है चित आरसी ॥[2]

इसी प्रकार खोजने पर माधुर्य भाव के और भी उदाहरण मिल सकते हैं।

सेनापति ने लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग अधिक नहीं किया है। इनकी संख्या कवित्त-रत्नाकर में बहुत कम मिलती है। यदि कहीं इनका प्रयोग हुआ भी है तो भाषा में ऐसा घुल-मिलकर कि इनको अलग पहचानना कठिन-सा हो जाता है। यह कवि की भाषा की प्रौढ़ता का परिचायक है।

---

१. कवित्त-रत्नाकर, ४।७५।
२. वही, २।२४।

सप्तम अध्याय

सेनापति का भक्तिकाव्य

हिन्दी साहित्य में सेनापति का समय आते-आते भक्तिकाव्य का विस्तृत प्रवाह शिथिल हो रहा था। तुलसी की रामभक्ति ने उनसे बढ़कर भक्ति-काव्य रचने की शक्ति का साहस किसी में नहीं छोड़ा था। उस समय रीतिकाव्य का विस्तार हो रहा था। सेनापति उससे पूर्णरूपेण प्रभावित भी थे फिर भी उनका आकर्षण भक्तिकाव्य की ओर बना रहा। इसी कारण इन्होंने भक्तिपरक पद भी प्रस्तुत किया और उसमें रीति सम्बन्धी आलंकारिक छटा भी दिखाते गए। आध्यात्मिक क्षेत्र में रामभक्ति की ओर उनका झुकाव अधिक था। तुलसी की भाँति कृष्ण, शिव, गंगा आदि हिन्दू देवताओं के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा थी। इसीलिए सिद्धान्त की दृष्टि से सेनापति भी गोस्वामीजी की परम्परा में आते हैं। वे राम के उत्कट भक्त थे, पर कृष्ण तथा शिव से भी उन्हें विशेष स्नेह था और तदनुसार उन्होंने उनका भी गुणगान किया है। वैष्णव भक्त कवियों की भाँति सेनापति भी तीर्थ-सेवन, गंगा-स्नान आदि विषयों पर आस्था रखते थे, यद्यपि भक्ति के क्षेत्र में वे इन बातों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझते थे।[1] रामकथा के भी कुछ रुचिकर अंगों को ही चुनकर उन्होंने पद लिखा। पूरी रामकथा कहना अपना लक्ष्य नहीं बनाया बल्कि अपने उद्देश्य के अनुसार चले। विद्वानों के द्वारा जो कथा उन्होंने सुनी थी उसी का गुणगान किया। इस तथ्य को स्वयम् कवि ने स्वीकार किया है—

गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौं
संख्या सत कोटि जाकी कहत प्रवीने हैं।
नारद तें सुनी बालमीकि, बालमीकि हूं तें
सुनी भगतन जे भगति-रस भीने हैं।
एती राम-कथा ताहि कैसे कै बखानै नर,
जातें ए बिमल बुद्धि बानी के बिहीने हैं।

---

[1] उमाशंकर शुक्ल : कवित्त-रत्नाकर, पृष्ठ १६।

सेनापति यातें कथा-क्रम कौं प्रनाम करि,
काहू काहू ठौर के कवित्त कछू कीने हैं ॥[1]

सेनापति द्वारा राम-कथा के वर्णित अंश थोड़े ही हैं। उनमें प्रमुख स्थल सीता स्वयंवर, परशुराम-मिलन, मारीचवध, हनुमान का लंका जाना, सेतु-बंधन, हनुमान और राक्षसों का युद्ध, अंगद का रावण की सभा में जाना, राम-रावण युद्ध, हनुमान की वीरता, कुंभकरण-वध आदि का है। इस सूची से स्पष्ट यह ज्ञात होता है कि कवि की रुचि कथा के उन्हीं प्रसंगों की ओर रमी है जहां उसे पराक्रम, शौर्य आदि का वर्णन करने को मिला है। करुण आदि रसों का मार्मिक चित्रण करने की अपेक्षा उसे अपना पराक्रम दिखलाना अधिक श्रेयस्कर लगा है। इसी कारण राम कथा के मार्मिक स्थल वन-गमन, दशरथ-निधन, राम और भरत का मिलाप, लक्ष्मण शक्ति आदि अनेक स्थल छोड़ दिए गए हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि सेनापति को वीर रस का चित्रण करना अधिक पसंद था। राम कथा में प्रायः वे ही अंश कवि को आकृष्ट करते रहे हैं जो वीरोचित थे।

सेनापति ने राम-कथा के क्रम को अपनी इच्छानुसार रखा है। उदाहरण के लिए राम और परशुराम का संवाद तुलसीकृत रामचरितमानस में धनुष तोड़ने के पश्चात् कराया गया। सेनापति ने विवाहोपरान्त अयोध्या लौटते समय मार्ग में दोनों की भेंट कराई है। यह स्थल वाल्मीकि रामायण के अनुसार है। इससे यह ज्ञात होता है कि कवि की दृष्टि वाल्मीकि रामायण की ओर अधिक रही है। इस प्रकार तुलसी की भक्ति-पद्धति ने उन्हें प्रभावित किया परन्तु कथा वाल्मीकि को आकृष्ट करती रही है।

राम-कथा-वर्णन :

बाल-वर्णन से राम-कथा का आरम्भ होता है। सेनापति ने अपने पदों में राम का बाल-स्वरूप चित्रित किया है परन्तु अलग-अलग कई पदों में इसका चित्रण नहीं किया है। एक ही पद में सभी राजकुमारों की सूचना मात्र उपस्थित की है—

सोहैं देह पाइ किधौं चारि हैं उपाइ, किधौं
चतुरंग संपति के अंग निरधार हैं।
किधौं ए पुरुष रूप चारि पुरुषारथ हैं,
किधौं वेद चारि धरे मूरति उदार हैं।
सब गुन आगर, उजागर सरूप धीर,
सेनापति किधौं चारि सागर संसार हैं।

1. कवित्त-रत्नाकर ४।८।

सप्तम अध्याय

सेनापति का भक्तिकाव्य

हिन्दी साहित्य में सेनापति का समय आते-आते भक्तिकाव्य का विस्तृत प्रवाह शिथिल हो रहा था। तुलसी की रामभक्ति ने उनसे बढ़कर भक्ति-काव्य रचने की शक्ति का साहस किसी में नहीं छोड़ा था। उस समय रीतिकाव्य का विस्तार हो रहा था। सेनापति उससे पूर्णरूपेण प्रभावित भी थे फिर भी उनका आकर्षण भक्तिकाव्य की ओर बना रहा। इसी कारण इन्होंने भक्तिपरक पद भी प्रस्तुत किया और उसमें रीति सम्बन्धी आलंकारिक छटा भी दिखाते गए। आध्यात्मिक क्षेत्र में रामभक्ति की ओर उनका झुकाव अधिक था। तुलसी की भाँति कृष्ण, शिव, गंगा आदि हिन्दू देवताओं के प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा थी। इसीलिए सिद्धान्त की दृष्टि से सेनापति भी गोस्वामीजी की परम्परा में आते हैं। वे राम के उत्कट भक्त थे, पर कृष्ण तथा शिव से भी उन्हें विशेष स्नेह था और तदनुसार उन्होंने उनका भी गुणगान किया है। वैष्णव भक्त कवियों की भाँति सेनापति भी तीर्थ-सेवन, गंगा-स्नान आदि विषयों पर आस्था रखते थे, यद्यपि भक्ति के क्षेत्र में वे इन बातों की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझते थे।[१] रामकथा के भी कुछ रुचिकर अंगों को ही चुनकर उन्होंने पद लिखा। पूरी रामकथा कहना अपना लक्ष्य नहीं बनाया बल्कि अपने उद्देश्य के अनुसार चले। विद्वानों के द्वारा जो कथा उन्होंने सुनी थी उसी का गुणगान किया। इस तथ्य को स्वयम् कवि ने स्वीकार किया है—

> गाई चतुरानन सुनाई रिषि नारद कौं
> संख्या सत कोटि जाकी कहत प्रवीने हैं।
> नारद तें सुनी बालमीकि, बालमीकि हूं तें
> सुनी भगतन जे भगति-रस भीने हैं।
> एती राम-कथा ताहि कैसे कै बखानैं नर,
> जातें ए विमल बुद्धि बानी के विहीने हैं।

---

१ पं० उमाशंकर शुक्ल : कवित्त-रत्नाकर, पृष्ठ १६।

परी प्रेम-फंद, उर बाढ्यौ है अनन्द अति,
आछी मंद-मंद चाल चलति गयंद की ।
बरन कनक बनी, बानक बनक आई,
झनक मनक बेटी जनक नरिंद की ॥[1]

राम के मोहक स्वरूप का जादू सीता पर भी पड़ गया जिससे सीता की गति और अधिक मन्द हो चली। इन प्रेमियों की अद्भुत दशा अकथनीय हो गई। इन दोनों प्रेमियों का सौंदर्य-चित्रण इसी प्रकार अनेक पदों में कवि ने किया है।[2]

सीता-राम के विवाहोपरान्त परशुराम से कवि ने इनकी भेंट कराई है। इस अवसर पर परशुराम का विकट स्वरूप चित्रित करने में कवि को पूरी सफलता मिली है।[3] उसके विकराल क्रोध को देखकर राम भी विचलित हो उठे हैं। केवल परशुराम की जनेऊ की मर्यादा रखते हुए उन्होंने कहा—

लीनौ है निदान अभिमान सुभटाई ही कौं,
छांड़ी रिषि-रीति है न राखी कहनेऊ की ।
डारु रे हथ्यार, मार मार करैं आए, धरे
उद्धत कुठार सुधि-बुधि न भनेऊ की ।
सेनापति राम गाइ-ब्रिप्र कौं करै प्रनाम,
जाके उर लाज है विरह अपनेऊ की ।
आज जामदग्नि ! जानतेऊ एक घरी मांझ
होती जौ न ज्यारी यह जिरह जनेऊ की ॥[4]

इस अवसर पर लक्ष्मण-परशुराम संवाद कवि ने नहीं कराया है। राम को ही सीधे परशुराम से वार्ता करने दिया है। इसके पश्चात् मारीच-वध तथा सीता-हरण की घटनाओं का वर्णन होना चाहिए जिनकी कवि ने सूचना मात्र केवल एक-एक पदों में दी है।[5] इनमें कवि की वृत्ति नहीं रमी है। ऐसा जान पड़ता है कि कवि राम-कथा नहीं कहना चाहता है, अपनी इच्छा के अनुसार विषयों का चयन करके उन पर अपनी कविता का निर्माण करता है।

हनुमान का सीता की खोज में समुद्र पार करना तथा अपनी प्रचण्ड वीरता का दिखाना कवि को विशेष भाया है। उनकी तीव्रता का वर्णन करते हुए कहा गया है—

---

१. कवित्त रत्नाकर ४।३२।
२. वही, ४।३३।
३. वही, ४।२६-२८।
४. वही, ४।२७।
५. वही, ४।३०, ३१।

चल्यौ हनुमान राम बान के समान, जानि,
सीता सोध काज दसकंधर नगर कौं।
राम कौं जुहारि, बाहु बल कौं संभारि, करि
सबही के संसै निरवारि डारि उर कौं।
लागी है न बार, फांदि गयौ पारावार पार,
सेनापति कविता बखानैं बेग-बर कौं।
खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच,
दृगन कौं तारौ दौरि मिलै दिनकर कौं ॥[१]

पलक झपने मात्र में हनुमान ने सारी दूरी समाप्त कर दी। उनकी गति की सीमा असीम हो गई थी। यह कार्य करने के पूर्व राम की चरणरज हनुमान ने ली थी। सम्भवत: उसी की शक्ति ने उन्हें इतनी शक्ति प्रदान की। एक पद और इनकी तीव्रता का देखिए —

सेनापति महाराजा राम की चरन रज,
माथे लै चढ़ाई, है बढ़ाई देह बल मैं।
लै कै कर-मूठी माँझ कंचन अंगूठी, चल्यौ,
धीर गरजत साखा-मृगन के दल मैं।
एते मान कूद्यौ महा वेग सौं पवन-पूत,
पारावार पार फाँदि गयौ आध पल मैं।
दीनी न दिखाई, छाँह छोर धरी न छुराई, पर्‍यौ।
बोल की सी झाँई जाइ लंका के महल मैं ॥[२]

हनुमान ने प्रबल वेग से लंका में पहुँचकर आग लगा दी। उनकी इस अग्नि की ज्वाला से भयभीत होकर बड़वानल भी प्राण बचाकर भागा —

महा बलवन्त, हनुमंत वीर आतंक ज्यौं,
जारी है निसंक लंक विक्रम सरसि कै।
उठी सत-जोजन तैं चौगुनो झरफ, जरे,
जात सुर-लोक, पै न सीरे होत ससि कै।
सेनापति कछू ताहि बरनि कहत मानौं,
ऊपर तैं परे तेज लोक हैं बरसि कै।
आगम विचारि राम-बान कौं अगाऊ किधौं,
सागर तैं पर्‍यौ बड़वानल निकसि कै ॥[३]

---

१. कवित्त रत्नाकर, ४।३२।
२. वही, ४।३३।
३. वही, ४।३५।

हनुमान की लगाई अग्नि की भयंकरता इतनी अधिक थी कि वड़वानल को राम के चरणों का आगमन महसूस होने लगा। इसी कारण उसे पलायन करना पड़ा। इस अवसर पर कवि ने आलंकारिक चमत्कार दिखाते हुए कहा है—

कोप्यो रघुनाइक कौं पाइक प्रबल कपि,
रावन की हेम-राजधानी कौं दहत है।
कोटिक लपटैं उठी अम्बर दपेटे लेति,
तप्यौ तपनीय पयपूर ज्यौं बहत है।
लंका बरि जरि एते मान है तपत भई,
सेनापति कछू ताहि बरनि कहत है।
सीत माँझ उत्तर तैं, भानु भाजि दच्छिन मैं,
अजौं ताही आँच ही के आसरे रहत हैं ॥[1]

शीत ऋतु में सूर्य उत्तर से दक्षिण को चला जाता है अर्थात् दक्षिणायन हो जाता है क्योंकि उत्तर में हिमालय की बरफ से वह त्रस्त हो जाता है। उसकी इस प्रवृत्ति को कवि ने कहा है कि मानो दक्षिण में लंका की जलती हुई आँच के सहारे ही वह अपना अस्तित्व बनाए रख सकता है। इसी कारण दक्षिण को जाता है। इस प्रकार लंका-दहन का व्यापक चित्रण कवि ने अनेक पदों में किया है। सर्वत्र हनुमान की वीरता तथा ध्वस्त लंका का चित्र उपस्थित किया गया है।

लंका-दहन के पश्चात् सेतुबन्धन का चित्रण किया गया है। इस अवसर पर राम के [ब]ाणों की अग्नि से सिन्धु के जीव-जन्तुओं की अद्भुत स्थिति दिखाई गई है। देवताओं को भी समुद्र की चिन्ता सताने लगी है—

सेनापति राम-बान पाउकै बखानै कौन,
जैसी सिख दीनी सिंधुराज सौं रिसाइ कै।
ज्वालन के जाल जाइ पजरे पताल, इत,
छ्वै गयौ गगन, गयौ सूरजौ समाइ कै।
परे मुरझाइ माह-सफर फरफराइ,
सुर कहैं हाइ को बचावै नद-नाइ कै।
बूँद ज्यों तए की तवी, कमठ की पीठ पर।
छार भयौ जात छीरसिंधु छननाइ कै ॥[2]

सारा समुद्र भस्म होता जा रहा है मानो गरम तवे पर पानी की बूँदें छन-छना रही हों। जलचरों की दयनीय स्थिति अकथनीय हो गई है—

१. कवित्त रत्नाकर ४।३६।
२. वही, ४।४१।

सेनापति राम अरि सासना के साइक तें।
प्रगट्यौ हुतासन अकासन समान है।
दीन महा मीन, जीव-हीन जलचर जुरें,
बरुन मलीन कर मीडें पछितात हैं।
तब तौं न मानी, सिंधुराज अभिमानी,
अब जाति है न जानी कहा होत उतपात है।
संका तें सकानी, लंका रावन की रजधानी,
पजरत पारी धूरि-धानी भयौ जात है।[1]

जल में रहने वाले जलचर अत्यन्त दीन स्थिति में होकर हाथ मल-मल॰ पछता रहे है, इसी प्रकार जल में रहने वाले जन्तुओं की विह्वल स्थिति का कवि अनेक पदों में वणन किया है।[2] पर्वतों को उखाड़कर समुद्र में फेंका जा रहा है। इ॰ कार्य में सारी राम की सेना लगी हुई है। पर्वतों के जल में पड़ने पर जल का ऊप॰ उछलना ऐसा जान पड़ रहा है मानो जल सागर को छोड़कर आकाश की ओर भाग॰ का प्रयास कर रहा है—

आयसु अपार पारावार हूं के पाटिबे कौं,
सेनापति राम दीनौ साखा के मृगन कौं।
धारत चरन रज, सार-तन भए ऐसे,
हारत न क्यौं हू जे उखरात नगन कौं।
पब्बय परत पयपूर उछरत, भयौ,
सिंधु के समान आसमान सिद्ध गन कौं।
मानहु पहार के प्रहार तें डरपि करि,
छाँड़ि कै धरनि चल्यौ सागर गगन कौं।"[3]

इसी प्रकार अच्छी उक्तियों द्वारा कवि ने सेतु-बन्धन का विस्तृत वर्णन किया है। इस अवसर पर कवि की प्रतिभा अनायास पल्लवित होती गई है। अनेक पदों में सेतुवन्धन का चित्रण कवि करता गया है।[4]

सेतुबन्धन के पश्चात् अंगद की वीरता का कवि ने अनेक छन्दों में अच्छा वर्णन किया है। युद्ध में मतवाला होकर जिस समय उसने अपना पाँव रावण की राज्य-सभा में जमा दिया उस समय पृथ्वी का भार सँभालने वालों के लिए भी एक समस्या हो गई, दिग्गज भी दहल उठे—

---

१. कवित्त रत्नाकर ४।४२।
२. वही, ४।४३-४५।
३. वही, ४।४७।
४. वही, ४।४२-५२।

बलि कौ सपूत, कवि-कुल-पुराहूत,
रघुवीर जू कौ दूत, धारि रूप विकराल कौं।
जुद्ध-मद गाढ़ौ, पाउं रोपि भयौ ठाढ़ौ,
सेनापति बल बाढ़ौ, रामचन्द भुवपाल कौं।
कच्छप कहलि रह्यौ, कुंडली टहलि गए,
दिग्गज दहलि त्रास पर्‌यौ चक चाल कौं।
पाउं के धरत, अति भार के परत,
भयौ एकै है परत मिलि सपत-पताल कौं।[1]

अंगद का पाँव पड़ते ही पृथ्वी काँप उठी। उसने रावण को समझाया कि आप सीता को लौटा दें और राम के आश्रय की शरण लें अन्यथा कल्याण नहीं है—

सीता फेरि दीजै, लीजै ताही की सरन,
कीजै लंक हू निसंक, ऐसे जीजै आप हैं भली।
सूर-धर हर तें न ह्वै है धरहरि,
कुंभकरन, प्रहस्त, इन्द्रजीत की कहा चली।
देखौ सब देव, सिद्ध विद्याधर सेनापति,
धरि वीर बानी सौं पढ़त विरुदावली।
सागर के तीर संग लछन प्रवल वीर,
आयौ राजा राम दल जोरि कै महाबली।[2]

जिस समय युद्ध के लिए राम का प्रस्थान होगा उस समय शंकर भी उनको रोक नहीं सकते। कुंभकरण, प्रहस्त और मेघनाद जैसे आपके वीरों की उनके सम्मुख कुछ भी चल न सकेगी। वीरों के देवता उनकी विरुदावली गा रहे हैं। समुद्र के किनारे अपने भाई लक्ष्मण को साथ लेकर उनकी सारी सेना आ गई है। आप स्वयं उनसे क्षमा-याचना करें अन्यथा कल्याण नहीं है।

इसके बाद राम-रावण युद्ध-वर्णन व्यापक रूप में कवि ने किया है। यहाँ युद्ध तथा वीर रस का चित्रण करना कवि का लक्ष्य ज्ञात होता है। इसीलिए राम और रावण दोनों की प्रचंडता का कवि ने वर्णन किया है। दोनों की वीर-रस की मतवाली स्थिति का चित्र देखिए—

बीर रस मद माते, रन ते न होते हांते,
जुद्ध के निदान अभिमान चाप बान कौं।
सर बरषत, गुन कौं न करषत मानौ,
हिय हरषत जुद्ध करत बखान कौं॥

1. कवित्त रत्नाकर, ४।५५।
2. वही, ४।५६।

सेनापति सिंह सारदूल से लरत दोऊ,
देखि धधकत दल देव जातुधान कौं।
इत राजा राम रघुबंस कौं धुरंधर है,
उत दसकंधर है सागर गुमान कौं ॥[1]

एक ओर रघुवंशियों के धुरंधर वीर राम हैं और दूसरी ओर अभिमान के सागर रावण युद्ध में व्यस्त हैं। दोनों का युद्ध सिंह और शार्दूल का है। कोई किसी से जल्दी हटने वाला नहीं है। राम की वीर भाव से उत्तेजित मुद्रा का यह स्वरूप देखिए—

काढ़त निषंग तें न साधन सरासन में,
खैंचत चलावत न वान पेखियत है।
स्रवन मैं हाथ, कुंडलाकृति धनुप बीच,
सुन्दर वदन इक चक लेखियत है।
सेनापति कोप-ओप ऐन हैं अरुन-नैन,
संग्रर-दलन मैंन तैं विसेखियत है।
रह्यौ नत ह्वै कै अंग ऊपर कौ संगर मैं,
चित्र कैसौ लिख्यो राजा राम देखियत है ॥[2]

इस युद्ध में कुंभकरण के रण तांडव का विशद् वर्णन कवि ने किया है। यदि उसकी समर्थ भुजाएँ राम द्वारा काट न दी गई होतीं तो वह सूर्य-मण्डल को भी उखाड़ फेंकता।[3] उसकी पड़ी हुई विशाल काया को उठाना ही एक समस्या हो गई थी जिस पर काली कपाली को हँसी आती थी।[4]

रावण का आतंक पृथ्वी पर इतना अधिक था कि उसकी मृत्यु की सूचना भी देने की किसी की हिम्मत न थी। सरस्वती ने भी अपनी श्लिष्ट वाणी द्वारा यह बात कही—

सोहत विमान, आसमान मध्य भासमान
संकर विरंचि पुरहूत देव दानौ है।
करत विचार, कहत न समाचार,
डर-पत सब चार दसमुख आगे मानौ है।
सेनापति सारदा की देखौ चतुराई,
बात कही पै दुराई मन बैरी तै सकानौ है।

---

१. कवित्त रत्नाकर ४।५८।
२. वही, ४।६०
३. वही, ४।६२।
४. वही, ४।६३।

सेनापति ऐसे राजा राम कौं बिसारि जो पै
अर कौं भौजन कीजै सो धौं कौन फल है ॥[१]

मुक्ति और विलास, किसी भी प्रकार की कोई भी वस्तु यदि चाहिए तो राजा राम का सेवन कीजिए। सभी सांसारिक वस्तुओं के फलदाता भगवान राम हैं।

राम का राज्य समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त है। इनकी बराबरी करने वाला सुरासुर दूसरा कोई नहीं है। इनकी आशा छोड़कर अन्यत्र जाना सुधा सागर को त्याग कर कुएं की आशा लगाने के समान है। इसीलिए सेनापति उन्हीं की आशा करते हैं—

राम महाराज जाकौं सदा अविचल राज,
बीर बीरखंड जौ है छलन दुवन कौं।
कोऊ सुरासुर, ताकी सारि कौं न पूजै,
कौन तारौ धरै धाम धाम निधि के उवन कौं।
ताकी तजि आस, सेनापति और आस,
जैसे छाँड़ि सुधा-सागर कौं, आसरौ कुंजन कौं।
दुख तें बचाउ, जातैं होत चित चाउ,
मेरे सोई है सहाउ, राउ चौदहौ भुवन कौं ॥[२]

शिव की निद्धि, हनुमान की सिद्धि तथा विभीषण की समृद्धि राम-कृपा पर आधारित थी। चारों वेदों के सार सांसारिक सुखों का मूल सभी कुछ राम-नाम में निहित है। इन गुणों का स्मरण करके राम की शरण में जाना ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए —

सिव जू की निद्धि हनूमानहू की सिद्धि,
विभीषन की समृद्धि बालमीकि नैं बखान्यौ है।
बिधि कौं अधार, चार्‌यौ वेदन कौं सार,
जप जग्य कौं सिंगार, सनकादि उर आन्यौ है।
सुधा के समान भोग मुकति निधान महा
मंगल निदान सेनापति पहिचान्यौ है॥
कामना कौं कामधेनु, रसना कौ बिसराम,
धरम कौ धाम राम-नाम जग जान्यौ है ॥[३]

ईश्वर की व्यापक शक्ति का अनुमान करके ही सेनापति दीन भावना की ओर झुके। अपनी करुणासिक्त वाणी से ही आराधना करते हुए कहते हैं—

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।१९।
२. वही, ४।७३।
. वही, ४,७५।

देव दया-सिंधु, सेनापति दीन बन्धु सुनो,
आपने विरद तुम्हें कैसे विसरत हैं।
तुम ही हमारे धन, तो सौं बाँध्यौ प्रेम-पन,
और सौं न माने मन तोही सुमिरत है।
तोही सों वसाइ, और सूझै न सहाइ,
हम यातें अकुलाइ, पाइ तेरेई परत हैं।
मानौ कै न मानौ, करौ सोइ जिय जानौं,
हम तौ पुकार एक तोही सौं करत हैं ॥[१]

आप ही हमारे आराध्य देव हैं, आप ही को प्राप्त करना हमारा लक्ष्य है इसलिए आप ही का स्मरण करके आप ही के पगों पर गिरना मेरा धर्म है। आपके अतिरिक्त अन्यत्र मेरे लिए शरण नहीं है।

राम की अनन्य शक्ति को भली भाँति पहचान करके सेनापति ने उनकी शरण ग्रहण की है। भक्ति के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा उन्हें राम-भक्ति प्रिय ज्ञात हुई इसीलिए उसकी अपार महत्ता बताते हुए उन्होंने कहा कि—

लछि ललना है, सारदाऊ रसना है जाकी,
ईस महामाया हू कौं निगमन गायौ है।
लोच बिरोचन-सुधाकर लसत जाकौं नन्दन विधाता,
हर नाती जाहि भायौ है।
चारि दिगपाल है बिसाल भुजदंड जाके
सेस सुख-सेज, तेज तीनि लोक छायौ है।
महिमा अनंत सिय कंत राम भगवंत,
सेनापति सन्त भागिवंत काहू पायौ है ॥[२]

राम की इस महिमा को भाग्यशाली ही कोई प्राप्त कर सकता है। भगवान की भक्तों के प्रति विशेष दृष्टि रहती है। 'कुपेंड़े पड़े' जीवों को जब वह तारता रहता है तो सेनापति भी उसी के पेंड़े पड़कर प्रतीक्षा कर रहे हैं—

छाँड़ि कै कुपेंड़े पेंड़े परे जे बिभीषनादि,
तें हैं तुम तारे, चित-चीते काम करे हैं।
पेंड़ो तजि बन मैं, कुपेंड़े परी रिषि-नारी,
तारी ताके दोष मन मैं न कछू धरे हैं।
पेंड़ो तजि हम हू कुपेंड़े परे तरिबे कौ,
तारियें अपार कलमष भार भरे हैं।

सेनापति प्रभु पैंड़े परे ही जौ तारत हौ,
तौव हम तरिबे कौं तेरे पैंड़े परे हैं।[१]

कवि को यह विश्वास हो रहा है कि पैड़े पड़ने पर ही ईश्वर का मार्ग यदि खुल सकता है तो मैं भी अब वही रास्ता अपनाऊँगा जिससे विभीषण, अहिल्या आदि का कल्याण हुआ था।

राम का आश्रय प्राप्त करने के लिए सेनापति ने दैन्य-स्थिति का भी प्रदर्शन किया है। अपने को उनका सेवक होने योग्य भी न समझकर कहते हैं—

गिरत गहत बांह, घाम मैं करत छाँह,
पालत बिपत्ति मांह कृपा-रस भीनौ है।
तन क बसन देत भूख मैं असन,
प्यासे पानी हेतु सन, बिन माँगे आनि दीनौ है।
चौकी तुही देत, अति हेतु कै गरुड़-केतु,
हौं तौ सुख सोवत न सेवा परवीनौ है।
आलस की निधि, बुधि बाल सु जगत पति,
सेनापति सेवक कहा धौं जानि कीनौ है॥[२]

आप यदि दीनों पर विशेष कृपा करने वाले हैं तो मेरी सुधि क्यों नहीं लेते हैं। सेनापति की आत्मा इसीलिए हैरान है—

निगमन गायौ, गजराज-काज धायौ,
मोहि सन्तन बतायौ, नाथ पन्नगारि-केत हैं।
सेनापति फेरत दुहाई तोहि टेरत है,
होत न इत, जानियै न कित चेत है,
और हैं न तोसे, सोवै कौन के भरोसे,
कछू ह्वै रहे इकौसे, हौं न जानौं कौन हेत है।
तू कृपा-निकेत, तेरौ दीनन सौं हेत,
मोहि मोह दुख देत सुधि मेरी क्यों न लेत है॥[३]

इस प्रकार की दैन्य-भावना अनेक पदों में कवि ने व्यक्त की है।[४] सर्वत्र प्रायः उसकी आत्मा ईश्वर का सहारा चाहती है। ईश्वर पर उसे कुछ विश्वास भी हो गया था इसीलिए उसने कहा कि—

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।८।
२. वही, ५।२४।
३. वही, ५।२६।
४. वही, ५।२७-२८।

तुम करतार जन रच्छा के करनहार,
पुजवन हार मनोरथ चित चाहे के।
यह जिय जानि सेनापति है सरन आयौ,
हूजियै सरन महा पाप ताप दाहे के।
जौ कौहू कहौ कि तेरे करन न तैसे,
हम गाहक हैं सुकृति भगति रस लाहे के।
आपने करम करि हौं ही निबहौंगौ,
तौब हौं ही करतार, करतार तुम काहे को।[1]

यदि अपने कर्त्तव्यों का ही फल पाना है तो मैं स्वयं करतार हूँ क्योंकि कार्य करने वाला तो मैं ही हूँ फिर आप करतार कैसे बने हुए हैं। यहाँ साधक ने कुछ साहस से काम लिया है।

सेनापति ने अपने स्वामी के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया था। उनके कष्टों का आभास उनके स्वामी को ही होता था। इसीलिए उनकी आत्मा स्वतन्त्र होकर कहती है—

कोई परलोक सोक भीत अति बीतराग,
तीरथ के तीर बसि पी रहत नीर ही।
कोई तपकाल बाल ही तैं तजि गेह-नेह,
आगि करि आस पास जारत सरीर ही।
कोइ छाँड़ि भोग जोग-धारना सौं मन जीति,
प्रीति सुख दुख हू मैं साधत समीर ही।
सोवै सुख सेनापति सीतापति कै प्रताप,
जाकी सब लागै पीर ताही रघुबीर ही।[2]

कोई भी साधना करने में कवि को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। उनके कष्टों की आँच केवल उसके स्वामी तक ही रह जाती है। इसी कारण वह कहता है कि किसी भी प्रकार का विधान करने में मुझे कोई कष्ट नहीं है—

ताही भाँति ध्याऊँ सेनापति जैसे पाऊँ,
तन कंथा पहिराऊँ करौं साधन जतीन के।
भसम चढ़ाऊँ, जटा सीस मैं बढ़ाऊँ नाम वाही
के पढ़ाऊँ दुख हरन दुलीन के।
सर्व बिसराऊँ, उर तासौं उरझाऊँ,
कुंज बन बन छाऊँ, तीर भूधर नदीन के।

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।८६।
२. वही, ५।८६।

मन बहिराऊँ, मन ही मन रिझाऊँ,
बीन लै कै कर गाऊँ गुन वाही सुरबीन के ॥[१]

कंथा पहनकर योगी वेश धारण करना, जटा बढ़ाना, भस्म लगा
सभी कार्य कवि अपने प्रिय स्वामी को प्रसन्न करने के लिए कर सकता है
अपना कोई धर्म और नियम नहीं है जो उसके मार्ग में बाधक बने। उसक
स्वामी के लिए समर्पित है इसलिए उसका प्रत्येक कार्य स्वामी का ही होगा।

भगवान का आश्रय प्राप्त करने के लिए कवि ने जीवों में भय उत्पन्न
है। इष्टदेव की ओर आकृष्ट करने के लिए सांसारिक भयंकरता की उ
दिलाई है। इसी उद्देश्य से कहता है—

सागर अथाह, भौर भारी, विकराल गाह,
जद्यपि पहार हू तें दीरघ लहरि है।
देखि न डराहि, कतराहि मति बार,
बाउरे कछू न तेरौ तऊ तौ बिगरि है।
बांध्यौ जिन सिंधु, जो है दीनन कौं बंधु,
जिन सेनापति कुंजर की कीनी धरहरि है।
राम महाराज, धरि बिरद की लाज, सोई,
सजि कै जहाज कौं निवाहू पार कीनो है।[२]

यहाँ संसार का सागर अथाह है। इसे पार कर पाना सम्भव नहीं है वि
भी भगवान राम सहायक हैं। जो समुद्र को भी बाँधने में समर्थ है वह साधार
व्यक्ति का उद्धार क्यों नहीं करेगा। यदि आज भी मन राम में नहीं रमता है त
उसका उद्धार कैसे हो सकता है। इसीलिए कवि कहता है—

एरे मन मेरे, खोए बासर घनेरे,
करि जोष अभिलाष अजहूँ न उहरत है।
तजि कै विवेक, राम नाम कौं सरस रस,
सेनापति महा मोह ही मैं बिहरत है।
जद्यपि दुर्लभ तऊ और अभिलाष,
दैव जोग तें सुलभ, ज्यौं घुनच्छर परत है।
कीजियै कहाँ लौं तेरे मन की बड़ाई,
जातें मरन के जीबे कौं मनोरथ करत है।[३]

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।१७।
२. वही, ५।३४।
३. वही, ५।३५।

इसी प्रकार कवि ने मन को किसी भी प्रकार से राम में रमाने का प्रयत्न किया है। कवि ने हठ न करके बल्कि सहृदयता पूर्वक हृदय को उसी ओर झुकाया है। किसी संप्रदाय की ओर कवि की विशेष दृष्टि नहीं पड़ी है। साधारण वैष्णव भक्त की भाँति ईश्वर के सभी अवतारों में उसने अपनी आस्था दिखाई है। इसी कारण अनेक रूपों में उसने वैष्णव भक्ति की ही आराधना की है। उसके कुछ स्वरूप नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

कृष्ण-भक्त

रामायण की कथा की भाँति सेनापति ने कृष्ण-कथा का वर्णन नहीं किया है, परन्तु कृष्णावतार की लीलाओं के छिटपुट वर्णन वैष्णव भक्तों की भाँति अनेक स्थलों पर किये हैं। इन्होंने राम और कृष्ण में वस्तुतः भेद नहीं किया है बल्कि दोनों को एक माना है और दोनों की उपासना समान रूप से की है। उदाहरण के लिए एक पद देखिए जिसमें दोनों की आराधना की गई है—

> धीवर कौं सखा है, सनेही बनचरन कौं,
> गीध हू कौं बन्धु सबरी कौं मिहमान हैं।
> पांडव कौं दूत, सारथी है अरजुन हू कौं,
> छाती विप्रलात कौं धरैया तजि मान है।
> व्याध अपराध-हारी स्वान समाधान-कारी,
> करै छरीदारी, बलिहू कौं दरवान है।
> ऐसौ अवगुनी ताके सेइवे कौं तरसत,
> जानिये न कौन सेनापति के समान है॥[1]

किसी भी अवतार में कवि को कोई भेद ज्ञात नहीं होता है। इसी कारण वह एक सरल भक्त की भाँति भगवान की उपासना करता है। कृष्ण की मधुर मूर्ति की अगाध आराधना करते हुए कहता है—

> पान चरनामृत कौं, गान गुन गनन कौं,
> हरि कथा सुनि सदा हिय कौं हुलसिवौ।
> प्रभु के उतीरन की, गूदरीयौ चीरन की,
> भाल, भुज कंठ, उर, छापन कौं लसिवौ।
> सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
> वृन्दावन सीमा तें न बाहिर निकसिवौ।
> राधा-मन-रंजन की सोभा नैन कंजन की,
> माल गरे गुंजन की, कुंजन कौं बसिवौ॥[2]

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।१६।
२. वही, ५।२१।

कवि की अभिलाषा है कि भगवान के चरणामृत का पान करके उन्हीं का गुण गाता रहूँ। वैष्णवों के तिलक को धारण करके आजीवन वृन्दावन की ही सीमा में रहने की उसकी अटूट अभिलाषा है। उसे कृष्ण के कुंजों की स्मृति भूलने वाली नहीं है। इसी कारण वह वहीं निवास करना चाहता है जहाँ से कृष्ण की क्रीड़ास्थली दिखाई दे। अन्त में भाव-विह्वल होकर कवि कृष्ण की आराधना करता है—

> श्री बृन्दाबन-चन्द, सुभग धाराधर सुन्दर।
> दनुज-बंस-बन-दहन, बीर जदुबंस-सुन्दर।
> अति विलसति बनमाल, चारु सरसीरुह लोचन।
> बल बिदलित गजराज, विहित बसुदेव विमोचन।
> सेनापति कमला हृदय, कालिय-फन भूषन चरन।
> करुनालय सेवौ सदा, गोबरधन गिरिवर-धरन॥[1]

अनेक राक्षसों का दमन करने वाले कृष्ण की जीवनगाथा का उसे स्मरण है इसीलिए वह उनकी प्रार्थना करता है और अपने को उनकी कृपा पर ही छोड़ देता है।

ईश्वर की रक्षा-भावना पर कवि को अटूट विश्वास है। अनेक भक्तों की कठिनाइयाँ तथा ईश्वर का इनके प्रति सहिष्णु व्यवहार उसे स्मरण है। चीर-हरण की कथा का स्मरण करते हुए कवि कहता है—

> पारथ की रानी, सभा बीच बिललानी,
> दुसासन अभिमानी, दौरि गही केस पास मैं।
> तबही बिचारी, सारी खैंचत पुकारी 'कान्ह'!
> कहां हौ ? परी हौं नीच लोगन के त्रास मैं।
> सेनापति त्यौंही, पट कोटिक उपटि चले,
> चार्‌यौ बेद उठे जस गाइ के अकास मैं।
> बैरिन के बास में, बिपत्ति के निवास में,
> जगन्निवास वा समैं दिखाई प्रीति बास मैं॥[2]

चीर-हरण की विकट परिस्थिति में वस्त्रों का बढ़ना भगवत्कृपा का परिचायक है। द्रौपदी के वस्त्र उसी प्रकार अनन्त होते रहे जैसे भगवान का नाम—

> द्रौपदी सभा में आनि ठाढ़ी कीनी हठ करि,
> कौरव कुपित कह्यौ काहू कौं न मानही।
> लच्छक नरेस पै न रक्षक उठत कोई,
> परी है विपत्ति पति लागी पतता नहीं।

---

1. कवित्त रत्नाकर ५।२५।
2. वही, ५।४१।

जब स्यामसुन्दर अनन्त हरे पीत बास कहि
करी टेरी लाज जात है निदान ही।
सेनापति तब मेरे जान तेई हरि नाम,
ह्वै गए बसन हरि नाम के समान ही ॥[1]

रानी के वस्त्र ईश्वर के नाम की भाँति अथाह बन गए। द्रौपदी की लज्जा भगवान् के पुकारते ही सुरक्षित हो गई। कृष्ण की कृपा से उसके वस्त्रों का बढ़ना देखिए —

प्रति उतरति देखौ परी है विपति अति,
द्रौपदी पुकारै, सेनापति जदुराइ कौ।
दुरजन-भीर जानि ताकी तब पीर,
बर दीनौ बलवीर, वेद उठे जस गाइ कै।
खैंचि खैंचि थाक्यौ, न उसास है दुसासन मैं,
अंध ज्यौं धरनि घूमि गिर्‌यौ भहराइ है।
मंदर मथत छीर-सागर के छीर जिमि,
पैयत न छीर चीर चले उफनाइ कै ॥[2]

दुशासन वस्त्रों को खींचते-खींचते थक गया और अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। द्रौपदी के वस्त्रों का निरन्तर बढ़ते जाना ऐसा जान पड़ रहा है कि मानो मंदराचल पर्वत क्षीर सागर को मथ रहा है जिससे उफान ऊपर आ गया है।

कृष्णभक्ति के प्रसंग में चीर-चरण की ही ओर कवि की दृष्टि अधिक गई है। इस प्रसंग में कवि को भगवान् की भक्तवत्सलता द्योतित करने का अच्छा अवसर मिला है।

शिव भक्ति :

कवित्त-रत्नाकर में सेनापति ने शिव के प्रति भी अपनी भक्ति दिखाई है। शिव की उदारता का कवि ने अच्छा वर्णन किया है। उनका रूप चित्रित करते हुए कवि कहता है —

सोहति उतंग, उत्तमंग ससि संग गंग,
गौरि अरधंग, जो अनंग प्रतिकूल है।
देवन कौ मूल सेनापति अनुकूल,
कटि चाम सारदूल कौ सदा कर त्रिशूल है।
कहा भटकत ! अटकत क्यौं न तासौं मन ?
जातैं आठ सिद्धि नव निद्धि रिद्धि तू लहै।

1. कवित्त रत्नाकर ५।४२।
2. वही, ५।४३।

लेत ही चढ़ाइबे कौं जाके एक बेलपात,
चढ़त अगाऊ हाथ चारि फल फूल है ॥[१]

गंगा, चन्द्रमा और गौरी सदैव शिव के साथ हैं। वे कमर में बाघम्बर हाथ में त्रिशूल लिए हुए हैं। उनकी दानशीलता इतनी बड़ी है कि बेलप चढ़ाने मात्र से ही फल-फूल प्राप्त होने लगता है। इसलिए उन्हीं की सेवा कर कवि उपदेश देता है—

हित उपदेस लेहु, छाँड़ि दै क्लेस,
सदा सेइयै महेस और ठौर कहा भटकै।
सदन उषित रहु, संतत सुखित मति
होउ तू दुखित जोग-जाग मैं निपट कै।
चाहत धतूरे अरु आक के कुसुम द्वैक,
जिनै लेत कोई कहूं भूलि हू न हटकै।
सेनापति सेवक कौं चारि बरदानि, देव
देत हैं समृद्धि जो पुरन्दर के खटकै ॥[२]

धतूरे और मदार के दो पुष्पों पर ही इनकी दानशीलता इतनी बढ़ ज है कि इन्द्र को भी उसका भय ज्ञात होने लगता है। इनकी इसी दानशीलता प्रभावित होकर कवि ने वाराणसी आकर शंकर नगरी में रहने का विच किया था—

पढ़ी और बिद्या, गई छूटि न अबिद्या, जान्यौ
अच्छर न एक, घोख्यौ कैयौ तन मन है।
तातैं कीजै गुरु, जाइ जगत-गुरू कौं, जातैं
ज्ञान पाइ जीउ होत चिदानन्द घन है।
मिटत है काम-क्रोध, ऐसौ उपजत बोध,
सेनापति कीनौ सोध, कह्यौ निगमन है।
बारानसी जाइ, मनिकर्निका अन्हाइ, मेरौ
संकर तैं राम-नाम पढ़िबे कौं मन है ॥[३]

इस पद से वाराणसी में आने की इच्छा प्रकट करके शंकरपुरी का माहात्म्य कवि ने स्थापित कर दिया है।

गंगा भक्ति :

सेनापति ने गंगा की प्रशंसा में अनेक पदों को गाया है। शिव की प्रशंसा के

---

१. कवित्त रत्नाकर, ५।४५।
२. वही, ५।४६।
३. वही, ५।४८।

गंगा-जल में भीगने मात्र से मनुष्य इन्द्र के समान हो जाता है और जल पीने से त्रिशूल पाणि शंकर के समान बन जाता है।[१] गंगा की इसी महत्ता को जानकर राजा भगीरथ ने घोर तपस्या करके उसे पृथ्वी पर अवतरित किया—

पतित उधारै हरिचन्द पांउ धारै,
देव नदी नांउ धारै, कौन तीनि पथ धावई।
ईस सीस लसै (बसै?) बिधि के कमण्डल में,
काकौं भगीरथ नृप लपतन तावई।
सब सरितान कौं बिसारि करि आप हरि,
आपनी विभूतिन में कौन कौं गनावई।
एते गुन गन सेनापति कौन तीरथ में ?
तातैं सुरसरि जू की पदवी कौं पावई॥[२]

इन गुणों के ही कारण इसका नाम सुरसरि रखा गया है। इसकी महिमा को जानकर ही राजा सगर के पुत्रों ने इतना अधिक श्रम किया। भगवान शंकर का अस्तित्व भी गंगा के ही कारण बना हुआ है अन्यथा वह भी समाप्त हो जाता।

काल तैं कराल कालकूट कण्ठ मांझ लसै,
व्याल उर माल, आगि भाल सबही समै।
व्याधि कै अरंग ऐसे व्यापि रह्यौ आधौ अंग,
रह्यौ आधौ अंग सो सिवा की बकसीस मैं।
ऐसे उपचार तै न लागतो बिलात बार,
पैयती न वाकी तिल एकौ कहूं ईस मैं।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
जो पै गंगा रानी कौं न पानी हो तौ सीस मैं॥[३]

सम्भवत: गंगा का उपयोग यदि शंकर न करते तो इनका जीवित रहना ही कठिन होता। उनके गले में कराल कालकूट है, वक्ष:स्थल पर साँपों की माला है तथा ललाट का तृतीय नेत्र भीषण ज्वाला का पुंज बना हुआ है। इस प्रकार उनका आधा अंग भयंकर विष, सर्प तथा अन्य विघ्न-बाधाओं से घिरा हुआ है और आधे अंग पर पार्वती का अधिकार है। इतने भयंकर प्रहारों से उनकी प्राण-रक्षा कभी नहीं होती यदि उनके मस्तक पर सुधा सदृश गंगाजल न होता।

गंगा का जल वस्तुत: कामधेनु की दुग्ध धारा है। उसके सेवन से सभी सांसारिक कष्ट दूर हो जाते हैं—

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।५७।
२. वही, ५।५८।
३. वही, ५।६०।

कोह कौं घटाइ, लोभ मोहन मिटाइ
काम हू तें निबटाइ करि, करति उधार है।
देखें वारि दीन, दारिदी न होत सपने हू,
पावै राज बस, ताके बस बसुधा रहै।
रोग करै दूरि, भोग राखै भरपूरि,
एक अमर करन मूरि मानहु सुधा रहै।
धरम अधार, सेनापति जानी निरधार,
गंगा तेरी धार कामधेनु तें दुधार है॥[1]

यह क्रोध को घटाता है, मोह को मिटाता है, सांसारिक दरिद्रता विनष्ट करता है रोग से मुक्ति दिलाता है तथा भोग से सुखों की आपूर्ति करता है। संसार में धर्म का मूलाधार गंगा-जल ही है। इसी के सेवन से मुक्ति मिल सकती है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी गंगा का स्मरण करके ही अपने उच्च स्थान को प्राप्त किए हुए हैं। अनायास ही गंगा की जय का नाद उच्चरित हुआ और वे लोग उच्च दशा को प्राप्त कर गए—

कोई एक गाइन अलापत हो साथी ताके,
लागे सर देन, सेनापति सुख-दाइ कै।
तौही कही आप, सुर न दीजै प्रवीन,
हौ अलापि हौं अकेलौ, मित्त सुनौ चित्त चाइ कै।
धोखे सुरनदी जै के कहत-सुनत,
भए तीन्यौं तीनि देव तीनि लोकन के नाइकै।
गाइन गरुड़-केतु भयौ, द्वै सखाऊ भए,
भए धाता महादेव, बैठे देवलोक जाइ कै॥[2]

एक गायक ने अपने साथियों को स्वर न भरने के लिए कहा कि 'सुर न दीजै' और अर्थ निकला 'सुर नदी जै'। इसका परिणाम यह हुआ कि अनायास ही गायक महोदय अपने साथियों के साथ ब्रह्मा, विष्णु और महेश बन गए। सुर नदी की आवाज में इतनी शक्ति कवि ने बताई है जो त्रिदेव की शक्ति प्रदान करती है।

गंगा स्नान से केवल हिन्दुओं को ही लाभ नहीं होता बल्कि मुसलमानों को भी लाभ होता है। इसीलिए नदी के पार जाने के लिए गंगा का स्नान करना कवि ने अच्छा माना है—

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।६१।
२. वही, ५।६३।

रहौ पर लोक ही के सोक मैं मगन आप,
सांची कहौं हिन्दू कि मुसलमान राउरे।
मेरो सिख लीजै, जामैं कछुव न छीजै,
मन मानै तब कीजै तोसौं कहत उपाइ रे।
चारि बर देनी, हरि पुर की नसैनी गंगा,
सेनापति याकौं सेइ सो कहि मिटाउ रे।
न्हाइ कै बिसुन-पदी, जाहु तू बिसुन-पद,
जाह्नवी न्हाइ जाइ नबी पास बाउरे ॥[1]

हिन्दू और मुसलमान दोनों को गंगा-स्नान से लाभ ही होने वाला है। यह स्वर्ग का मार्ग प्रशस्त करती है किसी सम्प्रदाय का विचार नहीं करती है।

साम्य वैष्णव भक्ति :

सेनापति के भक्तिकाव्य को देखने से यह स्पष्ट झलकता है कि कवि शुद्ध वैष्णव भक्त था। उसने किसी धर्म का विरोध नहीं किया और न सम्प्रदायगत उलझनों से अपने को उलझाया। सभी सम्प्रदायों का सम्यक् आदर करते हुए सबके प्रति सम्मान प्रकट किया। राम, कृष्ण, शिव, गंगा आदि की व्यापक चर्चा करते हुए नरसिंह और गजग्राह की घटनाओं का भी उल्लेख किया है। नरसिंह का वर्णन दो पदों में करने के बाद कवि गजग्राह का वर्णन करने लगता है।[2] इनके वर्णनों में कवि की वृत्ति भी खूब रमी है। गज की करुण पुकार पर ईश्वर की तत्काल उपलब्धि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

जोर जलचर, अति क्रुद्ध करि जुद्ध कीनौ,
बारन कौं परी आनि बार दुख दंद की।
ह्वै कै नकवानी दीन-बानी कौं सुनाइ,
जौ लौं लै कै कर पानी, पूजा करै जगवंद की।
तौ लौं दौरि दास की पुकार लाग्यौ दीन-बंधु,
सेनापति प्रभु मन ही की गति मंद की।
जानी न परति, न बखानी जाति कछु,
ताही पानी मैं प्रगट्यौ, किधौ बानी मैं गयंद की ॥[3]

गज की करुण पुकार पर भगवान् की उपस्थिति का अन्दाज़ लोगों को नहीं लग पाया कि यह ईश्वरीय शक्ति कैसे प्रकट हुई।

---

१. कवित्त रत्नाकर ५।६६।
२. वही, ५।३६-३६।
३. वही, ५।३८।

इस प्रकार किसी भी अवतारवादी तत्त्व से कवि का कोई विरोध नहीं झलकता है। सभी के प्रति कवि ने आदर का भाव दर्शाया है। इस प्रवृत्ति के कारण कुछ परस्पर-विरोधी तथ्य भी इनके काव्य में दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए एक स्थल पर कवि कहता है—

> **धातु, सिला, दार, निरधार प्रतिमा कौं सार,**
> **सो न करतार तू विचार बैठि गेह रे।**
> **राखु दीठि अंतर, कछू न सून-अंतर है,**
> **जीभ कौ निरंतर जपाउ तू हरे हरे।**
> **मंजन विमल सेनापति मन-रंजन तू,**
> **जानि कै निरंजन परम पद लेह रे।**
> **कर न संदेह रे, कही मैं चित देह रे,**
> **कहा है वीज देहरे कहा है वीज देह रे॥[1]**

इस पद में कवि ने मूर्ति-विरोधी बातें कही हैं जो उसकी प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है। इससे कवि की धारणा नहीं बढ़ाई जा सकती। कवि ने निर्गुणियों के सिद्धान्तों का इस प्रकार आदर किया है, अपने सिद्धान्त की बात नहीं कही है।

भक्ति के क्षेत्र में कवि की प्रकृति दैन्य-भाव की हो गई है। यह दीनता उसके हृदय की स्वाभाविक उपज है। ईश्वर के सम्मुख दीन भाव प्रदर्शित करना स्वाभाविक भी है। भक्त हृदय की यही पहचान है।

१. कवित्त रत्नाकर, ५।३१।

से गए हैं। परन्तु इन्होंने उसका ध्यान न देकर अपने कार्य को आगे बढ़ाया है। जब किसी वस्तु का ये वर्णन करने लगते हैं तो उस वस्तु के विषय-सम्बन्धी अपनी सारी विज्ञता उपस्थित करते रहे हैं। उदाहरण रूप में नायिका के सौन्दर्य का चित्रण करते समय उसका क्रमशः नखशिख रूप-वर्णन करना अनिवार्य मान लिया गया है। इसी प्रकार वियोग-वर्णन के अन्तर्गत बारहमासा वर्णन करना आवश्यक हो गया है। नायिकाओं के विवाह आदि के उत्सवों पर चावल, मछली, पानी आदि शब्दों को पकड़कर उनके प्रति अपनी सारी जानकारी प्रकट करने लगे हैं। इस प्रकार के वर्णनों में इस शाखा का प्रायः प्रत्येक कवि उलझा हुआ दिखाई देता है। इनको अपने कथानक का ध्यान न रह कर ऐसे अवसरों पर अपनी विज्ञता प्रकाशित करने का मोह-सा बना हुआ है। शृंगार के प्रत्येक तत्त्व को चित्रित करना प्रधान लक्ष्य था इसलिए इनका कथानक पूर्ण शृंगारिक होता था और बीच-बीच में अपनी इच्छानुसार शृंगारिक भावों को व्यक्त करने का इन्हें साधन मिलता रहता था। कहीं-कहीं कथानक को पूर्णतया रोक कर ये शृंगार-वर्णन करने लगते रहे हैं। नायिकाओं का स्त्री-भेद-वर्णन इन्होंने इसी प्रकार से किया है। शृंगार के प्रति अधिक आकर्षण बढ़ने के कारण 'पुहकर' ने नायिका भेद सम्बन्धी 'रसबेलि' नामक स्वतन्त्र ग्रंथ भी लिखा है जो अभी पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं हो सका है। 'रसरतन' में उसके कुछ अंशों को प्रकाशित किया गया है। रसरतन में तो कवि ने रीति कवियों की भाँति अलंकारों और हावों-भावों का व्यापक चित्रण किया है। कहीं-कहीं हावों-भावों के लक्षण भी दिए गए हैं जो रीतिकालीन लक्षण-ग्रन्थों का संकेत करते हैं। इसके अतिरिक्त अपने सामयिक राजा की प्रशस्ति भी गाई है। वस्तुतः भक्तिकालीन प्रेमाख्यानक काव्य रीति कवियों की परिपाटी का ही पोषक रहा है। ध्यान से देखने पर उनकी रचना-पद्धति यही प्रकट करती है।

कवि विद्यापति का समय भक्तिकाल के अन्तर्गत ही पड़ता है। इन्होंने अनेक रचनाओं का निर्माण किया है जिनमें इनकी पदावली भक्ति-शृंगार—वर्ण्यवस्तु के विचार से—रीतिकालीन वर्णन के काफी निकट है। रस, नायिकाभेद, अलंकार, इत्यादि सभी विषयों में यह रीति-ग्रन्थों के समान है। संयोग शृंगार का वर्णन जब कवि करने लगा है तो कामशास्त्रीय पद्धति का कोई अंग उससे छूटने नहीं पाया है। विपरीत रति आदि का चित्रण अनेक रूपों में किया है। रूप-वर्णन के अन्तर्गत

नखशिख प्रणाली से प्रत्येक अंग का व्यापक चित्रण कर डाला है। इसी प्रकार प्रकृति-वर्णन के अन्तर्गत बारहमासा तथा षड्ऋतु की रूढ़-परम्परा का पालन करता हुआ आगे बढ़ा है। दूतियों और नायिकाओं के वर्णन में इनके कामशास्त्रीय तथा साहित्यशास्त्रीय प्रायः सभी भेदों पर व्यापक प्रकाश डालता है। अलंकारों का चमत्कार दिखाने में दृष्टकूट पदों की इन्होंने रचना की है जिसमें बौद्धिक श्रम अधिक करना पड़ता है। 'राजा शिवसिंह भूप' का नामोल्लेख प्रशस्ति। गान के रूप में पदावली के अधिकांश पदों में उपलब्ध है। इसी प्रकार रीति कवियों की प्रायः सभी प्रचलित परम्पराओं का अनुगमन करता हुआ इनका काव्य दिखाई देता है।

भक्त कवि सूरदास की रचनाओं में यदि 'साहित्यलहरी' को उनकी रचना माना जाय तो उसमें और रीति कवियों की रचनाओं में कोई अन्तर नहीं है। यदि इसको सूरकृत न माना जाय तो भी सूरसागर ही रीति की प्रवृत्ति को दिखाने के लिए पर्याप्त है। शास्त्रीय काव्योपकरणों के द्वारा सूरसागर ने शृंगारी रीति कवियों के लिए सामग्री संकलित कर दी है। उसने रीतिकाव्य को प्रेरणा प्रदान की है जिसके आधार पर दो सौ वर्षों तक निरंतर रीतिकाव्य का प्रणयन होता रहा है। शृंगार, अलंकार, भाषा, छन्द सभी क्षेत्रों में इसने रीतिकाव्य को पूर्णरूपेण प्रभावित किया है। भक्ति-शृंगारी पदों के भावों को माँसल शृंगारी रूप से व्यक्त करके आगे आने वाले रीति कवि दरबारों में प्रशंसा के पात्र होते रहे हैं। साहित्यशास्त्र की परिधि के अन्तर्गत शृंगार का कोई तत्त्व इनके भक्ति-शृंगार के वर्णनों में स्थान पाने से वंचित नहीं है। प्रायः सबकी व्यापक व्यंजना इन्होंने की है। संयोग और वियोग दोनों पक्षों का शास्त्रीय विधि से भाव-प्रवण चित्रण सूरसागर में मिलता है। विपरीत रति आदि का चित्रण साधारण भाषा में व्यक्त करना भक्त कवि के लिए विकट समस्या थी इसलिए इस प्रकार के वर्णनों को प्रायः रूपकात्मक ढंग से अथवा दृष्टकूटों के माध्यम से कवि ने व्यक्त किया है जो साधारण बुद्धि के लिए दूर की वस्तु हो जाती है। इस प्रकार अलंकारों के आवरण में ऐसे भावों को भी व्यक्त कर दिया है जिससे भक्त कवि की मर्यादा भी बनी रह गई है। विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत पूर्वराग, मान और प्रवास का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। इस अवसर पर मान के भेदों का भी कवि ने चित्रण किया है और उन्हीं के माध्यम से सखियों का दौत्य कार्य भी दर्शाया गया है। प्रवास के अन्तर्गत विरह की दशाओं का चित्रण करके कवि ने

अपनी गहरी भावात्मकता के साथ-साथ कलात्मक रुचि का भी परिचय दिया है।' कृष्ण की सखियों का स्वरूप इस प्रकार से चित्रित किया गया है कि नायिकाभेद की सभी कल्पित मूर्तियाँ सामने आ जाती हैं। इससे कवि की नायिका-भेद सम्बन्धी रुचि तथा जानकारी का पता चलता है। शृंगार के उद्दीपन के रूप में प्रकृति का व्यापक चित्रण उसकी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। अलंकारों के विभिन्न चमत्कार दिखाते हुए दृष्टकूटों की रचना कवि ने विज्ञता प्रकट करने के लिए की है। यह कवि की कला की सफलता है कि दृष्टकूटों में भी भावों की अन्यतम गहराई व्याप्त है। इस प्रकार रीति कवियों की अलंकरण प्रवृत्ति से सूर की अलंकार-योजना बड़ी है और उसमें कवि को अच्छी सफलता भी मिली है।

सूर की ही भाँति कविवर नंददास ने भी अपने काव्य का निर्माण किया है। इन्होंने भी मान्य परम्परा का पूर्णतया पालन करने का प्रयास किया है। बारहमासा षड्ऋतु आदि का वर्णन करके अपने पूर्व-प्रचलित परिपाटी को इन्होंने भी चलाया है। इस प्रसंग में नन्ददास सूर से भी आगे बढ़े हुए हैं। इन्होंने अपने काव्य को लक्ष्य ग्रंथों तक ही सीमित न रखकर लक्षण ग्रंथों की ओर बढ़ाया है। इसीलिए भानुदत्त की रसमंजरी का पद्यबद्ध अनुवाद किया है और इसका कारण रसमंजरी को सरल भाषा में प्रस्तुत करना बताया है। इसके अतिरिक्त 'अनेकार्थ ध्वनि मंजरी' और 'नाममाला' नाम के दो और लक्षणपरक ग्रंथों की रचना की है। इन ग्रंथों से कवि की विद्वत्ता प्रकाश में आई है। इनसे यह भी स्पष्ट होता है कि कवि रीतिकालीन प्रवृत्तियों का द्योतन करने में पूर्ण सफल है। जिस प्रकार रीति कवि लक्षण और लक्ष्य दो प्रकार की रचनाएँ करते रहे हैं और उनके द्वारा अपनी विज्ञता प्रकाशित करते रहे हैं। संभवतः उसी रूप में नन्ददास ने भी अपने इन ग्रंथों की रचना की है।

लंकारों की योजना कवि ने बनाई है। वहाँ अपनी चमत्कारिता के प्रदर्शन के ही लिए कवि ने बिना मात्रा के छंदों का भी प्रयोग किया है। इससे कवि की अलंकरण-वृत्ति का पता चलता है।

कवित्त-रत्नाकर की अन्तिम तरंग में सेनापति ने भक्तिकाव्य की रचना की है। यहाँ राम-कथा का व्यापक चित्रण कवि ने किया है और राम की शरण पाने की अभिलाषा व्यक्त की है। इस विषय में कवि का अधिक आकर्षण रामभक्ति की ही ओर है परन्तु भगवान के अन्य रूपों एवं अन्य देवों की भी उसने प्रार्थना की है। कृष्ण, शिव, गंगा आदि के प्रति श्रद्धावनत होकर उसने अपनी भक्ति प्रदर्शित की है। इससे यह ज्ञात होता है कि भक्ति के क्षेत्र में इनकी दृष्टि कट्टर वैष्णवों की भाँति एकांगी नहीं थी, स्मार्त वैष्णवों की सी थी। इसी कारण इन्होंने किसी भी संप्रदाय का खंडन-मंडन नहीं किया। ईश्वर के अनेक रूपों को स्वीकार करते हुए उसके प्रति अपनी भक्ति व्यक्त की है। इस क्षेत्र में गोस्वामी तुलसीदास की आदर्शवादी परम्परा के सेनापति अनुगामी कहे जा सकते हैं। सगुण वैष्णव भक्ति के सभी रूपों के प्रति इसी कारण वे श्रद्धावनत हुए हैं।

इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय साहित्य-सर्जना के क्षेत्र में बाह्य और आंतरिक उपादानों को लेकर अलंकृत काव्य-रचना शैली प्रचलित थी उसका प्रवाह निरंतर बना रहा है। भक्तिकाल में भी साहित्य की सभी विधाओं पर उसकी छाया स्पष्ट दिखाई देती है। परिस्थितियों के कारण उसकी गति में तीव्रता और शिथिलता आती रही है। भक्तिकाल में भक्त कवियों का विशेष जोर रहा है इसलिए उस समय के रीति कवि प्रकाश में कम आ पाए हैं। भक्तिकाल के समाप्त होते ही पुनः उनमें तीव्रता आई है और प्रबल वेग के साथ उनकी एक धारा चल पड़ी है। तत्कालीन परिस्थितियों ने उस प्रवाह को अत्यधिक प्रोत्साहित किया और इनमें वेग आ गया। कोई पूर्णतः नया साहित्यिक संस्कार इस युग में नहीं पड़ा बल्कि प्राचीन संस्कारों का ही परिमितांश नवीन रूप में अवतरित हुआ और उसकी परम्परा सशक्त वेग से लगभग दो सौ वर्षों तक चलती रही है।

कविवर सेनापति से पूर्व रीतिकाव्य की अगाध परम्परा थी और उनके

पश्चात् उसकी एक पूर्व-संस्कारों की ही नवीन धारा चल पड़ी। दोनों के संधिस्थल पर पड़ने वाले इस कवि में उसके पूरे लक्षण परिलक्षित होते हैं और भक्तिकाल की भी सभी धाराओं का परिचय मिलता है। इसी कारण इनका साहित्य यहाँ विशेष अध्ययन का विषय बनाया गया और उदाहरणपूर्वक उनकी इन बातों को पुष्ट किया गया है।

सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत ग्रन्थ

१. अनंग रंग — कल्याण मल्ल

२. उज्ज्वल नीलमणि — रूपगोस्वामी

३. काव्यादर्श — दण्डी

४. काव्यानुशासन — हेमचन्द्र

५. प्रकाशकाव्य — मम्मट

६. काव्यालंकार — भामह

७. कामसूत्र — वात्स्यायन

८. कुवलयानन्द — अप्पयदीक्षित

९. गाथा सप्तशती

१०. चन्द्रालोक — जयदेव

११. दशरूपक — धनंजय

१२. ध्वन्यालोक — आन्दवर्द्धन : अभिनवगुप्त

१३. यमुनाष्टक — हित हरिवंश

१४. रस-गंगाधर — जगन्नाथ

१५. रसतरंगिणी — भानुदत्त

१६. रसमंजरी — भानुदत्त

१७. राधा सुधानिधि — हित हरिवंश

१८. साहित्य दर्पण — आचार्य विश्वनाथ

१९. हरिभक्ति रसामृत सिन्धु — रूप गोस्वामी

अँग्रेजी ग्रन्थ

	ग्रन्थ	लेखक
१.	अकबर द ग्रेट मुगल	विंसैन्ट स्मिथ
२.	इम्पीरियल फरमान झावेरी	
३.	कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, भाग ४	
४.	मध्यकालीन भारत	ए० बी० पाण्डेय
५.	मध्यकालीन भारत का इतिहास	वासुदेव उपाध्याय
६.	मेडिवल एण्ड मॉडर्न इण्डिया	सरकार एण्ड दत्ता
७.	मुगल एडमिनिस्ट्रेशन	जदुनाथ सरकार
८.	डाइनेस्टिक हिस्ट्री आव् नार्दर्न इण्डिया	हेमचन्द रे
९.	राइज् एण्ड फाल आव् मुगल इम्पायर	डा० रामप्रसाद त्रिपाठी
१०.	हिस्ट्री आव् कन्नौज	डा० रामप्रसाद त्रिपाठी
११.	अकबरनामा, भाग २	
१२.	इनफ्लुएंस आव् मेडिवल आन इण्डियन कल्चर	डा० ताराचन्द

हिन्दी ग्रन्थ

	ग्रन्थ	लेखक
१.	अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल
२.	अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, (१,२ दोन)	डा० दीनदयालु गुप्त
३.	अष्टछाप परिचय	प्रभुदाल मीतल
४.	आचार्य केशवदास	डा० हीरालाल दीक्षित
५.	इस्लाम के सूफी साधक	रेनाल्ड ए० निकलसन अनु० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
६.	उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा	परशुराम चतुर्वेदी
७.	कबीर	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
८.	कबीर ग्रंथावली	डा० श्यामसुन्दर दास
९.	कवि सेनापति (काव्य-समीक्षा)	जितेन्द्र भारती
१०.	कवि पुहकर कृत रसरतन	सम्पा० डा० शिवप्रसाद सिंह
११.	कवि विद्यापति	गंगाधर मिश्र
१२.	कविप्रिया (प्रियाप्रकाश)	संपा० लाला भगवानदीन

१३. कवित्त रत्नाकर — संपा० उमाशंकर

१४. गोस्वामी तुलसीदास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

१५. गीतारहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र — बाल गंगाधर तिलक

१६. घनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा — डा० मनोहरलाल गौड़

१७. घनानन्द ग्रन्थावली — संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

१८. चित्रावली (लें० उसमान) — नागरी प्रचारिणी सभा से प्रका०

१९. जहाँगीर का आत्म-चरित (जहाँगीरनामा), अनु० व्रजरतन दास

२०. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य — डा० सरला शुक्ल

२१. जायसी ग्रन्थावली — संपा० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२२. तसव्वुफ अथवा सूफीमत — चन्द्रबली पांडेय

२३. तुलसी ग्रन्थावली, (भाग १-३) — संपा० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२४. देव और उनकी कविता — डा० नगेन्द्र

२५. नंददास : प्रथम संस्करण — संपा० उमाशंकर शुक्ल

२६. नंददास : एक अध्ययन (प्रथम संस्करण) — रामरतन भटनागर

२७. नंददास ग्रन्थावली, द्वितीय संस्करण — संपा० व्रजरतन दास

२८. निर्गुण साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि — डा० मोती सिंह

२९. पद्माकर ग्रन्थावली — संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

३०. पद्मावत — संपा० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

३१. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण — भाग १-५, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

३२. बिहारी — विश्वनाथप्रसाद मिश्र

३३. बिहारी रत्नाकर — जगन्नाथदास रत्नाकर

३४. भक्तमाल — नाभादास

३५. भागवत संप्रदाय — बलदेव उपाध्याय

३६. भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका (भाग १-२) डा० नगेन्द्र

३७. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा — परशुराम चतुर्वेदी

३८. भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा — डा० हरिकान्त श्रीवास्तव

६७.	संत साहित्य	डा० सुदर्शन सिंह मजीठिया
६८.	संस्कृत साहित्य का इतिहास	पं० बलदेव उपाध्याय
६९.	सूफी मत साधना और साहित्य	डा० रामपूजन तिवारी
७०.	सूरपूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य	डा० शिवप्रसाद सिंह
७१.	सूर का शृंगार वर्णन	डा० रमाशंकर तिवारी
७२.	सूर के सौ कूट	चुन्नीलाल शेष, प्रकाशक हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
७३.	सूरदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
७४.	सूरदास (तृतीय संस्करण)	डा० ब्रजेश्वर वर्मा
७५.	सूर और उनका साहित्य	डा० हरवंश लाल शर्मा
७६.	सूर की काव्यकला	डा० मनमोहन गौतम
७७.	सूर की भाषा	डा० प्रेमनारायण टंडन
७८.	सूरसागर (भाग १, २)	संपा० नन्ददुलारे वाजपेयी
७९.	सूर साहित्य	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
८०.	सूर सौरभ (भाग १, २)	डा० मुंशीराम शर्मा
८१.	हित चौरासी	हित हरिवंश
८२.	हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों का विवरण	ना० प्र० सभा, १९००-१९४१ ई०
८३.	हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण	ना० प्र० सभा, काशी
८४.	हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र
८५.	हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान	पं० परशुराम चतुर्वेदी
८६.	हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य	डा० सत्यदेव चौधरी
८७.	हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	डा० रामनरेश वर्मा
८८.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
८९.	हिन्दी साहित्य (भाग १, २)	संपा० डा० धीरेन्द्र वर्मा
९०.	हिन्दी साहित्य कोश (भाग १,२)	संपा० डा० धीरेन्द्र वर्मा
९१.	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग ६	डा० नगेन्द्र

९२.	हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग १, २)	पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
९३.	हिन्दी साहित्य	डा० श्यामसुन्दर दास
९४.	हिन्दी साहित्य	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
९५.	हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डा० रामकुमार वर्मा
९६.	हिन्दी साहित्य की भूमिका	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
९७.	हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास	चतुरसेन शास्त्री
९८.	हिन्दी काव्यधारा	राहुल सांकृत्यायन

पत्र-पत्रिकाएँ

१. सरस्वती पत्रिका
२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका
३. परिषद् पत्रिका
४. सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग
५. साप्ताहिक नवयुग, दिल्ली ।